

Purodha

Vol. 23 1984 - 85

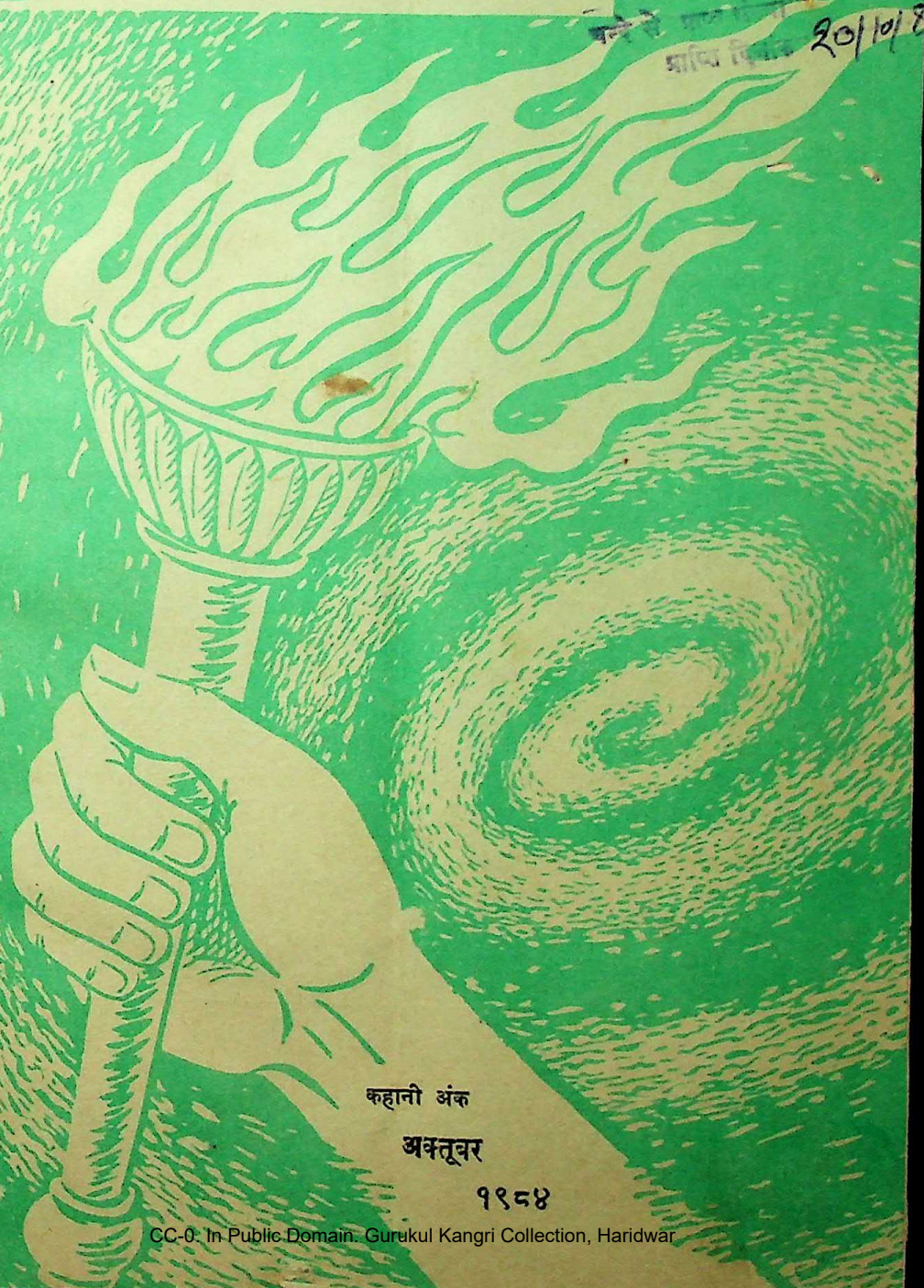
G. K. U.
Hardwar

112367

प्रबोध

115

बने से प्रकाशित
प्राप्त दिनांक 20/10/8



कहानी अंक

अक्तूबर

१९८४

उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, राजस्थान, मध्य प्रदेश, हरियाणा,
गुजरात, ओडिसा, आंध्र प्रदेश, पंजाब और मैसूर सरकार द्वारा
सरकारी पुस्तकालयों, विद्यालयों और महाविद्यालयों आदिके लिये स्वीकृत

पुरोधा

अक्तूबर १९८४

वर्ष २३, अंक १, पूर्णांक २१५

विषय-सूची

दो संदेश	श्रीमां	१
विकास (कविता)	श्रीअरविंद	२
देनन्दिनी		३
सावित्रीकी कहानी	माधव पंडित	४
घर घरकी कहानी	सुन्दरम्	१४
गुदड़ीका लाल	अनुबेन	१८
दिसंबरकी वह रात	ज्ञानवती	२१
पहाड़ोंकी यात्रा	वन्दना	२३
आत्मकथा—लेंसकी		२६
स्वाभिमानिनी	वन्दना	२७
गीर्वाणी : विचारा :	वन्दना	आ० ३

सूचना : आजकल वी. पी. का खर्च बहुत बढ़ गया है। एक वी. पी. लौट आये तो हमें लगभग पांच रुपयेका नुकसान होता है इसलिये हम कोशिश कर रहे हैं कि वीपियां न भेजी जायं। सभी ग्राहकोंको चंदा खतम होनेपर सूचना दी जाती है। सूचना मिलनेके साथ ही अपना चंदा भेजनेकी कृपा करें और यदि किसी कारण आप ग्राहक नहीं रहना चाहते तो भी सूचना तो अवश्य दे दें। यहांसे पुरोधा हर महीनेकी १० तारीखको और अग्निशिखा पहले महीनेकी २५ तारीखको भेजी जाती है। डाकवाले कई बार देर लगा देते हैं।

हो सके तो एक साथ या किस्तोंमें ४०० देकर पुरोधा और अग्निशिखा दोनोंके आजीवन सदस्य बन जाएं और औरोंको भी बनाएं, इससे उनकी और हमारी दोनोंकी सहायता होगी। धन्यवाद।

संपादक पुरोधा एवं अग्निशिखा, पांडिचेरी ६०५००२

पुरोधा वार्षिक : १४.००; अग्निशिखा वार्षिक : १०.००; दोनों मिलाकर : २२.००

संपादक : रवींद्र, वंदना

प्रकाशक : अनिरुद्ध सरकार, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००२

दो सन्देश



112367

1955

*No human will can finally
prevail against the Divine's Will.
Let us put ourselves deliberately and
exclusively on the side of the Divine,
and the Victory is ultimately certain*

१९५५

कोई मानव संकल्प भागवत संकल्पके सामने नहीं टिक सकता। आओ, हम अपने-आपको विवेकके साथ, पूरी तरहसे भगवान्की ओर रखें। और, अंतमें विजय निश्चित है।

*

१९५५

बड़ी-से-बड़ी विजयें सबसे कम शोर मचानेवाली होती हैं।
नये जगत्के प्रकट होनेकी सूचना ढोल बजाकर नहीं दी जाती।

—श्रीमां

*

विकास

हुआ प्रविष्ट पारदर्शक अरु
 नीरव-निश्चल एक भवनमें ।
 देखा मैंने उस दर्पणमें
 जो था स्फटिक-समान सुनिर्मल ॥
 एक शक्ति प्राचीन कालकी
 चढ़ती थी युग-युगके पथपर ।
 सर्प-समान प्रगति थी उसकी,
 चक्कर खा वह चढ़ती ऊपर ॥
 आगामी देवोंके हित
 बनी पालना थी यह धरती ।
 आधा उज्ज्वल, आधा काला
 एक प्रतीक, मनुष्य जाति थी ॥
 गूढ़-गुह्य था देव मनुजमें,
 ढका हुआ भौतिक निद्रासे ।
 तथा अविद्यामय व्यथित भार था
 जीवन अरु अंध मरणका ॥
 धीरे-धीरे सर्वमिदम्का
 परिवर्तन उसने कर डाला ।
 परमात्माकी पराज्योतिमें
 उसने निजको स्वयं उठाया ॥
 प्राप्त समय मन मुक्त बना अरु
 ज्योति सिंधुमें लगा तैरने ।
 मुक्त बना जीवन भी नीरस
 दुःखों अरु कष्टोंसे अपने ॥
 निज मात-पिता रजनीको
 पंचभूतने किया प्रकाशित ।
 अनंततामें ढाली जाकर
 अनुभूति जीवकी बनी जागरित ॥
 कालातीत प्रमोद भागवत
 हुआ हृदयमें प्रतिबिम्बित ॥

(श्रीअरविदकृत 'एवोल्यूशन'के आधारपर)

—डा. रामकृष्ण

दैनन्दिनी

१. अपने-आपको निर्दय होकर जांच। तब तू दूसरोंके प्रति अधिक उदार और दयालु हो सकेगा।
२. जो केवल अपने लिये प्राप्त करता है वह अशुभ प्राप्त करता है चाहे वह उसे स्वर्ग और शुभ ही क्यों न कह ले।
३. बहुधा दूसरोंकी भलाई करना स्वार्थका सर्वोत्कृष्ट रूप ही होता है।
४. चूंकि कला उस चीजको प्रकट करती है जिसे प्रकृति छिपाती है इसलिये एक छोटा-सा चित्र लखपतियोंके सभी आभूषणों और राजाओंके खजानोंसे अधिक मूल्यवान है।
५. तुम समझते हो कि एक गुफावासी या पर्वतशिखरका निवासी संन्यासी एक बेकार पत्थर है। तुम जानते ही क्या हो? हो सकता है कि वह जगत्को अपने संकल्पकी महान् लहरोंसे भर रहा हो और अपनी आत्माकी स्थितिके दबावसे उसे बदल रहा हो।
६. तुम्हें हमेशा एकाग्र रहना चाहिये, अपनी सभी कठिनाइयां उस परम शक्तिको सौंप दो। हमेशा उसीको कार्य करने दो, उसके स्थानपर अपने मन या अपनी पृथक् प्राणिक इच्छा या आवेशको मत लाओ।
७. जब कभी तुम कोई गलत कार्य करने लगे तो तुम्हारे अंदरसे कोई चीज तुम्हें सावधान करे और रोक दे।
८. भौतिक चीजोंसे घृणा नहीं करनी चाहिये—उनके बिना भौतिक जगत्में कोई अभिव्यक्ति नहीं हो सकती।
९. अपनी सच्ची सत्ता यानी अपनी चैत्य सत्ताके द्वारा अपनी निम्न सत्तापर शासन करो, तब तुम इस महान् भागवत कार्यमें एकदम स्वाभाविक रूपसे अपना ठीक स्थान पा लोगे।
१०. हमेशा परम प्रभुकी इच्छा पूरी होती है। यह कभी न भूलो और तुम शांतिमें रहोगे।
११. अपने मनमें अंतिम विजयकी निश्चितिको हमेशा बनाये रखो और रास्ता अधिक छोटा हो जायेगा।
१२. जो लोग सच्चाईके साथ भगवान्को बुलाते हैं उनके लिये कुछ भी कठिन नहीं है।
१३. भागवत सहायता उस सबसे कहीं अधिक विशाल है जिसे कोई भी मनुष्य ग्रहण कर सकता है।
१४. अनुशासनके बिना मनुष्य पशुसे बढ़कर कुछ नहीं है।
१५. अपनी इच्छाके अनुसार नहीं बल्कि भगवान्की इच्छाके अनुसार कार्य करो।
१६. दयाके प्रभो! मुझे अपनी कृपाके योग्य बना।
१७. भीतर निवास करो, बाहरी परिस्थितियोंके कारण डगमगाओ मत।
१८. करने लायक काम बस एक ही है: हृदयसे भागवत हस्तक्षेपके लिये प्रार्थना करो क्योंकि एक वही चीज है जो हमारी रक्षा कर सकती है।
१९. तुम जो सिखाना चाहते हो उसे तुम्हें जीना चाहिये।
२०. भगवान्के प्रति अपने समर्पणको पूर्ण बनानेकी कोशिश करो तो तुम्हारे लिये तुम्हारे जीवनको पूर्ण बना दिया जायेगा।
२१. अग्निपरीक्षाएं हर एकके लिये होती हैं। फर्क पड़ता है उनका सामना करनेके तरीकेमें। कुछ लोग मुस्कराते हैं, कुछ घबरा उठते हैं।

२२. तुम्हें यह कभी न भूलना चाहिये कि नाटकीय बननेकी अपेक्षा जब तुम शांत रूपसे सुखी हो तो ज्यादा उपयोगी होते हो।
२३. सफलताकी अपेक्षा सत्यके लिये अधिक उत्सुक रहो।
२४. महत्वपूर्ण चीज है कार्य करना, हम जिस आदर्शको सिद्ध करना चाहते हैं उसे आंखोंसे ओझल किये बिना हमें कार्य करना चाहिये।
२५. सबसे पहली चीज होनी चाहिये शांति। तुम जो कुछ करो तुम्हें उसे शांतिपूर्ण तरीकेसे करना चाहिये।
२६. भागवत प्रेमकी अभिव्यक्तिको जल्दी लानेका सबसे अच्छा तरीका है सत्यकी विजयके लिये सहयोग देना।
२७. कठिनाइयां होती हैं उनपर विजय प्राप्त करनेके आनंदके लिये।
२८. धन धन कमानेके लिये नहीं है, धन धराकी नयी सृष्टिके आगमनके लिये तैयार करनेके लिये है।
२९. हर वस्तुके पीछे एक दिव्य सौंदर्य और सामंजस्य है। हमें इसीके साथ संपर्कमें आना चाहिये। हमें इसीको अभिव्यक्त करना चाहिये।
३०. 'मिथ्यात्व' मृत्युका बड़ा साथी है।
३१. परम प्रभुके लिये पापका अस्तित्व नहीं है—हर प्रकारका दोष सच्ची अभीप्सा और रूपांतरके द्वारा मिट सकता है।

—प्रकीर्ण

सावित्रीकी कहानी

श्रीअरविंदकी सावित्री अंग्रेजी भाषाका सबसे बड़ा महाकाव्य है। अधिकतर महाकाव्योंकी तरह इसकी कहानी भी सृष्टिके आरंभसे, बलिक देव जागरणकी बेलासे भी पहलेसे शुरू होती है और अनेक युग-युगांतरोंमें बल खाती हुई आज तक आ पहुंचती है और भविष्यकी भी झांकी देती है।

इसके मुख्य पात्रोंमें सत्यवान अपने अंदर दिव्य सत्यको धारण करता है। वह भगवान्का एक अंश है जो मृत्यु और मिथ्यात्वके पंक्तमें उतर आया है। सावित्री दिव्य शब्द, दिव्य स्रष्टाकी दुहिता, वह भागवत कृपा है जो मनुष्यको मृत्युके पंजेसे छुड़ाने आयी है। उसके पिता अश्वपति जैसा कि उनके नामसे प्रकट होता है आध्यात्मिक ऊर्जाके स्वामी हैं। आध्यात्मिक ऊर्जाका स्वामी ही सावित्रीके रूपमें उतरनेवाली भागवत कृपाको ग्रहण कर सकता है। सत्यवानके पिता द्युमत्सेन दिव्य मनके स्वामी हैं जो अभी अंधे होनेके कारण दिव्य महिमासे वंचित हैं।

श्रीअरविंदका कहना है कि उन्होंने यह तेईस हजारसे अधिक पंक्तियोंका महाकाव्य स्वान्तः सुखाय लिखा था और इसे लिखनेमें लगभग पचास वर्ष लग गये। इसमें शायद उनके और माताजीके अनेक जन्मोंकी कहानी है, सृष्टिके बारेमें अनेक दृष्टिकोणोंसे विचार है। बहुतसे लोगोंको अपनी हर समस्याका हल करनेमें सावित्रीसे मदद मिलती है।

सावित्रीकी कहानी अश्वपतिसे शुरू होती है। यह कोई साधारण राजा नहीं है, उसे सारे समय इस बातका भान रहता था कि वह एक ऐसे रहस्यमय नाटकका नायक है जिसमें अज्ञात

अपने अनेक रूपोंद्वारा स्वयं अपना पीछा करता है। वह एक ऐसा आदर्शवादी था जो अपने आदर्शोंको चरितार्थ करनेके प्रयासमें था, वह आदर्शोंकी हवामें विचारक और उद्यमी था जो यहां अमरताका उपनिवेश बसाने आया है। उसकी गुप्त शक्तियां और क्षमताएं प्रकट होनेके लिए उछल कूद कर रही थीं और वह बराबर सावधान था।

अश्वपति अपने आंतरिक जीवनको खिलनेके लिए काफी क्षेत्र देता है और परिणामस्वरूप अहंकारका छोटा-सा द्वीप अपनी पृथक्ताके चिह्नोंको छोड़कर चेतनाके महाद्वीपमें जा मिलता है। उसे भान होता है कि चेतनाके आकाश उसकी ओर बढ़े आ रहे हैं, प्रेरणाकी धाराएं उसमें प्रवेश कर रही हैं, भागवत शक्ति और आनंदके अवतरण, सर्वज्ञताके गरुड़, सर्वशक्तिमत्ताकी प्रचंड धाराएं उसके अंदर प्रवेश करती जा रही हैं और परिणामस्वरूप उसकी गतिविधियोंमें मानवताका अंश अधिकाधिक कम होता जा रहा है। उसके आंतरिक नेत्र खुल गये। उसने समाधि-की अवस्थामें अपने-आपको सूक्ष्म लोगोंमें भ्रमण करते देखा और उसने देखा कि उसकी अंतरात्माका बहुमूल्य पुरस्कार हथियानेके लिए प्रकाशके देव और अंधकारके दानव युद्ध कर रहे थे; भगवान्‌को पानेका प्रयास करनेवाले हर व्यक्तिकी यही नियति है।

अश्वपति मनुष्य था, उसमें निरंतर प्रगति संभव न थी। मनुष्योंके बहुत-से भाग अधिक समयतक प्रकाशको नहीं सह सकते। वे फिरसे मानवताके तुच्छ नीरस जीवनकी ओर लौटना चाहते हैं। भगवान्‌ वड़े-वड़े कूटनीतिज्ञोंके भी गुरु हैं। वे इन अवसरोंका भी उपयोग कर लेते हैं और पदोंके पीछेसे, मन, प्राण आदिके हस्तक्षेपसे बचकर भी अपना काम करते रहते हैं। वे दिनके उजालेमें और रातके अंधेरेमें निरंतर काम किये जाते हैं। अश्वपति दिन-दूनी रात चौगुनी प्रगति करता गया। एक अंतरात्माकी महत्वाकांक्षा, यदि उसके लिये इस शब्दका प्रयोग किया जा सके, सारी जातिको ऊपर उठा देती है। उसके बलके साथ वैश्व बल जुड़ा हुआ था। महान्‌ पुरुषोंकी तरह वह भी अपनी भव्यतामें एकाकी था।

एक दिन वह जब सारे परंपरागत गुह्य ज्ञानको आत्मसात् करके गंभीर मुद्रामें बैठा था, उसने अपने-आपको मनके उज्ज्वल पर्देमेंसे “उच्चतम सूर्योलोकमें प्रवेश करते हुए पाया जहां सब कुछ सर्वदा ज्ञात रहता है, जहां रक्षा करनेके लिए महिमाके पंख सदैव आच्छादित रहते हैं।” वहां उसे सृष्टिका सारा रहस्य एक मानचित्रकी तरह स्पष्ट दिखलायी दिया, सब कुछ एक लेखा चित्रकी तरह उसके सामने था। प्रकृति यह देखकर स्तब्ध रह गयी कि एक मानवने उसे निरावरण देख लिया और वह अपने सभी रहस्य खोलकर उसके सामने रख देती है। वह जान जाता है कि मनुष्य कष्ट क्यों पाता है, चीजें उस तरहसे क्यों होती हैं जैसी कि वे हो रही हैं। वह पता लगाता है कि इतनी बाधाएं क्यों आती हैं, मृत्यु क्यों आती है और भगवान्‌ और प्रकृतिमें क्या समझौता है। वह और अधिक गहरे डुबकी लगाता है और आकारहीन क्षेत्रमें प्रवेश करता है। वहां वह देखता है कि यह सारा संसार “एक बहुत बड़ी शक्तिका जरा-सा परिणाम है।” उसके मूल्य बदल जाते हैं और जब वह यह आश्चर्य कर रहा होता है कि क्या वास्तवमें कोई पदार्थ है भी या सब कुछ केवल शक्ति है तभी वह ज्ञानके सौर क्षेत्र और आनंदके चन्द्र-क्षेत्रोंको अपनी आंखोंके आगे तैरता पाता है और वह निश्चय कर लेता है कि उसे और गहराईमें जाकर खोज करनी होगी।

वह लोकोंका सोपान देखता है जो देवोंके पर्वत रथ जैसा दीखता है, धरती उसका सबसे निचला आधार है। लोकोंकी इस राशिको देखकर मानवजातिके एक प्रतिनिधिके नाते वह गुप्त लोकों—विश्वके सोपानों—के रहस्यको जाननेकी इच्छा करता है। वह अकेला आगे बढ़ता है, उसके चारों ओरकी अनंतता और ऊपरकी अज्ञेयता उसे देख रही है। वह भौतिक

विश्वके परे जाता है और एक ऐसे मनोहर लोकमें प्रवेश करता है जहां धरतीकी सभी चीजें, यहांकी अपेक्षा बहुत अधिक सुन्दर और पूर्ण रूपमें दिखायी देती हैं। वहां सब कुछ अपने आदिरूप, अपने सच्चे रूपमें है। सुन्दरता, गतिविधि, आनंद यहांतक कि कुरूपता भी अपने निरपेक्ष रूपमें है। यह सूक्ष्म भौतिक जगत् है जहांसे वस्तुएं भौतिक जगत्में आती हैं। किसी और जगह श्रीअरविंदने बतलाया है कि धरतीपर जो भी घटना घटती है वह पहले तत्त्वतः इस लोकमें हो चुकती है और वहांसे यहां आती है। अश्वपति यह सब देखता है और मंत्र-मुग्ध होकर देखता है कि हम जिसे स्वर्ग मानते हैं और जिसे नरक समझते हैं वे दोनों यहां हैं। मानव कल्पना जिन चीजोंके बारेमें सोच सकती है वे सब यहां हैं लेकिन सृष्टिका रहस्य यहां नहीं है, यहां कोई गतिविधि नहीं है, कोई प्रगति नहीं है, सब कुछ एकदम स्थिर है। यहां पूर्णता तो है पर है प्ररूपी पूर्णता, एकदम स्थायी और स्थिर।

वह आगे बढ़ता है और 'छोटे जीवन'के लोकमें प्रवेश करता है। यहां वह बौने, परियां, तात्विक प्राणी आदि नाना प्रकारके जीव देखता है जो गति करते रहते हैं और जहां जाते हैं अस्त-व्यस्तता पैदा कर देते हैं, धरतीके मनुष्योंके जीवनमें गड़बड़ पैदा करते और उसका मजा लेते हैं। वह 'जीवन'के उतार-चढ़ाव देखता है। इसके परे वह प्राणमय लोकके प्राणियोंको देखता है, जीवनके महान् देवोंको देखता है जो मनुष्यको वीरता और साहसपूर्ण कार्यों और उपलब्धियोंकी प्रेरणा देते हैं और उसमें उदात्त आदर्शोंकी ज्वाला भड़काते हैं। वह इस जीवन-लोकमें प्रेरणाकी मौजोंका मूल देखता है, वह बड़ी-बड़ी मौजोंको उठते देखता है; लेकिन वह देखता है कि हर मौज ऊपर उठती है और साथ ही उसी वेगसे नीचे आ जाती है। भला क्यों? ये आनंदकी लहरें ऊपर ही ऊपर क्यों नहीं उठती चली जातीं, इन्हें नीचे क्यों आना पड़ता है? वह चकरा जाता और यह निश्चय करता है कि इसका रहस्य जानकर रहेगा कि जीवन—अपने स्तरपर, अपने ही लोकमें—असफल क्यों होता है। वह खोज करता है और अज्ञानकी अंधेरी गुफाके मुंहतक, दुख-दर्दके मूलतक जा पहुंचता है। वह इसके सत्यको जानना चाहता है और अपनी दृष्टिको उस अंधेरी गुफामें, उस अंधेरी 'रात'में घुसा देता है। वहां कोई नहीं है, कोई गति नहीं दिखायी देती, सब कुछ अंधेरा, चुपचाप, सुनसान और अशुभ मालूम होता है। वह और गहराईमें जाता है और ऐसी सत्ताएं उसके पाससे गुजरती हैं जिनकी दृष्टि ही अनर्थकर थी। इससे आगे वह एक अकल्पनीय चीज देखता है। वह अहंकारको मयूरासन पर राजा बना हुआ बैठा देखता है, मिथ्यात्व उसकी रानीके रूपमें आसीन है; उसके सभी विश्वास अपने पूर्ण नकारके रूपमें दिखायी देते हैं, ऐसा लगता है कि वहां अंधकारके सिवा कुछ है ही नहीं।

वह डटा रहता है। उसे प्रकृतिके परिवर्तनका रहस्य दिखलायी देता है। वह प्राणिक देवोंके स्वर्गमें प्रवेश करता है। यह गंधर्वलोक है, सामंजस्यका, हंसी-खुशीका देश जहां असफलता नहीं है, मृत्यु नहीं है। लेकिन वह इससे संतुष्ट नहीं है। यहां आनंद तो है पर ज्ञान नहीं है। वह आगे बढ़ता और 'मन'के राज्यमें जा पहुंचता है, लघु मन जहां इन्द्रियगत मनके क्षेत्र हैं, जहां इन्द्रियगत मनके भगवान् हैं, जहां इन्द्रियोंका राज्य है। फिर वह ऐसे क्षेत्रोंमें कदम रखता है जहां उसके आगे स्कूल मास्टरकी तरह तर्कप्रधान मन बैठा मनुष्यपर जोर डालता है कि वह उसीकी सुने।

उसके बाद श्रीअरविंद अश्वपतिकी विचार-मन, आदर्श-मनकी यात्राका वर्णन करते हैं जहां सब कुछ सुन्दर है पर कुछ भी ठोस नहीं है, सब मोहक परंतु अस्पष्ट है। तब वह मनोमय पुरुषके लोकमें आता है। ऐसा लगता है कि यहां विश्वकी सारी गतिविधि बंद है। यहां

केवल अचल नीरवता और अक्षर आत्मा है। ऐसा लगता है कि सारा संसार छाया है, केवल यह अचल नीरवता, स्थिरता ही सत्य है। वह नीचेकी अचेतना और ऊपरकी अति-चेतनाको देखता है लेकिन कहीं भी गति नहीं है। वह अचकचाता है कि इस कारासे निकले कैसे? अचानक उसे विश्वात्माके लोककी ओर ले जानेवाले प्रकाशका मार्ग दिखायी देता है जहां सृष्टिका केंद्र है, जहां सभी सत्ताएं अंतरात्मामें विश्रामके लिए जाती हैं, जहांसे समस्त ब्रह्माण्डकी ऊर्जाएं प्रवाहित होती हैं, जहां विश्वकर्मा जगत्-निर्माणमें लगे हैं। वह और आगे बढ़ता है, ऐसी जगह जा पहुंचता है जहां खप्टा एक ही आकारमें दो रूपोंमें खड़ा है। वह देखता है, मंत्रमुग्ध होकर देखता है, उस एकको देखता है जिसने दो को जन्म दिया है—वह है दिव्य जननी, वह जिसने सब कुछ पैदा किया है। वह प्रार्थनामें हाथ फैला देता है, जननी जरासा पर्दा हटाती हैं और अश्वपति “उसके चेहरेकी रहस्यमयी रूप रेखा”से पूरी तरह अभिभूत हो जाता है और अचेत होकर उसके चरणोंपर गिर पड़ता है।

जागनेपर वह एक बहुत महान् जगत् अधिमानस चेतनाको देखता है जहां सभी सत्य एक साथ अभिव्यक्त होनेके लिए उमड़ रहे हैं। वह देखता है कि जगत्में जो कुछ हो रहा है उस सबके पीछे एक सत्य है। उसे आश्चर्य होता है, वह जगज्जननीको याद करता है, उनसे प्रार्थना करता है कि वह जिस धरतीका वासी है वहां उनकी जय हो। वह अपने साथी मनुष्योंको याद करता है। वह प्रबल इच्छा करता है कि यहांका आनंद, यहांका ज्ञान और यहांकी शक्ति धरतीपर अवतरित हों। वह जानता है कि यह काम उन्हींके बसका है। उसकी संपूर्ण अंतरात्मा ऊपरकी ओर उठती है, वह दोनों भुजाएं उठाकर उनसे प्रार्थना करता है। उसे अनुभव होता है कि उनकी उपस्थिति अधिकाधिक निकट आ रही है। वह न साकार है न निराकार, “साकार और निराकार उसमें एक हो गये थे। एक ही दृष्टिपातमें विशालताका अतिक्रमण कर लिया था, समस्त जनसंकुल अनंत उस एक चेहरेमें दिखायी दे रहा था।” वह देखता है कि “समस्त प्रकृति मौनभावसे उसे और केवल उसीको, अपने जरासे चरण-स्पर्शद्वारा जीवनके समस्त दुःख-दर्दोंका उपचार करनेके लिए, मनुष्यकी धुंधलकेमें पड़ी अंतरात्मा पर लगी मुहरोंको तोड़नेके लिए और वस्तुओंके हृदयसे अपनी अग्नि प्रज्ज्वलित करनेके लिए मूक आह्वान कर रही है।”

वह अपनी वाणीको मुखरित करता है और उससे अनुनय करता है कि अपनी महिमाकी सृष्टिको यहां धरतीपर अवतरित करे। वह धीरेसे कुछ शब्द बोलती है जो मानव वाणीके नहीं हैं। वह अपने कानोंको इस अपार्थिव देवी वाणीको सुननेके लिए लगा देता है। वह कहती है जल्दी न करो, जल्दबाजी न करो, अगर सत्य तेजीसे उतर आये तो पृथ्वी उसे सहन न कर पायेगी। वह तहस-नहस हो जायेगी। वह कहती है कि सभी चीजें भगवान्की इच्छापर छोड़ दो और सब कुछ अपने समयपर ठीक हो जायगा। “अधीर दानव तुम्हारे हृदयका चालक न बनने पाये, अपूर्ण फल, आंशिक पुरस्कारकी मांग न करो। बस एक ही वरदान मांगो और वह है अपनी आत्माका विकास, बस एक ही चाह करो, अपनी जातिके उत्थानकी। अंध नियति और विरोधी शक्तियोंके ऊपर एक उच्च निश्चल संकल्प स्थित है। अपने कर्मोंका फल उसी सर्वशक्तिमत्ताके हाथों छोड़ दो। भगवान्के रूपांतरकारी मुहूर्त-में सभी चीजोंका परिवर्तन होगा।”

लेकिन अश्वपति इससे संतुष्ट नहीं होता। वह फिर याचना करता है, “मैं इस मर्त्यकालमें, पार्थिव वस्तुओंके मन्द पगोंसे कैसे संतुष्ट रह सकता हूं जब कि मैंने वैश्व छद्मवेशके पीछे तेरे मुखकी महिमा और सुन्दरता देख ली है? तू अपनी सन्तानको कठोर नियतिके साथ बांध

देती है। हमारी आत्मा इस 'रात्रि'के विरुद्ध कबतक जूझती रहेगी, उससे पराजित होती और मृत्युके जुएको ढोती रहेगी। आखिर हम मृत्युहीन शक्तिके पात्र और जातिके परम देवत्वके रचयिता हैं।"

दिव्य जननी द्रवित होकर उससे कहती हैं, "हे बलवान पुरोधा, मैंने तेरी पुकार सुन ली है। एक अवतार लेगा और लौह विधानको तोड़कर प्रकृतिकी नियतिको केवल आत्माकी शक्तिसे बदल देगा..."

मृत्युकी भयंकर घड़ीमें एक बीज बोया जायगा, स्वर्गकी एक शाखा मानव धरतीमें प्रतिरोपित की जायगी। प्रकृति अपने मर्त्य चरणको लांघ जायगी और अपरिवर्तनशील संकल्प नियतिको बदल देगा।"

अश्वपति अपने उद्यमके लिए लौट आता है। श्रीअरविद एकके बाद एक 'ऋतुओंका सुन्दर वर्णन करते हैं। वसन्तमें सारी प्रकृति सौंदर्यका उत्सव मना रही है। चारों ओर महान् प्रत्याशा है। 'अन्य देशोंसे आयी महानता', सावित्री मानव जन्म लेती है। वह चन्द्रकलाकी तरह बढ़ती है, चारों ओर मानों देवदूत उसकी रक्षा कर रहे हैं। उसके चारों ओर उसके अंदरसे निकलनेवाली प्रेम और मधुरताकी धाराएं प्रवाहित हो रही हैं, सभी उसका संग चाहते हैं, उसे सभी कलाएं और विज्ञान सिखाये जाते हैं। उसका जाज्वल्यमान व्यक्तित्व देखकर उसका पाणिग्रहण करनेके लिए कोई आगे आनेका साहस नहीं करता।

एक दिन जब अश्वपति इन्द्रियगोचर ध्वनियोंसे भिन्न ध्वनियोंमें खोया हुआ था तो उसने एक आवाज सुनी जो नियतिवद्ध धरती पुत्रोंसे पूछ रही थी कि तुम इस तरह तुच्छ मन, प्राण आदिके छोटे-छोटे अंध चक्कर कबतक लगाते रहोगे। एक महत्तर नियति तुम्हारे लिये प्रतीक्षा कर रही है, जागो और शाश्वतके द्वारपर शंखनाद करो।

आवाज बन्द हो जाती है। मानो उसके उत्तरस्वरूप प्रफुल्ल सावित्री वहां आ जाती है। अश्वपति उसकी गहराइयोंमें देखता है और कहता है जाओ, अपने जीवन-संगीकी तलाश करो जिसके साथ प्रकृतिसे उठकर दिव्यताके शिखरोंतक पहुंचोगी।

सावित्री आज्ञापालन करती है और अगले दिन पौ फटनेसे पहले अपने रथपर एकाकी, संसारके मार्गोंको ढूंढनेके लिए चल पड़ती है। वह मैदानों और जंगलोंसे प्रासादों और वाटिकाओंसे होती हुई तपोवनोंका चक्कर लगाती है। जहां ठीक लगे वहां आराम करती हुई आगे बढ़ती है।

सावित्री आगे बढ़ती जाती है। एक दिन उसे लगता है कि कोई उसे खींच रहा है, वह बाग खींचकर रथ रोक लेती है। वहां एक उपवनके किनारे एक मानव आकारको देखती है। वह और नजदीक आती है तो एक 'भगवान्‌के वरछे जैसा सीधा, ऊंचा' पुरुष दिखायी देता है। दोनों एक दूसरेकी ओर आकर्षित होते हैं। पुरुष कुछ डग आगे बढ़कर पूछता है, "हे सुकुमारीके आकारमें ढले हुए सूर्यालोक, तुम कौन हो? और मनुष्य तुम्हें किस नामसे जानते हैं?" सावित्रीने उत्तर दिया, "मैं मद्रकी राजकुमारी सावित्री हूं लेकिन तुम कौन हो?" उसने कहा, "मैं वचनसे ही यहां हूं, मेरे पिता राजा द्युमत्सेन भी निर्वासित होकर यहीं रहते हैं। मैं प्रकृतिका बालक हूं और सभी वनवासियोंका—पेड़, पौधों, पशु-पक्षियोंका मित्र हूं।" दोनों एक दूसरेकी आंखोंमें झांकते हैं, दोनों एक दूसरेकी अंतरात्माको पहचान लेते हैं और एक हो जाते हैं। सावित्री रथसे नीचे उतर आती है और वहांसे फूल इकट्ठे करके उनकी माला गूंथकर उसके गलेमें पहनाती और उसके पांव छू लेती है। वह उसे अपनी कुटिया दिखाता है। सावित्रीकी खोज पूरी हो गयी। वह पिताको यह समाचार देकर लौट आनेका वचन देकर चल पड़ी।

उसी दिन अचानक दैवी संगीतके गायक देवर्षि नारद अपने पैरों तले पड़ी, देवोंके भोजन पटलपर लुढ़की हुई सुनहरे चपक जैसी धरतीकी ऊष्मासे आकर्षित होकर, अमर प्रकाश तथा सुन्दरता और आनंदकी विजयके गीत गाते हुए नीचे आये। जैसे ही उन्होंने धरतीके क्षेत्रमें पांव रखा, जहां देवता अपने कार्यमें लगे हैं, उन्होंने दुःख-दर्दकी तीव्रताको देखा, उनका मनो-भाव बदल गया। उन्होंने प्रेम और आनंदके गीत गाना बन्द कर दिया। उसकी जगह उन्होंने जगत्के श्रम और संघर्षके बारेमें देवोंके श्रम, अज्ञान और नियतिके गीत गाने शुरू कर दिये। नारदने उतरते हुए देखा कि अश्वपत्तिका प्रासाद ऊपर उठ रहा है और वे उसके दरबारमें हैं। राजा रानीको साथ लिये हुए उनका स्वागत करते हैं और ठीक उसी समय चमकते हुए लाल कपोलोंवाली सावित्री प्रवेश करती है। नारद इस तरह पूछते हैं मानो वे उसे नहीं पहचानते, “चमकदार प्रकाशसे घिरी यह नववधू कौन है? कहांसे आयी है? निश्चय ही यह किसी उज्ज्वल स्वर्गसे उतरी है।” सावित्री उसी समय घोषणा करती है कि उसने अपनी पसंदका पुरुष पा लिया है। वह द्युमत्सेनका पुत्र सत्यवान है। सत्यवान शब्दके उच्चारणके साथ ही अश्वपति उस नामपर एक घनी छाया तैरती हुई देखता है जिसका पीछा एक आश्चर्यजनक प्रकाश कर रहा है। वह राहतकी सांस लेता है और जब वह देखता है कि नारद कुछ बोलनेको हैं तो उन्हें इशारेसे मना करता है परंतु रानीने यह इशारा देख लिया। वह इस शुभ अवसरपर बेटीको आशीर्वाद देनेके लिए देवर्षिसे प्रार्थना करती है। ऋषि सकुचाते हैं परंतु उसका आग्रह बना रहता है।

तब नारद कहते हैं, “पूर्व दृष्टिसे लाभ ही क्या है? सुरक्षित द्वार नजदीक ही खुलते हुए चीत्कार करते हैं और अभिशप्त लोग गुजर जाते हैं। भावीका ज्ञान अधिक कष्टकर होता है।” आखिर वे कह ही देते हैं कि आजसे बारह मासके बाद सत्यवानकी मृत्यु हो जायगी। यह वाक्य सभीको वज्रपात-सा लगता है। रानी सावित्रीसे अपना चुनाव बदलनेके लिए कहती हैं परंतु सावित्री अपनी बातपर डटी है। एक बार चुनाव हो गया सो हो गया। रानी क्रोधसे भर उठती है और नारदसे कहती है, “तुम न्यायकी बातें करते हो और मेरी बेटीको किसी अपराधके बिना इस दुर्भाग्यका सामना करना पड़ेगा।”

नारद उत्तर देते हैं, “क्या रातकी उपस्थिति यह प्रमाणित करती है कि सूर्य एक स्वप्न था? मर्त्य प्राणीके हृदयमें शाश्वतका निवास है, वे तेरी अंतरात्माके कक्षमें छिपे बैठे हैं। वहां एक ऐसा प्रकाश जगमगाता है जिसे कोई दुःख-दर्द छू तक नहीं सकता। तेरे और उस शाश्वतके बीच एक अंधकार स्थित है, तू उस अद्भुत अतिथिको देखने, उसकी वाणी सुननेमें असमर्थ है, तू उस आनंदमय सूर्यको नहीं देख पाती। हे रानी, तेरा विचार अज्ञानका आलोक है, उसका चमचमाता पर्दा तेरी आंखोंसे भगवान्‌के चेहरेको छिपाये हुए है। वह निश्चेतनासे जन्मे जगत्‌को प्रकाश देता है परंतु इस जगत्‌में शाश्वतके प्रयोजनको छिपा देता है। तेरे मनका प्रकाश तुझसे शाश्वतके विचारको, तेरे हृदयकी आशाएं शाश्वतकी इच्छाको तुझसे छिपाए रहती हैं। धरतीके मुख तुझे शाश्वतके आनंदसे वंचित करते हैं। इसलिए वहां अंधकारमय घुसपैठिये देवता दुःख-दर्दकी जरूरत पड़ी जो जगत्‌का भयानक शिक्षक है, कर्ता है। जहां अज्ञान है वहां कष्टका आना जरूरी है, तेरा दुःख प्रकाशके लिए अंधकारकी पुकार है। दर्द निश्चेतनाका पहला बालक है और यही तेरे शरीरका मूल मूक आधार है। अंधेरे गर्भमें एक अंधेरी छाया तबतक सोयी रहती है जबतक जीवन उसमें गति न पैदा करे। एक ही जरायुमें आनंदके साथ-ही-साथ भयानक शक्ति सोयी हुई थी। वह अपने जुड़वां बच्चोंको छिपाये हुए जीवनके वक्षमेंसे प्रकट हुई। पहले आया दर्द, उसके बाद ही सुख आ

सकता था। दर्दने ही ऊँधते जगत्की कठोर भूमिमें पहले हल चलाया। दुखके द्वारा ही मिट्टीके ढेलेमेंसे आत्माका आरंभ हुआ, दुःखद्वारा अंतर्लीन गहराइयोंमेंसे जीवन गतिशील हुआ, जड़-पदार्थकी समाधिमें वन्द, डूबा हुआ, छिपा हुआ, स्वप्नद्रष्टा, सोता हुआ मन जाग उठा, उसने अपने स्वप्नोंको जाग्रत रूप दिया। उसने अवचेतन गहराइयोंमेंसे आकार बनाये और फिर अपनी बनायी हुई सृष्टिकी ओर आंख फेरी। सुख दुःखके अंधेरे और उजाले यमजों द्वारा निर्जीव जगत्ने अपनी सचेतन अंतरात्माको देखा। ऐसा न होता तो निश्चेतना कभी परवर्तनको स्वीकार न करती। दुःख-दर्द देवताओंके हथौड़े हैं जिनसे वे मर्त्यके हृदयके घोर प्रतिरोधको तोड़ते हैं..."

सावित्रीके दरबारी उसे सत्यवानकी कुटियातक पहुंचाकर लौट आते हैं। वह अपने बूढ़े सास, ससुरकी सेवा करती, सबको प्रसन्न रखती और सभीके जीवनमें सूर्यालोक फैलाती रहती है। उसे जो पूर्वज्ञान प्राप्त है उसे वह अपनेमें ही छिपाये रहती है। रातके समय जब वह सोते हुए सत्यवानके पास जागती हुई पड़ी रहती है तो दुःख उसपर छा जाता है। उसने न तो सत्यवानको और न उसके बूढ़े मां-बापको रहस्य बतलाया है। दुःखकी पोटीली उसने अपने लिये संजो रखी है। हर रात जब वर्षा छतपर टप-टप करती है तो यह दुःख उसके वक्षमें उमड़ पड़ता है। एक रात जब वह बहुत ही ज्यादा उदास है, उसे अपनी सत्ताके शिखरोंसे एक आवाज सुनायी देती है जो पूछती है, क्या तुमने इसीके लिये जन्म लिया है, हे सावित्री! अपने समस्त बलको इकट्ठा करके आनेवाले दुर्भाग्यके विरुद्ध संघर्ष करो। सावित्री कहती है, "मेरा बल मुझसे छीन लिया गया है। मैं मृत्युमें भी सत्यवानके पीछे-पीछे चलनेमें संतुष्ट हूं।"

वह आवाज कहती है, "तो मैं परम स्रष्टासे जाकर क्या कहूं, यही कि उन्होंने जिस सेविकाको धरतीपर भेजा था वह अपना उद्देश्य पूरा किये बिना लौट रही है?"

सावित्री अपने धरतीपर आनेके सच्चे प्रयोजनकी ओर जाग उठती है और उस आवाजसे कहती है, "मैं यहांपर तेरा ही एक अंश हूं जिसे तेरा काम सौंपा गया है, जैसे तू हमेशा ऊपर प्रतिष्ठित मेरा ही रूप है। हे महान्, अमर ध्वनि, मेरी गहराइयोंसे बातें कर, हुकुम दे, मैं यहां तेरी ही इच्छा पूरी करनेके लिए हूं।"

वह आवाज कहती है, "अपनी अंतरात्माको खोज, तेरा सारा बल तेरी अंतरात्मामें ही है।"

सावित्री इस शोध-यात्राके लिए अपनी अंतस्थ अंतरात्माकी गहराइयोंमें डुबकी लगाती है। वह आंतरिक देशोंमें प्रवेश करती है। वहां भयानक जन्तुओंके साथ उसकी मुठभेड़ होती है जो उसे लौट जानेके लिए कहते हैं। वह आंतरिक लोकोंके रक्षक सर्पसे मिलती है। वह निश्चेतनाके लोकोंमें अवचेतना, प्राण और मनमें प्रवेश करती है और अपना मार्ग आगे बढ़ाती जाती है। एक नाजुक समय वह देवोंके एक दीप्तिमान दल, मुकुटधारी राजाओं और ऋषि-मुनियोंको अपनी ओर दौड़ते हुए देखती है। वह मुग्ध होकर उनकी ओर देखती है और उसकी इच्छा होती है कि उनके साथ हो ले। वह प्रश्नात्मक भावसे उनकी ओर देखती है और पूछती है, तुम कौन हो? वे उत्तर देते हैं, 'सावित्री, हम तेरी गुप्त अंतरात्मासे सहायता लिये हुए, भगवान्की दुनियाको बचानेके लिए तेजीसे आ रहे हैं। सावित्री पूछती है, 'तो मेरी अंतरात्माका जन्मस्थान कहां है?' वे उसे जगत्के घुमावदार राजपथपर, उसके आरंभतक जानेके लिये कहते हैं। सावित्री उसी मार्गको अपनाती है और एक संकरे मार्गसे होती हुई एक ऐसे क्षेत्रमें जा पहुंचती है जहां वह अंतरात्माकी नीरव निकटताका अनुभव करती है। अब रास्ता निम्न, निर्जीव धरतीसे ऊपरकी ओर जाता है। वहां वह एक हल्के रंगका ज्योतिर्मय चोगा पहने एक नारीसे मिलती है।

“ऊबड़-खाबड़, खुरदुरी जमीन उसका आसन था, उसके पैरोंतले चुभता हुआ एक नोकीला पत्थर था, जगत्के शिखरपर दिव्य करुणाकी मूर्ति... सारे विश्वको अपने दुःखमय शरीरके रूपमें स्वीकार करती हुई विराजमान थी। सात दुखोंकी माताके रक्त बहाते हुए हृदयमें सात प्रहार लगे थे।” उसने सावित्रीसे कहा, “हे सावित्री, मैं तेरी गुप्त अंतरात्मा हूँ। मैं जगत्के दुःख-दर्दमें भाग लेने आयी हूँ। मैं अपने बालकोंके कष्टको अपने वक्षस्थलमें खींच लेती हूँ। तारावलीके नीचे मैं सभी दुःखोंकी परिचारिका हूँ... मैं नारी, उपचारिका, दासी और मार खाया हुआ पशु हूँ। मैं उन हाथोंकी भी सेवा करती हूँ जिन्होंने मेरे ऊपर क्रूर प्रहार किये, जिन हृदयोंने मेरे प्रेम और उत्साहको ठुकरा दिया था, मैं उनकी भी सेवा करती हूँ; मेरे अंदर रक्षा करनेकी शक्ति नहीं थी, मैं सहायता करने या हत्या करनेके लिए कोई शक्तिशाली अस्त्र नहीं लायी। भगवान्ने मुझे अपना प्रेम दिया है, शक्ति नहीं।”

उसकी बातें सुनकर सावित्री उत्तर देती है, “हे कष्ट सहन करनेवाली माता, दिव्य दुःखकी जननी, तू मेरी ही अंतरात्माका एक अंश है जिसे संसारके असह्य दुखोंको सहनेके लिए प्रस्तुत किया गया है। चूँकि तू है इसीलिये मनुष्य अपने दुर्भाग्यके आगे झुक नहीं जाते बल्कि सुखकी मांग करते हैं और भाग्यसे लोहा लेते हैं। चूँकि तू है इसीलिये अभागे अब भी आशा करते हैं। तेरी शक्ति सान्त्वना देनेके लिए है, रक्षा करनेके लिए नहीं। एक दिन मैं शक्तिको लेकर लौटूंगी और तुझे शाश्वतके चपकसे पान कराऊंगी।”

और सावित्री ऊपरकी ओर बढ़ती जाती है, “... वहाँ एक बड़ी-सी चट्टानपर जो सिंहासनकी तरह कटी हुई थी, चमकदार, सुनहरे और जामनी वस्त्रोंमें एक नारी बैठी थी। उसके हाथोंमें त्रिशूल और वज्र थे। उसके पांव एक लेटे हुए सिंहकी पीठपर रखे थे। उसके अधरोंके किनारोंपर प्रबल मुस्कान फैली थी। उसकी आँखोंके कोनोंमें स्वर्गकी अग्नि हंस रही थी। उसका शरीर साहस और स्वर्गिक बलकी राशि था। उसे देखकर ही पातालके देवोंकी विजय संकटमें पड़ जाती थी।”

उसने सावित्रीसे कहा, “हे सावित्री, मैं तेरी गुप्त आत्मा हूँ... मैं धरतीके दुःख और संकटके मार्गपर खड़ी रहती हूँ और अभागे तथा अभिशप्त लोगोंकी सहायता और रक्षा करती हूँ। बलवानोंके लिए मैं उनके बलका पारितोषिक लाती हूँ और दुर्बलोंके लिए अपनी शक्तिका कवच... मेरे कान पीड़ितोंकी पुकार सुननेके लिए तैनात रहते हैं और मैं अत्याचारी राजाओंके सिंहासन उलट देती हूँ...”

मैं दुर्गा हूँ, गर्विले तथा बलशालियोंकी देवी, मैं ही लक्ष्मी हूँ, सुन्दर सौभाग्यशाली लोगोंकी रानी और हत्या करते समय मैं कालीका मुखौटा पहन लेती हूँ... मैं युद्धमें अग्रणी और यात्रीके लिये ध्रुव तारा हूँ परंतु यह महान्, हठी जगत् मेरे कहेका प्रतिरोध करता है और मानव हृदयकी कुटिलता और दुष्टता उसकी तर्कबुद्धिसे अधिक बलवान् है...। वैश्व अशुभकी जड़ें इतनी गहरी हैं कि उन्हें उखाड़ना संभव नहीं है; वैश्व दुःख इतना विशाल है कि उसका उपचार करना असंभव है।”

सावित्री उत्तरमें कहती है, “हे शक्तिकी जननी, कर्म और सामर्थ्यकी मां, तू मेरी अंतरात्माका एक भाग है जिसे मानवजातिकी सहायता करनेके लिए और कालकी प्रसव पीड़ामें सहायता देनेके लिए प्रस्तुत किया गया है। तू मनुष्यमें है इसीलिये वह आशा और साहस करता है। तू है इसीलिये मनुष्योंकी अंतरात्मा स्वर्गतक चढ़ सकती है और वे परम प्रभुके आगे देवोंकी तरह चल सकते हैं लेकिन प्रज्ञाके बिना शक्ति आंधीकी भांति है... तूने मनुष्योंको बल दिया है लेकिन प्रज्ञा देना तेरे बसका न था। एक दिन मैं प्रकाश लेकर लौटूंगी तब मैं तुझे भगवान्का दर्पण भेंट करूंगी।”

वह अपनी आत्माके आरोहणकी यात्रामें ऊपर चढ़ती है और एक अधिक उल्लासपूर्ण आकाशमें जा पहुंचती है जहां एक नारी स्पष्ट तथा स्फटिक प्रकाशमें बैठी है। स्वर्गने उसकी आंखोंमें अपनी चमक अनावृत कर रखी थी। उसके चरण चन्द्ररश्मियां थें और उसका चेहरा उज्ज्वल सूर्य, उसका स्मित मृत, विदीर्ण हृदयको फिरसे जीने और अचंचलताके हाथोंका स्पर्श करनेके लिए मना सकता था।

उसने कहा, “हे सावित्री, मैं तेरी गुप्त अंतरात्मा हूं। मैं इस घायल दुःखभरी धरतीपर उसकी कसकको ठीक करने और उसके हृदयको लोरी सुनाकर शांत करने आयी हूं।... मैं कृपालु हाथोंवाली उदारता हूं जो आशीर्वाद देती है, मैं जीवनके बीच, कोलाहलके बीच नीर-वता हूं, मैं ज्ञान हूं जो वैश्व मानचित्रका अनुशीलन कर रहा है... लेकिन मानव मन अपने अज्ञानसे, मानव हृदय अपनी तुच्छता और अपने पार्थिव जीवनके दुःखके अधिकारसे चिपटा रहता है।”

सावित्रीने उत्तर दिया, “हे प्रकाशकी मां, आनंद और शांतिकी जननी, तू मेरी ही आत्माका एक अंश है जिसे आत्माको अपने भूले-बिसरे शिखरोंतक पहुंचानेके लिये प्रस्तुत किया गया है... चूंकि तू है इसलिये अंतरात्मा भगवान्की ओर खिंचती है। चूंकि तू है इसलिये घृणाके वावजूद प्रेम बढ़ता जाता है... लेकिन बुद्धिकी कठोर और पथरीली जमीनपर स्वर्गकी स्वर्णिम वर्षा करनेसे ही धरतीपर बैकुण्ठके फूल नहीं खिल उठेंगे...। एक दिन ‘उसका’ हाथ अपने हाथमें लिये मैं लौटूंगी और तू निरपेक्षका चेहरा देख पायेगी। तब सभी जगतोंमें प्रकाश होगा, शांति होगी।”

सावित्री अपनी अंतरात्माकी जन्मस्थलीकी खोजमें बढ़ती जाती है और अंधकारकी गुफाओं, चट्टानों और नीरव आत्माके विस्तृत मैदानोंमेंसे गुजरती है।

“सब कुछ निराकार, शुद्ध और निरावृत हो जाता है। तब अंतिम चट्टानमें काटी गयी सुरंगसे होकर वह उस जगह जा निकली जहां अमर सूर्य चमक रहा था। वहां ज्वाला और प्रकाशसे निर्मित भवन दिखायी देता है। वहां द्वारहीन जीवित अग्निकी दीवारको पार करके वह अचानक अपनी गुप्त अंतरात्माको पा लेती है।”

और “यहां ज्वाला और प्रकाशके इस कक्षमें वे दोनों मिले। उन्होंने एक-दूसरेको देखा और अपने-आपको पहचाना गुप्त देव और उसका मानव अंश, स्थिर अचंचल अमर और संघर्षरत अंतरात्मा। फिर जादुई रूपांतरकी गतिसे दोनों एक-दूसरेमें प्रविष्ट होकर एक हो गये।”

इस तरह श्रीअरविद आध्यात्मिक विकासकी अत्यंत महत्वपूर्ण घटनाका वर्णन करते हैं जिसमें मानव अंतरात्मा, चैत्य पुरुष विकसित होकर अति-आत्माके आमने-सामने आ जाती है और उसके साथ एक हो जाती है। उसके बाद व्यक्तिगत प्रयास बन्द हो जाता है और सारा भार उच्चतर आत्मा अपने ऊपर ले लेती है।

अपनी अंतर और बाह्य अंतरात्माके परस्पर मिल जानेके बाद सावित्रीके अंदर एक नया और ताजा बल आ गया है और जब वह जगती है तो नयी चुनौतियां लेनेके लिए तैयार है।

दिन बीतते जाते हैं, यहांतक कि वह भाग्यदग्ध दिन आ पहुंचा। सावित्री सबेरे-ही-सबेरे उठकर एक पत्थरपर सत्यवान्द्वारा बनायी गयी दुर्गाकी पूजा करती है और सासके पास जाकर सत्यवान्के साथ जंगलमें जानेकी स्वीकृति मांगती है, जहां वह लकड़ियां काटनेके लिए जा रहा है। वह कहती है, आजतक मुझे कभी यह अवसर नहीं मिला, आपकी स्वीकृति हो तो आज चली जाऊं। सासकी स्वीकृति पाकर वह सत्यवान्के हाथमें हाथ डाले

जंगलकी ओर चल पड़ती है। सत्यवान् बहुत उल्लासमें है, रास्तेमें कुंजोंमें शाखाओंपर बैठे अपने मित्रोंको ढेरता, उनसे बातें करता, गाता चला जाता है। वह सावित्रीसे उन चीजोंकी बातें करता जाता है जो उसे प्रिय हैं। इस तरह वे आगे बढ़ते जा रहे हैं। सावित्री उसके एक-एक शब्दको पीती जा रही है मानों यही उसका आखिरी शब्द हो। वह एक जगह जा पहुंचते हैं जहां सत्यवान गीत गाता हुआ पेड़पर कुल्हाड़ी चलाता है। उसके मुखसे निकलता गीत वन्द हो जाता है और वह सारे शरीरमें पीड़ाके दंशका अनुभव करता है। वह जरा रुककर फिरसे कुल्हाड़ीका प्रहार करता है। उसी समय दैवी लकड़हारेका प्रहार उसपर पड़ता है जो हमेशाके लिए उसके परिश्रमका अंत कर देता है।

वह एक अंतिम निराशामें चिल्ला पड़ता है, सावित्री, सावित्री, सावित्री, जरा मेरी ओर झुक, मेरी अंतरात्मा, मरते, समय मुझे अंतिम चुम्बन दे दे। सावित्रीके अधर उसपर झुकते हैं परंतु स्वयं उसके अधर...

अचानक उसे लगता है कि हम अकेले नहीं हैं, एक ठंडी उपस्थिति हमारे बीच आ खड़ी हुई है। पक्षियोंके कलरव और पशुओंकी आवाजें वन्द हो गयी हैं और साक्षात् मृत्यु उपस्थित है। सत्यवान् सावित्रीके आलिंगनसे जा चुका था।

आगे-आगे ओजस्वी सत्यवान्की आत्मा चल रही है, फिर मृत्युके देवता, यम और पीछे सावित्री—यह एक अनोखा यात्री-दल है। पृथ्वीके क्षेत्रसे आगे बढ़कर वे सूक्ष्मतर विराट् क्षेत्रोंमें चल रहे हैं। यम सावित्रीको पुराने प्रेमको भूलकर नयेकी खोजमें जानेकी सलाह देते हैं। न उनके उपदेशका और न उनकी धमकीका सावित्रीपर असर होता है। वे पार्थिव जीवन और उसकी परिपाटियोंकी क्षणभंगुरता दर्शाते हैं और यह बतलाते हैं कि कैसे हर आदर्श एकमात्र सत्य होनेका दावा करता है जिसे दूसरे ही दिन अन्य आदर्श अस्वीकृत कर देता है। वे कहते हैं कि न भगवान् हैं, न आत्मा है और न ही सत्य। “सत्यवान्को उसके भाग्यपर छोड़ कर तुम चली जाओ।” अंतमें हताश होकर वे सावित्रीकी दिव्य शक्तिको चुनौती देते हैं। किंतु “सावित्रीने यमकी ओर आंख तो उठायी पर प्रत्युत्तर न दिया...।”

“उसमें एक महान् परिवर्तन हुआ था...” “रहस्योद्घाटनके प्रज्वलित क्षणमें दिव्य अवतारने अपना परदा दूर उतार फेंका... तब

दो विरोधी एक दूसरेके आमने-सामने खड़े थे। यमकी सत्ता अंधकारके एक बृहद गढ़सी सावित्रीके सामने ऊंची खड़ी थी। उसके इर्द-गिर्द सावित्रीका जीवन सागरकी घेराबन्दीकी तरह बढ़ता गया।... दहकती ज्वाला-सी ज्योतिने यमके विचारोंको चाट लिया। प्रकाश उसके हृदयमें एक ज्योतिर्मय यातना था। उसकी शिराओंमें ज्योति एक भव्य वेदनाकी तरह फैल गयी। उसकी लपटमें यमका अंधकार बड़बड़ाता हुआ क्षीण होने लगा। उसने आदि रात्रिको पुकारा किंतु वह कांपती हुई पीछे हट गयी। उसने नर्कको पुकारा किंतु वह उदास होकर लौट गया। वह सहारेके लिए निश्चेतनाकी ओर मुड़ा... किंतु उसने पुकार सुननेसे इंकार कर दिया। उसका शरीर प्रकाशसे ग्रसित हो गया, आत्मा निगली गयी।”

सत्यवान् और सावित्री अकेले खड़े हैं किंतु उनके बीच पारदर्शक दीवार है। दृश्य बदलता है। यह शाश्वत दिवस है जहांसे उल्लसित आनंदके आकाशसे अद्भुत सूर्य नीचे निहार रहा है। अंधकारसे मुक्त यमराज अद्भुतताके देवके रूपमें सावित्रीके सामने आ खड़े हुए हैं। वे उच्चतम स्वर्गके उल्लासमय आनंद, सुख, शांति, शक्ति और परम प्रभुके साथ ऐक्यके सुख सावित्रीको देते हैं। परंतु वह स्वर्गके सारे प्रलोभनोंको ठुकरा देती है और परम स्रष्टाके दिये कार्यको पूर्ण करनेके लिए सत्यवान्के साथ पृथ्वीपर जानेका आग्रह करती है। देदीप्त

यमराज उसकी निष्ठासे प्रसन्न होते हैं। वे स्वीकार करते हैं कि सावित्रीके मुखसे उन्हींकी वाणी निकली थी। वे उसे वापसीकी अनुमति देकर अपना कार्य पूरा करनेका आदेश देते हैं।

सावित्री नीचेकी ओर छलांग मारती है और हरी-भरी धरतीकी ऊष्माका पास ही स्पर्श पाकर आंखें खोलती है। सत्यवान् निद्रामें डूबा हुआ है। सत्यवान् आंखें खोलकर अचरजसे पूछता है, “हम कहां गये थे? क्या वह स्वप्न था? हमारा पीछा करती हुई वह श्याम आकृति किसकी थी?” सावित्री उत्तर देती है कि उनका बिलुडना ही स्वप्न था। अब वे एक साथ हैं और सब कुछ शुभ ही शुभ है। तभी वे घोड़ोंकी टापें और कोलाहल सुनते हैं। महाराज शुभत्सेन अपनी दृष्टि और राज्य फिरसे पाकर सत्यवान् और सावित्रीको खोजने आये हैं। वे सत्यवान् और सावित्रीको जंगलमें इतनी देर लगा देनेके लिये उलाहना देते हैं। सत्यवान् सावित्रीकी ओर देखकर कहता है, “दोष इसका है। देर इसके कारण हुई है।” सबके नेत्र उसकी ओर उठते हैं जिसकी दिव्य कान्ति किसीसे छिपी नहीं रहती। एक ऋषि उसके इस परिवर्तनका कारण पूछते हैं तो सावित्री कहती है:

“हे ऋषिवर, प्रेम और ऐक्यका अनुभव करना ही जीवन है, मैं इसी सत्यको जानती हूं और प्राप्त करना चाहती हूं। वही हमारे इस चमत्कारिक परिवर्तनका कारण है।”

और सबके सब घरकी ओर चल पड़ते हैं।

स्वर्गकी रजत शांतिमें स्वप्न लेते हुए चन्द्रमासे भव्य बनी हुई रात्रिने अपना ज्योतिर्मय राज्य संभाला। वह प्रकाशकी रहस्यमय परतोंमें सुरक्षित विचारपर अपनी नीरवतामें मनन करती और अपने हृदयमें एक महत्तर उपाको पोसती रही।

सावित्री काव्यका आरंभ उपासे हुआ था, अन्त भी उपासे होता है।

—माधव पंडित

घर घरकी कहानी

(सुन्दरम्—श्री त्रिभुवनदास लुहार—गुजरातीके लब्धप्रतिष्ठ कवि हैं। यूं कहानी, निबंध, यात्रा और आलोचनाके क्षेत्रमें भी इन्होंने अच्छा स्थान पाया है। इन्हें गुजरातीमें अकादमी पुरस्कार मिल चुका है। यह कहानी इन्होंने हमें हिन्दीमें ही लिखकर दी है।—सं०)

इतनेमें ही वह आ गयी...

मैं खिड़कीको बन्द करने जा रहा था इतनेमें ही... वह दूरसे बगीचेके दरवाजेको बन्द करके अंदर दाखिल होती दीख पड़ी।

राह देखते-देखते काफी समय बीत चुका था। बहुतसे काम मेरे इर्द-गिर्द इधर-उधर फैले पड़े थे। सारी मेज मानों जंगल जैसी बन गयी थी। किसी चीजका पता लगाना मुश्किल हो गया था। उसका यही काम रहता था, मेरी अतंत्र अव्यवस्थामें कुछ व्यवस्था कर देना। पिताजी, लीजिये, आप इसको ही ढूँढ़ रहे थे न... पिताजी, यह चीज, पिताजी... पिताजी... उसका प्रत्येक वाक्य ‘पिताजी’से शुरू होता था।

मैं उठकर खिड़कीके पास चला गया। अब तो न जाने कब आयेगी। चलो भाई, नीचे चले जायें, कुछ देर बिस्तरपर लेट लें...।

अक्तूबर १९८४

खिड़की देहलीपर मेरे हाथ रुक गये। मैं देखता रहा, वगीचेके लंबे रास्तेपर वह आ रही थी। यहां ऊपरसे, ऊपरकी मंजिलसे नीचेवाले लोगोंको देखना... एक मनोहर दृश्य बन जाता था।

अब तो दिन ढलनेकी वारी आ गयी थी। कुछ चाय-पानी भी नहीं बना था। यह भी उसका ही काम था।

मैं देख रहा था, वह चली आ रही थी, उसी स्वस्थ तालबद्ध गतिसे, मानों वैसे नर्तकीकी चालसे, फुर्तीली, रौनकदार...

सीढ़ीपर चढ़नेकी उसके कदमोंकी आवाज सुनाई पड़ी, उसका सिर दिखाई दिया, वह पूरी-की पूरी ऊपर आ गयी, मेरे नजदीक आने लगी—मैं धूमकर उसकी ओर मुड़ गया।

‘पिताजी...’ कुछ मुसकाती वह बोली, ‘क्या करूं... क्या आपके लिए चाय बना लाऊं?’

मैं खिड़कीके पास ही कुर्सीपर बैठ गया। उसने एक छोटा-सा स्टूल मेरे पास रख दिया। उसके ऊपर चायकी ट्रे लाकर रख दी, केतलीमेंसे कप भरने लगी... मैंने देखा उसका हाथ कुछ कांप रहा था। उसने कप पूरा भरे बिना रख दिया। केतलीको पासमें रख दिया और एकदम झुककर मेरे पास बैठकर मेरे घुटनेपर अपना सिर रखकर रोने लगी। मानों किसी दूसरे प्रकारके वस्त्रनसे दूसरे प्रकारका प्रवाह बाहर बह रहा था।

मैं चुपचाप उसके वालोंमें अपना हाथ, अपनी अंगुलियां डालकर सहलाने लगा। वही सिर, वही बाल, वही....

उसने सिर उठाया, आंसुओंसे भरी आंखें मेरी ओर उठाकर बोली:

‘पिताजी, पिताजी, अब वह मुझे नहीं मिलेगा...’

और फिर सिर झुकाकर रोने लगी।

रोनेवालेकी रुलाईको शांत करनेका काम बहुत मुश्किल है।

मैंने उसे रोने दिया। केवल उसके बालोंको सहलाता रहा। बीच-बीचमें मेरी अंगुलियां भी रुक जाती थीं। मेरा दिमाग भी रुक जाता था। और उस शांत अवस्थामें एक चित्र-पट खुल जाता था। आह, मनुष्यका जीवन... भगवान्ने कैसा बनाया है, उसमें क्या-क्या किया है, मनुष्यको भगवान्ने क्या-क्या दिया है... उससे क्या-क्या छीन लिया है...

मेरा ही जीवन, इस लड़कीकी, मेरी प्यारी बेटीकी मांका जीवन, ... मानों ‘यां चिन्तयामि सततं’की ही पुनरावृत्ति बन गया था। यह बेचारी जानती भी नहीं थी कि उसकी मांने क्या-क्या किया था। उसे जन्म देकर ही चली गई थी, अपने पहिलेके आशिकके पास, फिर वापिस भी आ गयी। मैंने जैसे उसको जाने दिया था वैसे ही उसको आने दिया। अंतमें वह जाती भी कहाँ? मैं उसको, लोग जिसको पापिनी, व्यभिचारिणी कहेंगे, ठुकराकर कहीं दूर भगा सकता था? वह कितनी ही खराब हो, पर मेरे प्रति भी उसका शिकायतनामा कितना लंबा चौड़ा था। और उसकी बातें भी कितनी सच्ची थीं। मैं सहज ही कह सकता हूं, सूरदास के स्वरमें स्वर मिलाकर, ‘मो सम कौन कुटिल खल कामी।’

खैर, भूतकालमें जानेसे क्या लाभ? केवल वेदना, ऐसी वेदना जिसका इस छोटे बालकको ख्याल भी नहीं आ सकता। क्या किया जाय...

इसके प्रेमजीवनमें फिर भी कुछ घट गया।...

शब्द कितना काम दे सकता है? शब्दातीतके प्रदेशमें वह लाचार बन जाता है। फिर भी एक शब्द... आश्वासनका एक उद्गार...

मैं धीरे-धीरे बोलने लगा, “बेटी, बेटी...”

उसका रोना धीरे-धीरे शांत हुआ। कांपता हुआ शरीर स्वस्थ हुआ। उसने सर उठाया, अपने हाथसे बालोंको कंधेसे ऊपर उठा लिया। आंखें मेरी ओर मंडराई और बोली... क्या करूं पिताजी, माफ करना, आपकी चाय वैसी ही रह गयी... ठहरिये, दूसरी बनाये लाती हूं।....

मैंने उसका हाथ पकड़ लिया। वही हाथ जिसको जब वह बच्ची थी तबसे मैंने अपने हाथमें अनेक बार अनेक ढंगसे लिया था। वह मासूम बच्ची, वह खिलौने खेलती लड़की... वह टेनिसकी चैम्पियन युवती, वह प्रेमकी अवस्थामें तल्लीन... वह तकलीफमें डूबी हुई... हर अवस्थामें मेरे पास आती हुई...

मैं सोचता था कि उसे अपनी कहानी बता दूं, लेकिन यह मैंने नहीं किया। निरर्थक जैसा था। उसके लिये अपना बोझ ढोना ही काफी है। हम चित्रपट देखने साथ-साथ जाते रहे हैं। और वह कहती, पिताजी, यह क्या बात है... एक ही चीज बार-बार आती है, प्यार आया, चला गया, गहरा प्रेम था, नफरत भी फिर उतनी ही बन गयी। और किसी फिल्ममें गीत आ गया—

घर घरकी कहानी...

बहुत लोक प्रिय बन गया था, घर घरमें पहुंच गया था।

वह भी उसे गुनगुनाने लग गयी थी।

और मुझसे पूछती, पिताजी, इसके सिवा दूसरी कहानी नहीं हो सकती?

मैं कहता, क्यों नहीं?

तो वह बोलती... तो मुझे सुनाइये न।

क्या सुनाऊं उसे, उतनी स्थिरता, उतना धैर्य अभी उसमें नहीं था।

अभी तो उसे अपने अनुभवोंमेंसे गुजरना था, उतना ही बहुत था।

उसके बचपनके आंसू मैंने पोंछे थे, कितने कितने, निर्दोष मुग्ध... उसके यौवनके आंसू... कैसे गहरे, गभीर, पीड़ित, निरंतर...

वह बच्ची थी, तब जितनी जल्दी रोने लग जाती थी उतनी ही जल्दी भूल भी जाती थी। उतनी ही जल्दी हंसने भी लगती थी।

वह एकदम खड़ी हो गयी। खिड़कीसे बाहर देखने लगी, दूर-दूरतक देखती-सी उसकी दृष्टि एकाग्र हो रही थी। धीरे-धीरे उसने आंखें बन्द कर लीं। अपने हाथोंको छातीके ऊपर ले जाकर कपड़ेके भीतरसे एक छोटा-सा लिफाफा बाहर निकाला। उसको धीरेसे खोला। अंदरसे एक छोटी-सी तसवीर निकाली, क्षणभर उसे देखती रही, फिर आहिस्ता-आहिस्ता उसे फाड़ना शुरू किया, उसके दो टुकड़े बहुत सफाईसे किये और मेरे हाथोंमें देती हुई बोली...

‘लीजिये पिताजी, यह प्रकरण यहां समाप्त हो गया...’

और चायकी ट्रे लेकर नीचे चली गयी। और मैं उस फटी हुई तस्वीरको देखता रहा। उसके अंदरसे दोनों शरीर बड़ी सफाईसे कटकर अलग-अलग हो गये थे। एक थी मेरी बेटी, दूसरा था... उसका प्रेमी... वह भी किसीका बेटा था। उसकी ओर भी मेरा वात्सल्य बहने लगा...

शाम गहरी होती जा रही थी। प्रकाश धुंधला होने लगा था। मानों एक शांतिकी चादर पृथ्वीपर उतर रही थी। मैं खिड़कीसे बाहर दूर-दूरतक आकाशमें देखता रहा। विश्वमें क्या-क्या भरा पड़ा है।

‘लीजिये पिताजी...’ उसकी आवाजसे मैं चौंक-सा उठा। ‘अब तो आपको बहुत अच्छी बाय मिलेगी।’ और केतलीमेंसे वह मेरे लिये कप भरने लगी।

‘लीजिये, अब तो आपको दो कप पीने पड़ेंगे। अब वह यहां कभी नहीं आयेगा, उसका कप भी...’

वह मुसकाई और बोलने लगी...

‘पिताजी, आप जरा भी दुःखी मत होइयेगा। वह कहता था, मैं तुझसे जरा भी नाराज नहीं हूं। तू सर्वोत्तम व्यक्ति है, अनुपम स्त्री है, सुन्दर है, किंतु मैं बेवस हूं, अब कोई दूसरी पुकार, कहीं दूरकी, ऊपरकी मुझे बुला रही है।’ मैं चाहता हूं कि मैं तुझे सब कुछ कह सकूं, किंतु मेरी वाणी रुक जाती है। फिर कभी, फिर कभी, मैं आ जाऊंगा, तुझे बतलाऊंगा, अगर तुम मेरी राह देखती रहोगी तो...

‘खैर, पिताजी, छोड़िये, अब इस झंझटको। कहिये, आप मुझे क्या बतला सकते हैं? ...’

‘मैं?’ मैं स्तब्ध रह गया। उसे देखता रहा। ‘बैठ जा...’

वह उसी तरह बैठ गयी, जैसे अपने बचपनमें बैठती थी, मेरे घुटनेपर दोनों हाथ रखकर मेरी ओर बार-बार सिर उठाती रहती, सिर मेरे घुटनोंपर रख लेती, सिरको बायीं-दायीं ओर घुमाती रहती।

‘बेटी, मैं कुछ ही शब्द बोलना चाहता हूं। प्रेमकी बात परमात्माके जैसी गहन और अगम्य है। मनुष्यके जीवनमें प्रेमका प्रवेश होता ही है, परंतु उसके बाद जो कुछ होता है वह मनुष्यके हाथकी बात नहीं रहती। न जाने क्या-से-क्या हो जाता है। दो मनुष्योंकी आत्माएं जितनी निकट आती हैं उतनी ही दूर चली जाती हैं। मिलन और विछोहकी चरम सीमाएं दीख पड़ती हैं। दो प्रेमियोंके बीच अच्छे-बुरे, भयानक मधुर सब प्रकारके भाव प्रति-भाव बनते रहते हैं। मानों भगवान् मनुष्यके हृदयको एक फैक्टरी बना देता है...।’

‘हां पिताजी, और अपना माल पैदा करता है, उसे बेचता है, बाजारमें प्रदर्शित करता है, दुनिया भरमें फैलाता है। भला यह भगवान् किस प्रकारका है? ...’

‘वह तो वे ही जानते हैं, बेटा।’

‘नहीं नहीं पिताजी, हमें भी वह जानना चाहिये।’

‘ऐसा मालूम होता है कि वह बड़ा मखौलबाज तो है ही। देख न तेरी मां तेरे बारेमें कैसे सहज रूपमें कहा करती थी: ‘तू कितने लड़के पकड़ ले आती है... लड़केपर लड़के...’

मैंने देखा कि उसके मुंहपर एक शरारत जैसी मुसकान आ गयी। और वह बोली...

‘पिताजी आप तो जानते हैं, क्या किया जाय...’

‘इसीलिये तो मैं सब कुछ होने देता था। जीवन तो भगवान्की प्रयोगशाला ही है। उसको प्रयोग करते रहना पसंद है, शौक है...’

‘बाप रे, लेकिन हमें वह कितना ‘शॉक’ देता है? ऊफ, पिताजी शॉकिंग, शॉकिंग, हॉरिबल, हॉरिबल...’

मुझे लगा शायद वह रो न पड़े। लेकिन मेरी ओर मुड़कर वह खिलखिलाकर हंस पड़ी।

‘पिताजी, देखियेगा आप, वह, मेरा... मुझे छोड़कर चला तो गया है, पर मैं उसे नहीं छोड़ूंगी, उसके पीछे-पीछे चली जाऊंगी... उससे लगी ही रहूंगी, उसे... अगर, वह सचमुच भगवान्के पास पहुंचे...।’

मैं उसके अंदर एक शक्तिका, शांत प्रभावका उदय होते देख रहा था।

‘अच्छा, तेरी बात मंजूर है...’

मैं कुर्सीसे उठ गया।

‘अब तो घरमें दिये जलाओ। तेरी मांके मंदिरमें कुछ...’

‘और वह गीत गाऊं न, पिताजी?’

‘घर घरकी कहानी...’

आपने एकबार तो मुझे उसे गानेके लिए मना कर दिया था।

‘गा, बेटी, गा। उसे लंबा चौड़ा-करके भी गा...’,

घर घरकी कहानी...

युग युगकी कहानी...

‘हां, पिताजी,

दिल दिलकी कहानी,

हमने सुनी, तुमने सुनी,

कहो पूरी पूरी

उसे किसने पहचानी

आपकी ही कविता है न’?

और वह फुरतीसे उठकर चली गयी। सारे मकानमें उसकी मीठी आवाज गूँजने लगी, बाहर भी बहकर जाने लगी।

मुझे लगा, उसके प्रेमीके पास भी यह गुंजन, यह पुकार, यह शिकायत पहुंचेगी, हर प्रेमीके पास, भगवान्‌के पास भी...

‘घर घरकी कहानी...’

—सुन्दरम्

गुदड़ीका लाल

नया मकान बड़ी अच्छी जगह मिला। ठीक चौराहेपर। ऊपरसे नीचेकी चहल-पहल बड़ी अच्छी लगती, मानों बिना पैसेका सिनेमा हो। सवेरे पौने आठ बजे चारों ओरसे प्यारे-प्यारे रंग-बिरंगे मासूम फूल खिल उठते, उनकी महक, उनकी चटक और उनकी हंसी बड़ी मनमोहक होती। कोई बस्ता लिये गुनगुनाता आता, कोई सीटी बजाता तो कोई मुस्कान फैलाता, मित्रोंसे चुहल करता निकल जाता।

दोपहरको घर लौटता तो भीषण कोलाहल और चिल्लपोंमेंसे रास्ता काटकर घर पहुंचता और इसके बाद युद्ध-विरामकी-सी शांति छा जाती। कभी-कभी उस निस्तब्धताको भंग करतीं रंग बिरंगी आवाजें। एक दिन मोटी जोरदार आवाज सुनी, “बाबूजी ये आम कच्चे हैं, बेकार हैं। मैं कहता हूं इन्हें लेकर कूड़ेमें डालिये। ये दांततोड़, पेट दुखाऊ आम मुफ्तमें मिलें तो भी हाथ न लगाइये।” स्वाभाविक था मेरा कुतूहल मुझे खिड़कीतक खींचकर ले गया। देखता क्या हूं, लोग फेरी वालेको घेरे खड़े हैं और घड़ल्लेसे बिक्री हो रही है।

शामको कालेजके विद्यार्थी मटरगश्ती करते हुए घरोंको लौटते, एक दिन उन्हींके साथ एक लजाती, बल खाती, साथीकी ओर कटाक्ष फेंकती एक युवती देखी। उफ, इतना अच्छा अभिनय तो चलचित्रोंमें भी नहीं दिखायी देता। बस दिल बाग-बाग हो गया।

रातको भयंकर शोरगुलने मेरी नींदको झकझोर डाला। शंका हुई शायद शहरमें दंगा

फिसाद हो गया। रोशनी किये बिना ही खिड़कीसे जो दृश्य देखा उसे देखकर अपनी बीरता-पर तरस खाना पड़ा।

हमारे फुटपाथपर दिन-रात अड़्डा जमा रहता था। वहीं खाने, सोने और प्रेम तथा युद्ध करनेवाले रिक्शावाले ताड़ीमें धुत होकर गाली-गलौजका रस ले रहे थे। उनके बीच जग्गूको देखकर मेरे अचरजका ठिकाना न रहा। एक दिन देर हो जानेके कारण मुझे रिक्शा लेनी पड़ी। मैं किराया ठीक करके ही उसपर पांव रखना चाहता था लेकिन रिक्शावाला डट गया 'साव, आपको जो ठीक लगे दे दीजियेगा, पहले बैठ तो लीजिये।'

और सचमुच मैंने उसे जो कुछ दिया उसने बिना आनाकानीके ले लिया। उस दिनसे मुझे उसके हाल-चालमें रुचि पैदा हो गयी। पता चला कि फुटपाथ ही उसका घर है और अम्बर ही उसकी छत। दोस्त उसे जग्गू कहकर पुकारते थे और सभी रिक्शावालोंसे वही सबसे बढ़कर सौम्य था। मेरे अंदर उसके लिये सहानुभूति और मधुर भाव पैदा होते देर न लगी। लेकिन जग्गूका यह जंगली रूप देखकर मैं दंग रह गया। उफ, मनुष्यके कितने रूप होते हैं और हर एक कितना सच्चा मालूम होता है। मुझे पता ही न लगा कि कब तू तू मैं मैं का स्थान हाथापाईने ले लिया। इसने अपने प्रतिद्वन्द्वीको गिराकर घसीटना शुरू किया, उसने इसकी टांगें पकड़ लीं। बिना टिकटका दंगल देखनेके लिये भीड़ इकट्ठी होने लगी, आसपासके मकानोंकी खिड़कियां खुल गयीं।

मैं इस हंगामेसे उदास होकर मुड़ ही रहा था कि अचानक वातावरणमें नीरवता उतर आयी। देखता क्या हूं एक सफेद उलझे वालों वाली बुढ़िया चीथड़े लपेटे हुए अखाड़ेमें उतरी। उसने एक हाथसे अपनी झुकी हुई कमरको सहारा देते हुए दूसरेसे जग्गूको झकझोर दिया। उसकी पैनी पतली आवाज निस्तब्धताको चीरती हुई मेरे कानोंमें आयी "बबुआ, यह क्या? चल तेरे लिये मनपसंद खाना तैयार है। तू कितना गन्दा हो गया है। जा उधर कलपर जाकर शरीर साफ कर ले। चल, मेरे साथ चल। और खबरदार फिरसे नशा किया तो, मुझसे बुरा कोई न होगा। तेरी हठके कारण मैंने थोड़ा-सा ठर्रा पी लेने दिया कि चलो थका-मांदा है, जरा ताजा हो लेगा। लेकिन यह क्या गत बना डाली तूने?" बुढ़ियाने हाथ पकड़कर उसे घसीटा। जग्गू मेमनेकी तरह उसके साथ हो लिया। उसके साथियोंकी बातोंसे पता चला कि बुढ़िया जग्गूकी महतारी थी।

मैं जब कभी उधरसे गुजरता तो मां-बेटेके क्रिया-कलापको ध्यानसे देखा करता था। दोपहरको बारह बजेतक जग्गू लौट न आये तो बुढ़िया आसमान सिरपर उठा लेती थी। उसके मित्रोंमेंसे किसीके निहोरे करके उसे खोजनेके लिये भेजती, उसके लौटनेपर पहले डांट-डपटकी बौछार होती। वह कहती, ऐ बबुआ, तू भी क्या सहराती बबुओंकी तरह कटी पतंग बन गया है जो किसीकी परवाह नहीं करते, मां-बाप जाएं चूल्हे भाड़में, उनकी बलासे।' झबरे वालोंवाला जग्गू सिर झुकाये मांकी डांट पीता रहता। इतने भारी-भरकम डील-डोलवाले जग्गूकी उस समयकी भाव-भंगिमा देखने लायक होती थी। कभी-कभी तो लगता था कि वह अब रोया, अब रोया।

एक दिन हमारे यहां हड़ताल थी। मैं भी रोजके कार्यक्रमसे छुट्टी पाकर घरसे बाहर निकला। रिक्शावालोंके जमघटने मुझे बरबस अपनी ओर खींच लिया। बड़ी सम्यता, शिष्टता दिखाते हुए मैं उसी ओर हो लिया। जग्गूका पक्का दोस्त राजा सिरपर हाथ घरे बैठा था। एक-एक रिक्शावाला अपनी जेब टटोल रहा था, अंटीमें हाथ डाल रहा था और वहांसे दो-चार सिक्के निकालकर जग्गूके हाथपर घर रहा था।

जग्गूने राजाके कंधेपर हाथ रखकर कहा, “चल उठ, घबराता क्या है? हम सब हैं न तेरे साथ। ले” और राजाने शिथिल हाथोंसे पैसे ले लिये। मानों सभा भंग हो गयी। रिक्शा वाले वहांसे खिसकने लगे। मैं उनकी बातोंपर कान लगाये था, उससे पता चला कि कल राजा कानी कौड़ी भी न कमा पाया था और उसके बाद आ गयी यह आजकी हड़ताल। उसके और उसके घरवालोंके लिये तो दो दिनका उपवास हो गया। उन्हींमेंसे एक और बोला, अरे आज उसकी यह हालत है कल हमारी हो सकती है। हम एक दूसरेका साथ न दें तो—मेरी आंखें खुल गयीं। इन अनपढ़, पिछड़े हुए लोगोंमें कितनी सहानुभूति है, कितना सौहार्द है। ये पाते क्या हैं? कुछ इने-गिने सिक्के या मैले-कुचैले नोट लेकिन इनका दिल कितना उदार है, औरोंके दर्दको समझता है!

और उसके साथ अपने एक गाड़ी वाले, बंगलेवाले मित्रकी याद कौंध गयी। मुझे तुरंत कुछ पैसे चुकाने थे और बैंकमें छुट्टी थी, मैं उनके घर जा पहुंचा और अपनी मैत्रीके भ्रममें बड़े निस्संकोच भावसे उनसे एक राशि मांग बैठा और साथ ही कह दिया कल बैंक खुलनेपर लौटा दूंगा। उन्होंने बहुत आर्द्र होकर नाटकीय ढंगसे उत्तर दिया, ‘अरे भई क्या वक्त चुना है तुमने? इस समय तो मेरी जेब एकदम खाली है।’ लेकिन विधाता भी बड़े विनोदी हैं। उसी समय टेलीफोनकी घंटी बजी। उस ओरसे मित्रकी श्रीमती इतनी ऊंची आवाजमें बोल रही थीं कि मैं एक-एक शब्द सुन सकता था। मेरे मित्र झुंझला उठे। श्रीमतीजीने किसी दुकानसे फोन किया था, उन्होंने वहांसे एक कीमती साड़ी खरीदी थी, उनके पास इतना रुपया न था। नौकरके हाथों एक बड़ी राशि तुरंत मंगा रही थीं। मेरे मित्रने झट नौकरको बुलाया और मुझसे ‘अभी आया’ कहकर उसके साथ पासके कमरेमें चले गये।

और कुछ कहने सुननेकी जरूरत न थी। मेरा मन खट्टा हो गया और मैं वहांसे उठकर चला आया।

फुटपाथका संसार अपनी गतिसे चलता चला जा रहा था। एक दिन वहां एक नयी हल-चल देखी। एक अधेड़ भिखारिनने आकर अपना अड़्डा जमाया। झुटपुटा होते ही वह नौटंकीकी सस्ती भद्दी भाव-भंगिमाएं दिखा-दिखाकर रिक्शावालोंको फंसानेकी कोशिश करती।

एक दिन सड़ककी बत्तियां जल चुकी थी, जग्गू मांके साथ बैठा सुस्ता रहा था। दीवारकी ओटसे अंगड़ाई लेती हुई भिखारिनने अपने विगत यौवनका प्रदर्शन करते हुए जग्गूको हाथके संकेतसे निमंत्रण दिया। क्षण भरके लिये उसकी आंखें चमक उठीं, पर मांकी ओर नजर आते ही उसकी पलकें झुक गयीं और चेहरेपर एक अबोध बालकका भाव आ गया। भिखारिनके सारे नखरे धरे रह गये। भिखारिनने हार न मानी। कुछ दिनोंतक प्रयास करती रही परंतु जग्गूने कभी विचलित होनेका नाम न लिया।

जग्गूके लिये उसकी मां ही भगवान्का रूप थी। जीर्ण-शीर्ण चिथड़ोंमें चिपटी, उलझे मटमैले बालोंका मुकुट पहने, झुकी कमरपर हाथ टेके बैठी थी जगज्जननी जो उसे गिरनेसे बचाती और ऊपर उठनेका रास्ता दिखाती थी। मेरे मनने दोनों करोंसे मूक नमस्कार करते हुए कहा, ये ही हैं घूरेके पास लुढ़कते गुदड़ीके लाल। इन्हें देखकर लगता है कि देशमें श्रवण कुमारका रक्त सूख भले गया हो लुप्त नहीं हुआ।

—अनुबेन

दिसंबरकी वह रात

112367

वात सन् १९५१की है। दिसंबरका महीना था। हम बी.ए. अंग्रेजीकी ट्यूशन पढ़ने जाते थे शामको छः बजेके बाद। हठात् एक दिन पूर्वयोजनाके अनुसार अपनी एक सखीको अपनी पुस्तकें देकर मैं अकेली ही स्टेशनकी तरफ चल पड़ी और कानपुर जानेवाली गाड़ीमें बैठ गयी।

घरमें शादी-व्याहकी चर्चा चलती थी और मुझे भीतरसे ऐसा लगता था कि शादी नहीं करनी है, कुछ और करना है, क्या करना है यह अभीतक पता न था। पहले भारतको स्वतंत्र करानेमें सहयोग देनेकी इच्छा थी, पर अब तो भारत स्वाधीन हो चुका था। तो फिर क्या किया जाय ! ग्रामसुधार ? शायद ? इसी उद्देश्यको सामने रखकर कानपुरसे आगे उन्नाव-से भी कुछ मील दूर जंगलमें एक सेवा आश्रम था—अब न तो आश्रमका नाम याद है न संचालकका—वहीं जानेकी यह गुप्त-चुप तैयारी थी। घरमें किसीसे कुछ न कहा, पुस्तकमें पिताजीके नाम छोटा-सा पत्र रख दिया था और बस।

हां, तो घड़कते दिलसे गाड़ीमें बैठ गयी और जब गाड़ी चल पड़ी तो मुखकी सांस ली कि अभीतक तो सब ठीक है। पर ज्यों ही गाड़ी चली और मैंने डिब्बेके यात्रियोंकी ओर मुंह किया तो पाया कि सब मेरी तरफ भेदनेवाली दृष्टिसे देख रहे थे। अकेली जवान लड़की (उस समय उम्र कुल २० वर्ष थी) कोई सामान नहीं, गर्म कपड़ा नहीं, जरूर घरसे भागी है। उस दृष्टिको सहना कठिन था और मैंने अपने पासकी खिड़की खोल ली ताकि बाहर झांक सकूं, यद्यपि ठंडके कारण दांतसे दांत बज रहे थे। दो-तीन स्टेशनके बाद एक युवक चढ़ा और मेरे पास आ बैठा और बातें करने लगा। मुझे जैसे राहत मिली। उसने मुझसे मेरा गंतव्य और उद्देश्य जान लेनेके बाद कहा—आपके विचार बहुत ऊंचे हैं, मुझे भी ऐसे कामोंमें रुचि है... इत्यादि। गाजियाबादका स्टेशन आनेवाला था। उसने कहा, “यहां कानपुरके लिए गाड़ी बदलनी होगी। अभी ग्यारह बजे यह गाजियाबाद पहुंच जायेगी और अगली गाड़ी आपको दो बजे मिलेगी। आप अकेली स्टेशनपर क्या करेंगी, मेरे साथ घर चलिए मैं आपको दो बजे गाड़ीपर बैठा जाऊंगा।” मुझे चुप देखकर उसने कहा, “आप बिल्कुल चिंता न करें मेरे घरमें मां-बहनें हैं, आप उनके साथ रहिये।” इतनेमें स्टेशन आ गया, हम उतर पड़े। वह मुझसे घर चलनेको कह रहा था और मैं कह रही थी कि मैं यहीं प्लेटफार्मपर प्रतीक्षा कर लूंगी। देखते ही देखते प्लेटफार्म खाली हो गया, एकदम सुनसान, २-४ खोमचेवालोंको छोड़कर शायद हम दोनों ही बातें करते खड़े थे। मैं निश्चय नहीं कर पा रही थी, पर यह सन्नाटा देखकर इच्छा हुई कि इसके साथ... अभी इतना ही सोच पायी थी कि एक पुलिसवाला सामने आ खड़ा हुआ, डांटते हुए बोला, “कहां भगाये लिए जाता है, चलो थानेमें।” हम दोनों ही अप्रत्याशितसे चौंक गये, उस युवकने परिस्थिति समझानेकी कोशिश की पर वह तो पुलिसमैन था, जिसकी आंखें साधारण व्यक्तियोंमें भी दोष ही देखती हैं।

हमें पुलिस चौकीमें ले जाया गया। और भी कुछ पुलिसवाले इकट्ठे हो गये। युवकको दो-तीन झापड़ जमाकर डांटा गया—“कहां लिए जा रहा था लड़कीको इतनी रातमें भगाकर ?” उस बेचारेकी बात सुननेके लिए किसीके पास कान नहीं थे। मैं एकदम चुप थी। तभी वह पुलिसवाला मुझसे बोला—“चलो दारोगाके पास।” मैं उसके पीछे-पीछे चल दी। सदियोंकी रात, बारह बजेका समय और शायद रात भी अमावस्याकी क्योंकि, हाथको हाथ नहीं सूझ रहा था। एक तंग चक्करदार गलीका एक दरवाजा खटखटाया गया, दारोगा साहबको

गहरी नींदसे जगाया गया। दारोगा मुसलमान। नींदसे भरी लाल-लाल आंखें। इन पुलिस-वालोंको दिनमें देखो तभी खून सूख जाता है और इस भयानक परिस्थितिमें! भीतरसे मैं भय और ठंडसे कांप रही थी पर बाहरसे अपनेको खूब मजबूत बनाये रही। दारोगाने कई प्रश्न किये, फिर माता-पिताका पता पूछा। “तुम पता ठीक बता रही हो, गलत तो नहीं है, मैं अभी फोन करके पूछता हूं।” “पूछ लीजिये, एकदम सच कहा है।” फिर समझाया भी, “देखो, तुम जानती हो तुम हिंदुओंमें ऐसे भाग जानेपर लड़कीको माता-पिता स्वीकार नहीं करते और तुम हिंदू होते हुए एक मुसलमानके आश्रममें क्यों जा रही हो? ऐसे घरसे भागना अच्छा नहीं है।” पर अंतमें बड़े रौबसे कहा—“ले जाओ इसे, हवालातमें बन्द कर दो। मैं इसके माता-पिताको बुलाता हूं। तुम्हें कुछ कहना है?” “अगर आपके पास सच और झूठके लिए एक ही इंसफ है तो मुझे कुछ नहीं कहना,” मैंने बड़ी दृढ़तासे कहा, बाणीमें जरा भी कंप नहीं था, न भयका न ठंडका। हम बाहर आ गये तो दारोगाने पुलिसवालोंको बुलाकर कुछ कहा। फिर वे ही गलियां, वही अंधियारा। अबकी बार पुलिसवाला एक क्वार्टरके सामने रुका। उसने किसीको आवाज लगायी। अंदरसे आंखें मींचता हुआ एक युवक निकला। पुलिसवालेने आनेको कहा और जैसे ही मैं अंदर हुई कि उसने युवकको बाहरसे कुंडी लगानेको कह दिया। अब मैं ऊपरसे नीचेतक कांप गयी। वह बोला, “अंदर आ जाओ।” मैंने दृढ़तासे कहा, “मैं अंदर नहीं आऊंगी पहले रोशनी करो।” “हां, हां, रोशनी कर दूंगा, तुम अंदर तो आओ।” “मैं नहीं जाऊंगी अंदर।” वह अंदरकी तरफ जाता हुआ लौटकर मेरी तरफ आया और कुछ दूर खड़ा होकर बोला, हाथ भी बढ़ाया, “अंदर चलो,” मैंने अपना हाथ हवामें ही झटकते हुए गरज कर कहा, उस समय जैसे कहाँसे एक शक्ति आ गयी थी, “दरवाजा खोलो, मैं अंदर नहीं जाऊंगी” और उसने दरवाजा अंदरसे ही हाथ डालकर खोल दिया। दीवारें बहुत छोटी थीं। अब वह मुझे वहां ले गया जहां पुलिस चौकीके सामने आग जलाकर दूसरे सिपाही आग सेंक रहे थे। वह युवक भी वहीं था। एक सिपाहीने कहा, “अगर तू सच्ची है तो इस पुलिसवालेके मुंहपर अपनी चप्पल मार।” “मैं नहीं मारूंगी, इसने मेरा कुछ नहीं बिगाड़ा, तुम्हें जो करना है करो।” उस बेचारेको बेकारमें पिटते देखकर मुझे उसपर तरस आ रहा था पर मैं चुप थी। सारी घटना इतनी अप्रत्याशित थी कि बुद्धिने हड़ताल कर दी।

अवतकके व्यवहारसे पुलिसवाले शायद अनुमान कर चुके थे कि यह लड़की जबर है, हाथ नहीं आयेगी। थोड़ी देर बाद मैंने कहा, “मुझे स्टेशन छोड़ आओ, मैं यहां नहीं रहूंगी।” अंधेरा इतना घुप था कि कहीं रास्तेका पता ही न चल रहा था। तब वही सिपाही आकर मुझे स्टेशन मास्टरके हवाले कर गया और सारी कथा भी सुना गया। अब स्टेशन मास्टरने समझाना शुरू किया। बिना प्रतिवाद किये उनकी सारी बात सुनती रही। अंतमें उन्होंने बहुत प्रेमसे कहा कि अभी थोड़ी देरमें दिल्ली जानेवाली गाड़ी आयेगी, मैं तुम्हें उसमें बिठा दूंगा, तुम वापिस अपने घर चली जाओ। प्रत्यक्षमें मैंने हां कर दी पर भीतर अब भी संकल्प था कि वापिस घर नहीं, कानपुर ही जाना है। आगेकी कहानी लंबी है।

आज भी जब इस घटनाकी याद हो आती है तो शरीरमें उसी तरहकी शक्ति संचारित हो जाती है। इस घटनाने मुझे जीवनमें सदा ही यह पाठ पढ़ाया कि यदि अपने भीतर सच्चाई है तो कोई हमें छूने तकका साहस नहीं कर सकता। अनेकों बार जीवनमें ऐसे प्रसंग आये जब अकेले सफर करना पड़ा या अकेले रहना पड़ा पर कभी डर नहीं लगा, सदा ऐसा लगा कि एक शक्ति हमेशा हमारी सुरक्षाके लिए साथ रहती है जो बदमाश और गुंडोंकी शक्तिसे कहीं बड़ी है।

—ज्ञानवती

पहाड़ोंकी यात्रा

पहाड़ोंपर जानेका सुअवसर मुझे कम ही मिला है, शायद यही कारण है कि उनके प्रति मुझे शुरूसे ही बहुत आकर्षण रहा है। स्मृति-पटलपर बस एक ही चित्र है मसूरी और देहरादून के पहाड़ोंको देखनेका। उसके पहले जिन पहाड़ी स्थलोंपर गयी वह उम्र ऐसी थी जब चित्र आंखोंसे उतरकर सीधे हृदयमें अंकित नहीं हो पाता है। इसी कारण इस साल नैनीताल जानेका अवसर हाथ आया तो खुशिका वारापार न रहा। आज आपके सामने अपनी उसी यात्राकी एक झांकी प्रस्तुत है।

करीब चालीस पचासके हमारे दलने सात नवंबरकी सुबह पांच बजे दिल्लीसे प्रस्थान किया। कुछ अपरिचित चेहरे थे अधिक परिचित। लेकिन बसमें कुछ ही घण्टोंमें सभीके साथ एकदम से दांतकाटी रोटी जैसा संबंध हो गया। गजरौला, हापुड़, मेरठ, मुरादाबाद इत्यादि कितने ही शहरोंको पार किया हमने और साथ-साथ अपनी ननिहाल, इन स्थानोंमें बसे सगे संबंधियोंकी स्मृतियां भी हृदयमें उड़लती चली गयीं। हंसते-गाते, खिलखिलाते हमने छह घंटे कैसे बसमें गुजार दिये इसका किसीको अन्दाज तक न हुआ, अब मकान इक्के-दुक्के, हरियाली अधिक नजर आ रही थी। रूपमें क्रमशः निखार आ रहा था—उजली, हरी-भरी वसुंधरा जो धानी रंगका दुशाला ओढ़े थी जिसपर खिले रंगोंके पुष्पोंकी बहार छायी हुई थी, आकाश भी स्वयंको धरतीसे कम खुशनसीब महसूस नहीं कर रहा था, उसमें भी विभिन्न रंगोंमें खुशियोंकी हिलोरें उठ रही थीं। और धरतीकी आकाशके प्रति पुकार जिसने ऊंचे-ऊंचे पहाड़ोंका रूप ले लिया था शीघ्र ही हमारी नजरोंके सामनेसे गुजरने लगे। और उसके बाद पहाड़ोंकी कतारोंपर कतारें दीखने लगीं। ऐसा महसूस होने लगा मानों हम किसी दूसरी धरतीकी सैरको निकल पड़े हैं। घाटियोंसे आ रही ताजगी, पहाड़ोंको सीढ़ीनुमा काट-काटकर बनाए वागोंके रंगोंकी छटाएं और पहाड़ोंकी खिलखिलाहटके रूपमें झरते झरनोंका गीत और विभिन्न चहचहाटोंका मधुर वाद्य वृन्द इन सबपर मानों पहरा दे रहे थे लंबे-लंबे चिनारके पेड़। प्रकृतिके सौंदर्यने हम सबपर अहोभाव अंकित कर दिया, कुछ देर पहले तक हो रहा शोर-शराबा एकदमसे अंतर्धान हो गया, किसीकी नजर विरल रंगके पुष्प-गुच्छपर या सुन्दर नजारेपर पड़ती तो वह औरोंका ध्यान उस ओर आकर्षित करता। परिणाम यह होने लगा कि एक झटकेमें कभी सारेके सारे वायों ओर देखनेके लिये झुक जाते तो कभी दायीं। पल-पल बसका संतुलन बिगड़ता, हमें इसकी सुध नहीं, बौखलाये-से समस्त सौंदर्यको आंखोंमें अंकित कर लेना चाहते थे। हार कर बस रोककर जब ड्राइवर साहबने हमें अपनी कठिनाई और साथ-साथ जोखिमकी भी बात बतायी तो सारेके सारे पल भरके लिए सक्तेमें आ गये।

सच, मनुष्यका मन भी अजीबोगरीब चीज है। क्षण भर पहले जहां हम निर्भय विचर रहे थे वहीं ज्यों ही भयका कांटा उग आया कि उसकी चुभन रह रहकर होने लगी। जो घाटियां अभीतक केवल सौंदर्यकी खान दिखायी दे रही थीं वे ही अब खतरनाक मोड़ोंपर मुंह बाये अजगरकी न्याई प्रतीत होने लगीं, यह सच है कि चढ़ाई काफी कठिन थी, सामने देखा तो लगता था रास्ता सांपकी कुटिल चालसे ऊपर ही ऊपर चलता चला जा रहा है। कुछ प्रौढ़ तो ऐसे घबरा उठे कि गोल घुमावोंपर चालकको खड़े हो-होकर हिदायतें देने लगे जिसका परिणाम यह हुआ कि ड्राइवर भी कुछ आत्मविश्वास खो बैठा और तीन बार उसने बस ऐसे काटी कि हमें लगा साथ-साथ हमारी सांसें भी कट रही हैं। दम

साथे तनावमें कुछ देर बैठे रहे। उस समय कहांका सौंदर्य और कहांका नजारा। सबके चेहरोंकी हवाइयां उड़ती नजर आ रही थीं, फिर भी बीच-बीचमें एक दूसरेको देखकर मुस्करा उठते थे। अचानक झटकेसे बस रुक गयी। दलके नेताने सलाह दी कि कुछ लोग उतर कर पैदल चलें तो कुछ हल्की बसको चढ़नेमें कठिनाई कम होगी। अंधा क्या चाहे दो आंखें। दरवाजा खुला, उस तनावके जेलखानेसे छूटे कैदीकी तरह मित्र-मंडली उतर पड़ी। कहना न पड़ेगा कि कांटेके हटते ही प्रकृतिका सौंदर्य-कमल एक बार फिर हमारी आंखोंके सामने खिल उठा।

सात-आठ किलोमीटरकी चढ़ाई तय करते वक्त कई ऐसे छोटे-छोटे सुखद अनुभव हुए जिनकी वारीकीको शब्दोंमें गूँथनेमें लेखनी अक्षम है। इतना ही कह सकती हूं कि हर नजारा नया था, लकड़ीके घरोंकी चिमनियोंसे निकलता धुआ, पर्यटकोंको कुतूहल और प्रसन्नतासे देखते लाल-लाल गालोंवाले गोल-मटोल बच्चे, लकड़ीका बोझ सिरपर ढोकर ले जाने-वाली आकर्षक युवतियां जो पलभर ठहर-ठहर कर आंचलको दांतमें दबाये शर्मीली नजरोंसे हमें देख, मुस्कराती हुई आगे बढ़ जातीं, आदि ऐसे कितने ही अविस्मरणीय दृश्योंसे समृद्ध हम वहां पहुंच गये जहां हमारी बस खड़ी थी। पहुंचकर मालूम हुआ कि इसके आगे बस नहीं जा सकती है, सामान लादकर आधे मीलकी चढ़ाई तै करनी है। थके हारे ये सब और नीचे ढेर सारा सामान पड़ा देख कइयोंकी हिम्मत पस्त होने लगी, लेकिन और कोई चारा न था। शाम उतर आयी थी। हवामें खुनकी बढ़ती जा रही थी। हर एकने अपनी सामर्थ्यके अनुसार सिरोंपर बोझ ढोकर अपने गन्तव्यकी ओर कूच किया। चढ़ाईमें मुश्किलसे बीस कदम आगे बढ़ते ऐसे हांफ-हांफ जाते कि सिरका बोरिया विस्तर धम्मसे नीचे फेंक वहीं बैठकर पांच मिनट सुस्ताते। उस दिन तो ऐसा लगा मानों यह ब्रह्माका आधा मील है। खैर, हांफते-कांपते जब ऊपर आकर लगे तो सारी थकान उड़नछू। ८००० फीटकी ऊंचाईका वह नजारा ही इतना शानदार था कि उसमें इस थकानकी किसी भी तरहकी कोई संगति ही नहीं बैठती। उस दिन तो गरम-गरम खाना खाकर सब विस्तरोंमें दुबक गये। ठंड इतनी कि सबने जितने कपड़े संभव थे चढ़ा लिये, उसके ऊपर दो-दो कंबल लेकर सोये, फिर भी कइयोंने सुबह कहा कि हमारे तो सारी रात दांत बजते रहे।

हम जिस महलनुमा स्थानमें ठहरे थे उसका नाम था 'बन निवास।' 'बैनी वासी' नामक किसी अंग्रेजकी कोठीका यह हिंदुस्तानी रूप सबको बहुत पसंद आया।

नैनीतालमें हमने क्या-क्या किया इसका वर्णन करने लगूं तो इस लेखका ओर-छोर ही न मिलेगा। इसे अगली दफाके लिए रख छोड़ आपको वहांसे आगे ले चलूं। पांच दिन नैनीतालमें बिताकर छठे दिन सुबह-सुबह हमें वहांसे आगे जाना था। 'बन निवास'को खुदाहाफिज कह सब अपना सामान ले नीचे उतरे। मुश्किलसे आधा मील गये होंगे कि बस रुक गयी। डीजलको पिघलानेके लिए एक घंटा आग जलानेके बावजूद अभीतक उसकी ठंड उतरी नहीं थी। सब उतरे। इधर-उधरसे बीन-बटोर कर लकड़ियां, घास फूस लाया गया, आग सुलगी और हमारे लिए तो जंगल में मंगल हो गया। नैनीतालसे हनुमानगढ़ आये। वहां सुन्दर मूर्तियोंके दर्शन किये। मंदिरकी सफाई, देवी-देवताओंकी सज्जा मनमोहक थी। एक पंडित बैठे रामायणका पाठ कर रहे थे। ऐसा शांतिपूर्ण वातावरण था कि वहांसे निकलनेका मन ही न करे। लेकिन जाना तो था।

भुवालीके हाट-बाजारोंसे होते हुए हमारा अगला पड़ाव पड़ा कोसानीमें। सबने कहा, "यहां सूर्योदय जरूर देखना।" सुबह-सुबह सब मुंह अंधरे ही जग गये। सचमुच देखने योग्य था

वह सूर्योदय। नन्दा देवी, त्रिशूलकी शृंगलाको जब बालरविने अपने करकमलोंसे जगाया तो वे पर्वत हेम पर्वतकी न्याई दीखने लगे। या ऐसा लगा मानों उस शांत नीरवतामें कोई मुनि ध्यानस्थ हैं जिनके शरीरसे स्वर्ण-रश्मियां फूट-फूट रही हैं। यह दृश्य सभीके लिए अनूठा और अहोभाव अंकित कर देनेवाला था, अचानक कर्कश कौएकी भांति चाय वाला लड़का कांव-कांव करने लगा। उसके लिए भला उस सूर्योदयका क्या मूल्य। उसके लिए बस मूल्य था तो अपने ग्राहकोंका।

जैसे-जैसे दिनका उजाला बढ़ने लगा पहाड़ोंका रूप भी निखरने लगा। हमने सुबहसे दोपहर उनके बदलते रूपोंकी छटाओंको देखा। उसके बाद वहासे भी प्रस्थान करनेका समय आ गया। वहां से नीचे उतरकर 'पन्तजी'के मकानको बाहरसे देखकर हम बड़े वैजनाथकी ओर।

वैजनाथमें काकड़ी घाटके तटपर पार्वती जी का मंदिर दर्शनीय है। आदमकद मूर्ति। निश्चित रूपसे कोई यह नहीं बता पाया कि यह पत्थरमें है या तांबेमें। अद्भुत! सचमुच आश्चर्यजनक!! वह सुन्दर भंगिमा, वे चेहरेके भाव मानों साक्षात् पार्वतीजी करुणाद्रवित हो अपने भक्तोंके बीच उतर आयी हों। कुछ मित्रोंने उन्हें अपने कैमरेमें उतारना चाहा लेकिन सख्त मनाही हो गयी। हृदयमें ही उतार आश्रमके एक बगीचे माउन्टेन पैराडाइजका रास्ता पकड़ा।

यहां भी बससे उतरकर काफी चढ़ाई करनी थी। नीचे ही भरपेट नाश्ता पानी कर हिम शीतल कोसी नदीकी धारामें स्नानकर चढ़ाई शुरू की।

भरे पेट यह चढ़ाई भी आसान न लगती अगर सारे रास्ते किसी अनाम झरनेकी कलकल गूंज, असीम प्राकृतिक शोभा हमारे साथ-साथ न चलती। ऊपर जाकर देखा छोटे-छोटेसे तीन-चार घर, अपने नामके अनुरूप स्थान। अगर हमें सेब, अखरोट इत्यादिसे लदे पेड़ोंके दर्शन होते तो हर तरहसे सोनेमें सुहागा हो जाता। लेकिन फूलोंका वैभव तो देखा। गुलाब-का इतना बड़ा आकार वहीं देखा। केवल आकार ही नहीं खुशबूमें भी बेजोड़। और इतनी प्रशंसा पानेवाली नरगिस भी वहीं देखी। नन्हा-सा पौधा, जो प्रशंसाके कारण विनम्र हो एक कोनेमें सिमट गया था झुककर खुशबू ली तो नासिका धन्य हो उठी।

स्वर्गमें शायद ज्यादा देर टिका नहीं जा सकता। हमें भी यहांसे बहुत जल्दी निकलना पड़ा। वहांसे और भी चढ़ाई चढ़कर 'दुत्कानेर' स्थानपर पहुंचना था और वहांके लोगोंने कहा कि दोपहर-दोपहर ऊपर पहुंच जाओ क्योंकि तीन-चार रोज पहले यहां नरभक्षी आ गया था जो मवेशियोंको मार चुका है। औरोंके दिलकी बात वे ही जानें लेकिन मेरा खून तो सूख गया। रास्तेमें जंगल पार करते समय भगवान्‌को इतना पुकारा कि जिसका हिसाब नहीं लेकिन ऊपर पहुंचकर सारी भीगी विल्लियां शेर बन गयीं। रास्ता पार करते समय डर लगा था यह भूल गये।

वहांसे कैंचीमें नीम करोली बाबाके आश्रममें एक रात बिता अगले रोज हम वापिस दिल्ली-के लिए रवाना हो गये। काफी दूरतक पहाड़ोंका साथ रहा लेकिन धीरे-धीरे करके वे आंखोंसे ओझल होने लगे और समतल भूमि आने लगी तो सबको महसूस हुआ कि उस दुनियाको छोड़ यह हम कहां जा रहे हैं।

१६ नवंबर हम वापिस दिल्ली आ गये। एक अव्याय समाप्त हुआ, अब दूसरा शुरू होनेवाला था एशियाई खेलोंका। लेकिन "वह भी क्या इतना ही रोचक और मनोरंजक होगा," दलके प्रत्येक सदस्यके मनमें यही प्रश्न था।

—वन्दना

आरम्भकथा—लेंसकी

मुझे पता नहीं मेरा जन्म कहां हुआ था, हिंदुस्तानमें; पाकिस्तानमें या कहीं अरबस्तानमें। सचमुच अपने जन्मके बारेमें पता किसको होता है? मैं तो निर्जीव पदार्थ हूं। सब जीवोंके सिरमौर मनुष्य भी अपने जन्मके बारेमें क्या जानते हैं? इधर उधरसे सुनी-सुनायी बातें फिर भी इतना पता है कि मानव मुझे लेंसके नामसे पुकारते हैं।

जब मैंने होश संभाला तो ज्योतिषीने कहा कि मैं किसी सुनयना सुन्दरीकी 'आंखका नूर' बननेके लिए जन्मा हूं। बड़ी प्रसन्नता हुई यह सुनकर और उत्सुकता भी जागी। मुझे तरह-तरहके व्यायाम करवाये गये और फिर एक छोटेसे घरमें बंद कर दिया गया जहां मख-मली, गद्दे तकिये लगे थे। मुझे काफी समय इसी तरह काटना पड़ा।

आखिर वह शुभ दिन आ ही गया। किसी नेत्रविशेषज्ञने मुझे उठाकर एक सुनयनाकी आंखोंमें बिठा दिया। मैंने सुना

‘नयनोंकी कर कोठरी पुतरी सेज विछाय।

पलकोंकी चिक डारिके पियाको लिया रिझाय।’

सुनयना मेरे ऊपर लट्टू हो गयी। हर समय अपनोंमें परायोंमें, मेरा ही गुणगान करती। मैं बहुत-बहुत खुश था।

लेकिन सब दिन होत न एक समान। उसने मुझे कसना शुरू किया। सबेरे पांचसे रातके ग्यारह तक मुझे आंखोंमें वसाये रहती और बेचारी आंखोंको छपे कागजोंपर दौड़ाती रहती। तंग आ गया ऐसे जीवनसे। मेरा सुख ख-पुष्प बनकर रह गया।

एक दिन सुनयना मुझे लिये हुए वन-विहारके लिए निकल पड़ी। रास्तेमें बड़ा मजा आया। कहीं सीमेंटके वन प्रांतर थे तो कहीं हरे-भरे धानके खेत लहरा रहे थे। मैं देखते न अघा रहा था कि मेरी मालिकिन धम्मसे एक तालाबमें कूद पड़ी। मुझे भी होश न रहा। उसकी देखा-देखी मैंने भी नयनोंकी कोठरी छोड़कर तालाबमें डूबकी लगायी और मान लीजिये कि मेरा प्राणांत हो गया। मालिकिन पानीमेंसे लगभग अंधी होकर निकली लेकिन निकल तो गयी और मैं उधर पंकमें जा फंसा। बहुत चीखा-चिल्लाया पर वहां सुनने-वाला था ही कौन?

उधर मेरे बिना मालिकिनका जीवन नीरस हो गया। वह दिन-रात मेरी रट लगाये रहती। आखिर एक दिन उसके अनेक मित्रोंने आकर अगस्त्य मुनि बनकर तालाबको पिया तो नहीं, उलीच डाला और 'नदियाके जल सूख गये प्यारे, रैनमें चमकत तू'की तरह मैं पंकमें चमकता हुआ दिखायी दे गया। शायद यहां मुझे यह बता देना चाहिये था कि हमारी जातिमें मैं का अर्थ होता है हम दो, दक्षिण और वाम।

खैर बड़ी खुशियां मनायी गयीं, अगस्त्य मुनिकी अच्छी तरह पूजा की गयी और फिरसे चिकवाली कोठरीमें जा बैठा और राहतकी सांस ली।

लेकिन नहीं। मैंने शायद जल्दबाजी कर डाली। मेरी मालिकिन एक छोटेसे बालकको गोदमें लिये अपने घरकी ओर जा रही थी। दोनों आनंद विभोर थे। बालकने हुमकके साथ हाथ मारा और मैं नीचे जमीनपर आ रहा।

शायद आपको मालूम हो कि मैं छल-कपटसे हमेशा दूर रहता हूं। सभी मुझे पारदर्शक कहते हैं हालांकि मुझे इसमें कोई विशेषता नहीं दीखती। खैर, मालिकिनने और उसके

मित्रों ने फिरसे मेरी तलाश शुरू की। मैं भी इधरसे चिल्ला रहा था परंतु सदा तूतीकी सुनता कौन है नक्कारखानेमें। पारदर्शक होना ही मेरा दुर्भाग्य हो गया। मैं किसीको दिखलाई न दिया और सब थक कर चले गये।

उधरसे एक भिखारिन आ रही थी। उसने देख लिया कि बढ़िया रंगीन कपड़े पहने सुन्दरियां यहां कुछ ढूँढ़नेमें लगी थीं। वह भी बिना कुछ जाने ढूँढ़ने लग गयी। मैं खुशीसे चमक उठा और मेरी चमकका प्रतिबिम्ब उसकी आंखोंपर पड़ा। उसने झट मुझे उठाकर अपनी मैली दुर्गन्धभरी धोतीके खूटमें बांध लिया। उसने समझा कोई हीरा-बीरा होगा। इधर-उधर लोगोंको दिखाया। किसीको मेरी पहचान न थी। आखिर अपने और मेरे सीमाग्यवश भिखारिनको मेरी मालिकिन दीख गयी और उसने मुझे ले जाकर उसके सामने पेश कर दिया।

हम दोनोंका नया जीवन शुरू हुआ। मेरे बिना मालिकिन की दुनिया अंधेरी थी और उसके बिना मैं धूरेके लायक। अब दोनोंका मूल्य बढ़ गया और हम दोनोंने निश्चय किया कि अब कभी न बिछुड़ेंगे। भगवान् हमारी सहायता करें।

स्वाभिमानि

भाईजीकी फूलोंसे लदी अर्थीको श्मशान ले जानेके लिए धीरे-से उठाकर वैनमें रख दिया गया। गाड़ीका इंजन घरघराया नहीं कि सामनेसे हाहाकार मचाती पूनम्मा दौड़ती हुई आती दिखायी दी। मनने मनको ही विश्वास दिलाते हुए कहा—हां, पूनम्मा ही है। तुम्हारी दृष्टि धोखा नहीं दे रही। मेरी रगोंका खून जम गया। साल भर पहले उसकी एक झलक देखी थी तबसे उसे एक बार फिर देख सकनेकी उम्मीद लिए उस बसके अड़्डेके न जाने कितने चक्कर काट आयी थी लेकिन व्यर्थ। अंदर-ही-अंदर मन कह उठता था—वह स्वाभिमानि अब तुम्हारी आंखोंके सामने नहीं फटकेगी।

हां, सच है अचानक आंखें अतीतकी ओर पलट गयीं—तब मैं छात्रावासमें नयी-नयी आयी थी। ढेर सारे नौकर-चाकर थे वहां। आते ही बड़ी बहनने खूब हिदायतें दे दीं थीं—देखो, सोनेके अपने इन मीन जेवरोंको जब कभी उतारो तो आलमारीमें सहेज कर रखना, और ताला लगाकर चाबी बोर्डिंगकी दीदीको देना मत भूलना। जियाकी हिदायतें कुछ दिन तो याद रहीं और काममें भी आयीं लेकिन फिर मैं वही अपने पुराने ढर्रेपर आ गयी। रोज शामको खेलने-कूदने जाती तो अंगूठी, चेन उतारकर यूँ ही आलमारीमें रख देती। याद है, पूनम्माने दो-तीन दफा मुझे टोका भी था लेकिन कुछ आलस और कुछ पुराने नौकरोंकी विश्वासपात्रताकी निश्चितताके कारण मेरी आदतमें बदलाव न आना था न आया।

उस दिन खेलकर आयी तो अपनी आलमारीके एक पटको खुला पाया। वही हुआ जिसकी आशंका खुला दरवाजा देखकर हो गयी थी—सोनेके साथ-साथ कृत्रिम आभूषणोंपर भी किसीने हाथ साफ कर दिया था। सारा दोष मेरा ही था। हिदायतोंके बावजूद, निरंतर असावधानी बरतनेका फल ढेर सबेर मिलना ही था। दिलका जोरोसे घड़कना स्वाभाविक था। वह जानता था कि ऐसी बात छुपायी नहीं जा सकती और बतानेपर करारी डांट मिलेगी। खैर, रातको जियाको अस्पष्ट-सी भाषामें बताया नहीं कि वह बसकी तरह फट पड़ीं। पलक झपकते न झपकते छात्रावासकी दीदियों सहित सभी बच्चे मेरे कमरेमें आ धमके।

रात वैसे ही हो चली थी, सभी नौकर-चाकर चले गये थे। छात्रावासकी बड़ी दीदीने कहा—कल सुबह भाईजीके पास चलकर बात करेंगे।

भाईजी थे हमारे छात्रावासके संचालक। उनका नाम सुनते ही मेरे दिलपर पड़ा मनो बोज़ तुरंत हट गया। वे तो साक्षात् करुणाकी मूर्ति थे। ऐसा भव्य, अनोखा और मधुर व्यक्तित्व था उनका कि आदमी कत्ल करके भी उनके सामने अपने दोषको कबूलनेमें न हिचकिचाये। मैं तो ऐसी निश्चित होकर सोयी मानों भगवान्‌के दरबारमें सुनवाई होगी।

भाईजीने जो समझाया-बुझाया, उसे न डांट कह सकते हैं न फटकार, वह तो शुद्ध प्रेम था। छात्रावासके किसी भी नौकरपर मेरा संदेह तो न था लेकिन उनके पूछनेपर मैंने इतना जरूर कह दिया कि पूनम्माने दो-चार बार मुझे चीजें वहां रखनेसे मना किया था।

पूनम्माको बुलाया गया। मेरे पास खड़ी दीदीने उससे बस इतना ही पूछा—क्यों पूनम्मा, तुमने इसकी अंगूठी और माला तो नहीं देखीं।

इतना सुनना था कि वह छोटी-सी पूनम्मा मानों सुरसा जैसी विशाल हो गयी। आंखोंसे आग बरसने लगी, चेहरा तमतमा उठा, अभिमान भरे गुस्सेमें बोली—क्या! आपको मुझपर शक है? और इतना कहते-न-कहते वह उल्टे पांव लौट पड़ी।

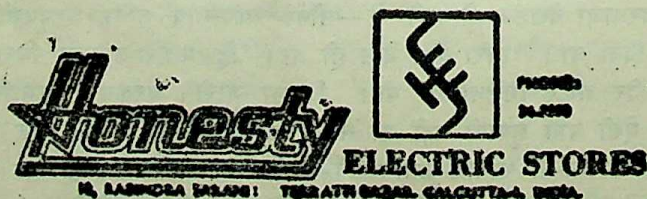
दीदीका पीठ पीछेसे पुकारना पूनम्माको वापिस न ला सका। वह स्वाभिमानी एक बार गयी तो फिर लौट कर न आयी।

छात्रावास जाकर देखा, पूनम्माका कमरा उजाड़ पड़ा था—दो-चार कपड़े लेकर, बाकी सारा सामान, रुपये पैसे और उनके साथ अपनी टूटी-फूटी भाषामें एक चिट्ठी छोड़कर, वह हमसे अलग होकर पता नहीं किस दिशामें चली गयी थी। पत्रकी भाषा भले टूटी-फूटी हो, लेकिन उसका भाव इतना जवर्दस्त था मानों मुंहपर कसकर तामाचा जड़ दिया हो। उसमें लिखा था—हम गरीब जरूर हैं लेकिन, नमकहराम नहीं। मुझपर शक करना ही मुझपर धब्बा लगाना है। ऐसे पैसे लेनेकी अपेक्षा भूखों मरना भला है।

हम लोगोंको काटो तो खून नहीं। पूनम्मा हमें बहुत कुछ सिखाकर चली गयी थी। न जाने कितनी खोज-खबर ली, लेकिन उसका कहीं अता-पता न मिला।

उस दिन बसमें बैठी ही थी कि अचानक कोई परिचित-सा स्वर कानोंसे टकराया। मुड़कर देखा, नीचे भिक्षा-पात्र हाथमें थामे पूनम्मा!! मुझसे आंखें चार होते ही अचकचाकर ऐसे भागी मानों सांप उसका पीछा कर रहा हो। किर्कतव्यविमूढ़ जबतक मैं अपने-आपमें आयी, तबतक बस घरघराकर चल पड़ी थी। वापसीमें उस स्थानके भिखारियोंसे पूछताछ करनेपर मालूम हुआ कि वह सुबह ही अपना सामान बटोरकर जैसी आयी थी वैसी ही कहीं और चली गयी।

(शेष आवरण ३ पर)



सारा धन भगवान्का है। वह जिन लोगोंके हाथमें है वे उसके मालिक नहीं, न्यासी या ट्रस्टी हैं। आज वह उन लोगोंके पास है, कल कहीं और हो सकता है। सब कुछ इसपर निर्भर है कि जबतक धन उनके पास है, वे अपनी धरोहरको किस प्रकार रखते हैं, उसका किस भावसे किस चेतनासे, किस उद्देश्यसे उपयोग करते हैं।

— श्रीअरविंद

इण्डियन आयलके निम्नलिखित डीलर्स आपकी सेवामें

कुमार आयल्स

केरोसीन व मोबिल आयल डीलर्स
राम तीर्थ मार्ग, सहारनपुर
फोन ४०६५/७८६५

कुमार आयल्स

केरोसीन व मोबिल आयल डीलर्स
देवबन्द
फोन : २४

बन्सल एण्ड कम्पनी

पेट्रोल पम्प, उत्तर काशी
फोन : ४५

कुमार कैरियर्स

पेट्रोल तथा पेट्रोलियम ट्रांसपोर्टर्स
राम तीर्थ मार्ग, सहारनपुर
फोन ४०६५/७८६५

हेड आफिस

बन्सल निकेतन

लक्ष्मण झूला मार्ग

ऋषिकेश

फोन १२५

With the Best Compliments of:

Indian Transport Agency

Leading Transport House since 1949; Fleet Owners

H.O.: 24 Ganesh Chandra Avenue, Calcutta - 700 013

PHONES: 27-8960, 27-3069

TELEX: 2191 DORA IN

Branches :

Bombay, Madras, Bangalore, Delhi, Gauhati, Dibrugarh,
Digboi, Tinsukia, Sibsagar, Jorhat, Shillong, Nowgong, etc.

You have no right to dispense with morality unless you
submit yourself to a law that is higher and much more
rigorous than any moral law.

THE MOTHER

Space donated by

Kooverji Devshi & Co. Pvt. Ltd.

FIREX LEADS TO SAFETY

SAFETY LEADS TO PROSPERITY

प्रबोध



नवंबर

१९८४

पुरोधा

नवंबर १९८४

वर्ष २३, अंक २, पूर्णांक २१६

विषय-सूची

एक प्रार्थना		१
मनुष्य, चितनशील प्राणी (कविता)		२
दैनन्दिनी		३
‘भारतीय संस्कृतिके आधार’पर : अंतरात्माका सत्य		५
‘सान्ध्य वार्ताएं’ : पागलपन, बीमारी इत्यादिके बारेमें		६
हमारे योगका उद्देश्य	श्रीअरविंद	८
व्यष्टिकी महानता	श्रीअरविंद	१०
पूर्णयोग		१३
‘श्रीमातृवाणी’से : नीलमकी कहानी		१६
तुच्छ अहंका लोप		१९
प्यारका बंधन	अनुबेन	२४
चीन, जापान और भारत		२६
प्रतिभाका स्रोत		२७
‘गीर्वाणी’ : श्रीमद्भागवतमाहात्म्यम्	वन्दना	आ० ३

सूचना : आजकल बी. पी. का खर्च बहुत बढ़ गया है। एक बी. पी. लौट आये तो हमें लगभग पांच रुपयेका नुकसान होता है इसलिये हम कोशिश कर रहे हैं कि बीपियां न भेजी जायं। सभी ग्राहकोंको चंदा खतम होनेपर सूचना दी जाती है। सूचना मिलनेके साथ ही अपना चंदा भेजनेकी कृपा करें और यदि किसी कारण आप ग्राहक नहीं रहना चाहते तो भी सूचना तो अवश्य दे दें। यहांसे पुरोधा हर महीनेकी १० तारीखको और अग्निशिखा पहले महीनेकी २५ तारीखको भेजी जाती है। डाकवाले कई बार देर लगा देते हैं।

हो सके तो एक साथ या किस्तोंमें ४०० देकर पुरोधा और अग्निशिखा दोनोंके आजीवन सदस्य बन जाएं और औरोंको भी बनाएं, इससे उनकी और हमारी दोनोंकी सहायता होगी।
 धन्यवाद।

संपादक पुरोधा एवं अग्निशिखा, पांडिचेरी ६०५००२

पुरोधा वार्षिक : १४.००; अग्निशिखा वार्षिक : १०.००; दोनों मिलाकर : २२.००

संपादक : रवींद्र, वंदना

प्रकाशक : अनिरुद्ध सरकार, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००२

एक प्रार्थना

रूपोंके जगत्में सौंदर्य भंग उतना ही बड़ा दोष है जितना विचार जगत्में 'सत्य'का भंग। सौंदर्य वह पूजा है जो प्रकृति विश्वके परम प्रभुको अर्पित करती है। सौंदर्य रूपोंमें भागवत भाषा है। भगवान्की ऐसी चेतना जो बाहरी रूपोंमें सुन्दरताकी समझ और अभिव्यक्तिमें अनूदित नहीं होती, एक अपूर्ण चेतना है।

लेकिन सच्चे सौंदर्यको खोजना, उसे समझना और सबसे बढ़कर जीना उतना ही कठिन है जितना भगवान्की किसी और अभिव्यक्तिको। यह खोज और अभिव्यक्ति निर्व्यक्तिकता और अहंके त्यागकी उतनी ही मांग करती है जितनी सत्य या आनंदकी खोज। शुद्ध सौंदर्य वैश्व है और उसे देखने और पहचाननेके लिए तुम्हें भी वैश्व होना चाहिए।

हे सौंदर्यके स्वामी, मैंने तेरे विरुद्ध कितने अपराध किये हैं, अब भी कितने अपराध करती हूँ... मुझे अपने विधानकी पूर्ण समझ दे ताकि मैं फिरसे उसका पालन करनेमें चूक न जाऊँ। तेरे बिना प्रेम अपूर्ण होगा, तू उसके पूर्णतम आभूषणोंमेंसे है, तू उसकी सबसे अधिक सामंजस्यपूर्ण मुस्कानोंमेंसे है। कभी-कभी मैंने तेरी भूमिकाको गलत समझा है लेकिन अपने हृदयकी गहराइयोंमें मैंने सदा तेरे साथ प्रेम किया है। अत्यंत मनमाने और उग्र सिद्धांत भी तेरी पूजाकी उस अग्निको नहीं बुझा सके जिसे बचपनसे ही मैंने तेरे लिए अर्पित किया था।

तू वह हर्गिज नहीं है जो दंभी मनुष्य तुझे समझते हैं। तू ऐकांतिक रूपसे जीवनके इस या उस रूपके साथ आसक्त नहीं है। तुझे हर एक रूपमें जगाना और चमकाना संभव है। परंतु इसके लिए हमें तेरे रहस्यको खोज निकालना जरूरी है...

हे सौंदर्यके स्वामी, मुझे अपने विधानकी पूरी समझ दे ताकि मैं उसका पालन करनेमें कभी चूक न जाऊँ, ताकि तू मेरे अंदर प्रेमके स्वामीकी सामंजस्यभरी पूर्णावृत्ति हो सके।

२९ जनवरी १९१७

—माताजी

मनुष्य, चिन्तनशील प्राणी

प्राणी-विरहित विश्व-पिण्डके
 नृत्य अग्निमयकी सुविशाल ।
 उस विराट् नगण्यतामें जो
 वसुन्धरा नामक ग्रह-बाल ॥
 इस असीम आयोजनमें वह
 क्षुद्र-नुच्छ सत्ता केवल ।
 पुरा-कालमें उसने सहसा
 जन्म दिया मानव निर्बल ॥
 जीव अविद्याका वह अपनी,
 स्वल्प मन्द जो है प्रकाशमय ।
 मन है उसका आंशिक अन्धा,
 अरु आंशिक है ज्योतिर्मय ॥
 क्षुद्र प्राण है उसका जैसे
 मल्ल युद्धमें हो तन्मय ।
 मर्त्य लोकमें बन्दी रहता वह,
 जीवन लंगड़ा, अल्पवर्षमय ॥
 फिर भी आगे बढ़ता उसका,
 है प्रयत्न हृदयस्थ देवका ।
 निश्चेतनमय अर्द्धरात्रिमें,
 एक चेतना जागृतका ॥
 ज्योति अतीत निजी पानेके
 उद्देश्य महत्में लगा हुआ ।
 शक्ति अज्ञात दया-विरहितके
 सम्मुख है वह डटा हुआ ॥
 निश्चेतन मिट्टीसे उठकर
 देवत्व अभीप्सु वह निकल पड़ा ।
 मन्थर-मन्द प्रगति है उसकी
 शाश्वत दिनकी ओर सदा ॥

श्रीअरविदकृत 'मैन द थिंकिंग ऐनिमल' के आधारपर

—डा. रामकृष्ण

देनन्दिनी

नवंबर

१. जिसमें धैर्य और दृढ़ताके साथ जीवन और उसकी कठिनाइयोंका सामना करनेका साहस नहीं है वह कभी साधनाकी अधिक बड़ी आंतरिक कठिनाइयोंमेंसे पार न हो सकेगा। इस योगमें सबसे पहला पाठ है जीवन और उसकी परीक्षाओंका स्थिर मन, दृढ़ साहसके साथ सामना करना और भागवत शक्तिपर पूर्ण निर्भरता रखना।
२. जो लोग सच्चे हृदयसे भागवत संरक्षणको बुलाते हैं, उन्हें वे कभी निराश नहीं करते। किसी भी बाहरी परिस्थितिको अपने अंदरकी श्रद्धाको डिगाने मत दो। इस श्रद्धासे बढ़कर और कोई चीज तुम्हें पार करने और लक्ष्यतक पहुंचनेकी शक्ति नहीं देती... यात्राके लिए श्रद्धा ही सबसे मजबूत लाठी है।
३. अधीरता हमेशा भूल होती है। वह सहायता नहीं, बाधा देती है। साधनाके लिए स्थिर, प्रसन्नचित्त श्रद्धा और विश्वास सबसे अच्छा आधार है।
४. एक बार तुम योगके मार्गपर आ जाओ तो फिर करने लायक चीज एक ही रहती है, अपने-आपको एक ऐसे निश्चयसे बांध लो कि चाहे कुछ भी हो, चाहे जैसी कठिनाइयां आयें, तुम अंततक चलते रहोगे।
५. इस योगमें हम सचाईपर इतना अधिक बल देते हैं और इसका अर्थ है समस्त सत्ताको एकमात्र सत्य, एकमेव भगवान्की ओर सचेतन रूपसे खुला रखना।
६. जो काम इस जन्ममें किया जा सकता है उसे अगले जन्मके लिए छोड़ रखना वैसा ही है जैसे जो काम आज किया जा सकता है उसे कलके लिए उठा रखना। यह तो आलस्य है... जबतक मनुष्य जीवित है तबतक कोई चीज असंभव नहीं है।
७. साहसी बनो और अपने विषयमें इतना अधिक मत सोचो। तुम अपनी तल्लीनताका केंद्र अपने तुच्छ अहंको बनाते हो इसीलिए तुम दुःखी और असन्तुष्ट हो। अपने-आपको भूलना ही इस तरहके सभी रोगोंकी महान् औषधि है।
८. ध्यानके लिए निश्चित घंटोंकी अपेक्षा एक एकाग्र और अंतर्मुखी मनोभावको निरंतर बनाये रखना अधिक महत्वपूर्ण है।
९. लोग जिन्हें महान् कार्य कहते हैं उन्हें मिथ्या गर्व और अभिमानके साथ करनेकी अपेक्षा वर्तन धोते हुए या खाना परोसते हुए अपने-आपको पूरी तरह भगवान्को दे सकनेपर तुम भगवान्के अधिक निकट पहुंच सकते हो।
१०. अध्यवसायके बिना कुछ भी नहीं हो सकता। किसी चीजको इसलिए नहीं छोड़ देना चाहिए कि वह कठिन है, बल्कि वह जितनी ही कठिन हो उतना ही अधिक उसमें सफलता पानेका तुम्हारा संकल्प होना चाहिए।
११. हमारा रास्ता बहुत लंबा है, और यह बहुत आवश्यक है कि प्रत्येक पगपर यह पूछे बिना कि हम आगे बढ़ रहे हैं या नहीं, शांतिके साथ आगे बढ़ते रहें।
१२. अगर तुम दृढ़ संकल्प कर लो तो मेरी शक्ति तुम्हारे प्रयासोंको सहारा देनेके लिए उपस्थित रहेगी।
१३. चिंता मत करो, केवल अपने अंदर और अधिक अच्छा करनेके संकल्पको हमेशा बनाये रखो।
१४. हां, शांत और धैर्यपूर्ण विश्वासमें ही विजयकी सुनिश्चितता रहती है।

१५. भय नहीं करना चाहिए—भय बुरा सलाहकार है; यह एक चुम्बककी तरह कार्य करता है और जिससे हम भय करते हैं, उसे ही आकर्षित करता है। दृढ़ विश्वास बनाये रखो, देर हो या सवेर, सब कुछ ठीक हो जायगा।
१६. तुम्हें कभी डरना नहीं चाहिए। नींदमें भी तुम्हें मेरी स्मृति बनाये रखनेमें समर्थ होना चाहिए और यदि खतरा आ जाय तो सहायताके लिए मुझे पुकारना चाहिए। तब तुम देखोगे कि दुःस्वप्न विलीन हो रहे हैं।
१७. आशा या श्रद्धाको कभी नहीं खोना चाहिए—कोई (रोग) ऐसा नहीं जो असाध्य हो, भगवान्की शक्तिके लिए हम कोई सीमा नहीं बांध सकते।
१८. अवसाद हमेशा अयुक्तिसंगत होता है और उससे हमें कोई लाभ नहीं होता। यह योगका सबसे सूक्ष्म शत्रु है।
१९. तुम्हारा लक्ष्य ऊंचा और विस्तृत, उदार और निष्काम होना चाहिए। इससे तुम्हारा जीवन तुम्हारे और दूसरोंके लिए भी मूल्यवान बन जायेगा।
२०. तुम्हारा आदर्श चाहे कुछ भी क्यों न हो वह तबतक पूरी तरह सिद्ध नहीं हो सकता जबतक तुम अपने जीवनमें पूर्णता न सिद्ध कर लो।
२१. अपनी पूर्णता पानेका पहला कदम है स्वयं अपने बारेमें, अपनी सत्ताके विभिन्न भागों और अपनी क्रियाओंके बारेमें सचेतन होना।
२२. प्रयास ही आनंद देता है, जो मनुष्य प्रयास नहीं कर सकता उसे कभी आनंद नहीं मिल सकता। तत्त्वतः आलसी लोगोंको कभी आनंद नहीं मिलता... प्रयास सत्ताको इतना स्पंदित करता है कि तुम आनंदका अनुभव कर पाते हो।
२३. संसारमें, जैसा कि वह वास्तवमें है, जीवनका लक्ष्य निजी सुख प्राप्त करना नहीं है बल्कि व्यक्तिको सत्य चेतनाकी ओर उत्तरोत्तर जगाना है।
२४. भगवान् दूर नहीं हैं। वे हमारे अंदर हैं, अंदरकी गहराइयोंमें और भावनाओं और विचारोंके ऊपर। भगवान्के साथ शांति और निश्चिति है और सभी कठिनाइयोंका हल भी है।
२५. जो भगवान्पर भरोसा रखता है, उसका शरीर चाहे कहीं क्यों न हो, वह उनकी प्रेम-मय भुजाओंको कभी नहीं छोड़ता।
२६. अगर तुम, चाहे कुछ भी क्यों न हो, सीधा जानेका निश्चय करो और रास्तेमें आने-वाली कठिनाइयोंको सहने और बिना दुर्बलता और अप्रिय प्रतिक्रियाके उनका सामना करो तो तुम बहुत-सी कठिनाइयोंसे बच जाओगे।
२७. जो भगवान्को खोजता है उसे अपने-आपको, भगवान्, केवल भगवान्को अर्पित करना चाहिए।
२८. हमेशा त्रुटियों और गलत प्रवृत्तियोंको ही देखते रहनेसे अवसाद आता है और श्रद्धाकी हिम्मत टूटती है। वर्तमानके अंधेरेकी ओर कम देखो, अपनी आंखें ज्यादातर आनेवाले प्रकाशकी ओर रखो। श्रद्धा, प्रसन्नता, अंतिम विजयमें विश्वास, वे चीजें हैं जो सहायता करती हैं और प्रगतिको अधिक आसान और तेज बनाती हैं।
२९. अभीप्सा हमेशा करो परंतु ज्यादा शांतिके साथ, अपने-आपको बड़ी सरलतासे पूरी तरह भगवान्की ओर खोलते हुए अभीप्सा करो।
३०. अगर तुम प्रयत्न और संघर्षके लिए तैयार नहीं हो तो इस तथ्यको स्वीकार कर लो कि जीवन नीरस और असंतोषप्रद होगा, चुपके से इस बातको स्वीकार कर लो।

(प्रकीर्ण)

‘भारतीय संस्कृतिके आधार’पर

अन्तरात्माका सत्य

हम देख आये हैं कि भारतीय धर्मने परम सत्यतक पहुँचनेके लिये किसी निश्चित और कंटे-छंटे मार्गका अनुसरण करनेपर कभी जोर नहीं दिया, उस चरमतक पहुँचनेके अनगिनत रास्ते हैं—किसी भी विचार या किसी भी आकारके रूपमें उस सत्यका अनुसरण किया जा सकता है, महत्व है उस आंतरिक अनुभूति और चेतनाका जिसके द्वारा उस सत्यतक पहुँचा जाता है। हो सकता है कोई मत या संप्रदाय मनुष्यकी अंतरात्माको विश्वात्मा या परमात्माके साथ अविभाज्य रूपमें एक माने, दूसरा मनुष्यको सारतत्वमें तो भगवान्के साथ एक पर प्रकृतिमें उससे भिन्न माने, तीसरा, भगवान्, प्रकृति और मनुष्यमें स्थित अंतरात्माको तीन भिन्न-भिन्न शक्तियोंके रूपमें स्वीकार करे लेकिन इन सभीके लिये अंतरात्माका सत्य एक समान और अटल है। भारतीय द्वैतवादीके लिये भी भगवान् परम आत्मा और सद्बस्तु हैं जिनमें और जिनके द्वारा प्रकृति और मनुष्य क्रिया करते और अपना अस्तित्व रखते हैं और अगर तुम इससे भगवान्को बाहर निकाल दो तो फिर प्रकृति और मनुष्यका कोई मूल्य नहीं रह जाता। आत्मा, प्रकृति—चाहे उसे माया कह लो या शक्ति—और मनुष्यों तथा प्राणियोंमें विद्यमान अंतरात्मा—ये तीन सत्य हैं जिन्हें भारतके समस्त धार्मिक संप्रदाय और परस्पर विरोधी धार्मिक दर्शन सर्वसम्मत रूपसे स्वीकारते हैं, साथ-साथ इस बातको सभी मानते हैं कि मनुष्यको अपने अंदर स्थित दिव्य अंतरात्माको पाना है और भगवान्, परमात्मा या शाश्वत ब्रह्मके साथ अपनी अंतरात्माका किसी-न-किसी प्रकारका संपर्क या पूर्ण ऐक्य ही आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त करनेकी शर्त है। विशाल रास्ता हमारे सामने खुला है। चाहे हम भगवान्की कल्पना और अनुभूति निरपेक्ष और अनंतके रूपमें करें, चाहे हम उन्हें विश्वातीत या विश्वव्यापी सनातन पुरुष मानें, उनके पास पहुँचनेका हमारा तरीका चाहे कोई भी क्यों न हो, हमारी आध्यात्मिक अनुभूतिका एकमात्र प्रमुख सत्य यह है कि भगवान् प्राणीमात्रके हृदय, उसके केंद्रमें स्थित हैं और समस्त प्राणी उनमें स्थित हैं, और उन्हें प्राप्त करना ही महान् आत्मोपलब्धि है। वास्तवमें धर्म-संबंधी विश्वासोंके समस्त मतभेद, भारतीय मनके लिये सबमें विद्यमान एक ही अंतरात्मा और परमेश्वरको देखनेके अलग-अलग तरीकोंसे बढ़कर और कुछ नहीं हैं। यह आत्म-साक्षात्कार ही एकमात्र आवश्यक वस्तु है; अंदर स्थित परमात्माकी ओर खुलना, अनंतमें निवास करना, शाश्वतको खोजना और उपलब्ध करना, भगवान्के साथ एकता पाना—यही धर्मका सर्वसामान्य विचार और लक्ष्य है, यही है आध्यात्मिक मोक्षका अभिप्राय। यही वह जीवंत सत्य है जो पूर्णता और मुक्ति प्रदान करता है, यही है धर्मके विभिन्न रूपोंके पीछेका सारतत्व।

हम कहते हैं कि आध्यात्मिक मार्गमें भारत ही सामनेकी पंक्तिमें खड़ा रहेगा, इस बातके समर्थनके लिये और कुछ न भी हो फिर भी यह एक तथ्य ही काफी है कि इस महान्तम और सर्वव्यापी सत्यको भारतमें विशालताके साथ केवल देखा ही नहीं गया, अनुपम तीव्रताके साथ केवल अनुभव और प्रकट ही नहीं किया गया, सभी संभव दृष्टिकोणोंसे केवल इसपर विचार ही नहीं किया गया बल्कि इसे सचेतन रूपसे जीवनका एक उन्नत विचार, समस्त चिंतनका अंतःसार, समस्त धर्मका आधार और मानव जीवनका चरम लक्ष्य भी बनाया गया। जिस सत्यकी भारतने घोषणा की है वह भारतीय चिंतनकी अपनी कोई निराली विशेषता नहीं है। सभी जगहके उच्चतम मनीषियोंने और सन्तोंने इस सत्यका अनुसरण किया और उसे पाया है।

लेकिन भारतके सिवाय दूसरे स्थानोंमें यह कुछ एक विचारकोंका, विरले गृह्यवेत्ताओं या असाधारण शक्तिसंपन्न आध्यात्मिक प्रकृतिके व्यक्तियोंका ही जीवंत मार्गदर्शक रहा है। जन साधारणको इस 'सत्य'का कोई स्पष्ट बोध या अनुभव नहीं प्राप्त हुआ, इसकी किसी छायाकी झांकी नहीं मिली, वे धर्मके केवल निम्नतर सांप्रदायिक पहलूमें, देवी-देवताके विषयके निम्नतर विचारोंमें या जीवनके बाह्य पार्थिव रूपोंमें ही भटकते रहे, दूसरी किसी संस्कृतिने जो कार्य नहीं किया, उसे करनेमें भारतीय संस्कृति अपने दृष्टिकोणकी व्यापकता तथा अपनी जिज्ञासाकी तीव्रताके कारण अवश्य सफल हुई। यह धर्मपर यथार्थ आध्यात्मिकताके मुख्य आदर्शकी मुहर लगानेमें सफल हुई, धार्मिक क्षेत्रके प्रत्येक भागमें उच्चतम आध्यात्मिक सत्यकी कुछ जीवनी शक्ति और प्रभाव अवश्य ले आयी। यह कहना गलत होगा कि भारतीय मन केवल रीति-रिवाजों, मत-विश्वासों और प्रथा इत्यादिके बाहरी आचारोंमें ही बंध गया है, इसके विपरीत, भारतीय धार्मिक दर्शनके मुख्य सत्य अपने विशाल रूपोंमें या काव्यमय और ओजस्वी वर्णनके रूपमें भारतवासियोंके मनपर अंकित हैं। माया, लीला, भगवान्की सर्वव्यापकता आदिसे संबंध रखनेवाले विचार एक साधारण मनुष्य और मंदिरके पुजारीको भी उतने ही ज्ञात हैं जितने कि एकांतमें रहनेवाले दार्शनिकको, मठमें रहनेवाले संन्यासीको या कुटीमें रहनेवाले सन्तको। जिस धार्मिक सत्यकी वे बात करते हैं, जिस गभीर अनुभूतिकी तरफ वे इशारा करते हैं वह जातिके धर्म, साहित्य, कला यहांतक कि प्रचलित धार्मिक गानोंमें भी व्याप्त है। यह सच है कि भारतमें भी साधारण और बहिर्मुखी मनवाले लोगोंकी बहुलता रही है फिर भी यहीके निवासियों, एकदमसे 'अज्ञानी जनसाधारण'की भी यह विशेषता रही है कि वह भगवान् और आध्यात्मिकता, आत्मा और शाश्वत सत्ता आदिकी जीवंत झांकी अधिक सुगमतासे पा लेता है। आध्यात्मिक प्रवृत्तिकी ओर यह प्रबल वेग, उच्चतर सत्त्योंकी ओर मुड़नेके लिये संपूर्ण राष्ट्रके मनका झुकाव उस परम आध्यात्मिक संस्कृतिका चिह्न और फल है जो युगव्यापी, सच्ची और जीवंत है।

‘सांध्य वार्ताएं’ :

पागलपन, बीमारी इत्यादिके बारेमें

५-१२-१९२५

‘क’ का पति मर गया। इस दशामें वह श्रीअरविंदसे मार्ग दर्शन चाहती थी। उसकी इच्छा थी कि वह अपने पतिको सूक्ष्म शरीरमें देख सके।)

श्रीअरविंद—उसे मृत पतिको देखनेके बारेमें दो बातें लिखी जा सकती हैं। (१) यह कुछ हद-तक स्वयं उसकी देखनेकी क्षमतापर निर्भर है, यह क्षमता सबमें नहीं होती, (२) अगर दिवंगत आत्माकी प्रकट होनेकी इच्छा है तो वह प्रकट हो सकती है लेकिन अगर उसकी अपनी इच्छा नहीं है तो उसे फिरसे उन संबंधोंमें घसीटना ठीक नहीं है। यह उसके उन लोकोंमें जानेकी गतिमें बाधक हो सकता है जिनमें जाना उसके विकासके लिये जरूरी है। उसे पार्थिव लगावोंसे बांधना ठीक नहीं।

वह सत्य और उसकी प्राप्तिके बारेमें लिखती है। अगर वह उसे सचमुच चाहती है तो

यह मांग इस अवसादसे अलग होनी चाहिए, जिसमेंसे वह गुजर रही है। अगर उसके भीतर काफी गहराईसे पुकार उठे तो उसका उत्तर अवश्य मिलेगा।

(साधना और पागलपनके संबंधमें)

श्रीअरविंद—अन्य तत्वोंके साथ वैष्णव साधना भी योगमें पागलपनको लायी है। वे सारी साधनाको भावुकताके स्तरपर उतार लाये परंतु वे चैत्य तथा आध्यात्मिक सत्ताकी सच्ची भावुकता और प्राणमय तथा दूसरे निचले स्तरोंकी उस भावुकतामें विवेक न कर सके जो उच्चतर चीजकी नकल करते हैं। यह नकली चीज ही सब प्रकारकी निचली शक्तियोंको स्थान देती है।

वेचैनी और पागलपनकी गतिविधियोंको इस हदतक स्वीकार किया गया कि लोग पागलपनको योगका पर्याय-सा मानने लगे। उनकी अभीप्सा थी 'पागल कर दो मुझे!' निश्चय ही मैं प्राचीन वैष्णव धर्मकी बात नहीं कर रहा। यह बात आधुनिक वैष्णव धर्मकी है।

शिष्य—लेकिन चैतन्य महाप्रभुमें भी हम गाना, नाचना और वेचैनी जैसे तत्व पाते हैं।

श्रीअरविंद—हां, यह उनके समयमें आरंभ हो चुका था।

दूसरा कारण यह है कि हमारा भौतिक मन सुविकसित नहीं है। एक दास जाति होनेके कारण हमारे पास बड़े कार्योंके लिये क्षेत्र नहीं है इसलिये हमारे भौतिक मनका भली-भांति विकास नहीं हुआ। भौतिक मनमें कुछ तो सकारात्मक चीज होनी चाहिए, एक ऐसा तत्व होना चाहिए जो सद्बस्तुको ग्रहण कर सके। स्वभावतः भौतिक मन भौतिक द्रव्यके सिवा किसी भी चीजपर विश्वास करनेसे इंकार करता है। 'क' जैसे अतिकारी भी होते हैं, जब वह अपनी आंतरिक सत्तामें प्रकाशको उतरते हुए देखता था तो वह बिजली बन्द करनेके लिए बटन दबा देता था! वैसी चीज तो नहीं लेकिन उस जैसी कोई चीज जरूरी है जिसके कारण भौतिक मन हर चीजके बारेमें प्रश्न करे और केवल सत्यको ही स्वीकार करे।

ऐसे कुछ साधक हर तरहके अंतर्दर्शन पाते हैं। कभी-कभी एक भैंस देखकर वे मान बैठते हैं कि उन्हें सिद्धि प्राप्त हो गयी, पूर्णता मिल गयी। उनके मनमें ऐसा प्रश्न कभी नहीं उठता कि आखिर इन अंतर्दर्शनोंका अर्थ क्या है, मुझे इनसे अबतक क्या मिला है। तुम ऐसी बातें पूछो भी तो वे उन्हें झटक कर फेंक देंगे।

३०-१-१९२६

(एक शिष्यको बुखार आ गया। संदेह यह था कि मलेरिया हुआ है। उसकी चिकित्सा-के बारेमें बातचीत चली।)

शिष्य—अनुष्ठानकी एक पद्धति होती है। कुछ लोग सिरपर एक पत्थरका टुकड़ा मारते हैं या दाढ़ी घुमाते हैं, क्या इन चीजोंमें कोई सत्य है?

श्रीअरविंद—क्यों नहीं, तुम्हारे अंदर श्रद्धा हो तो किसी भी चीजके द्वारा, हथौड़ीद्वारा भी रोग दूर किया जा सकता है।

शिष्य—क्या श्रद्धा अपने-आपमें पर्याप्त है?

श्रीअरविंद—हां, कूएकी पद्धति भी तो श्रद्धा और इच्छा शक्तिका सम्मिश्रण है।

शिष्य—क्या अनुष्ठानका अपने-आपमें कोई मूल्य नहीं?

श्रीअरविंद—अगर तुम्हारे अंदर श्रद्धा न हो तब तो निश्चय ही उसका कोई मूल्य नहीं, अगर तुम्हारे अंदर श्रद्धा है तो ये चीजें जरूरी नहीं हैं लेकिन अगर तुम्हें अनुष्ठानपर श्रद्धा है तो वह अवश्य जरूरी है।

शिष्य—लेकिन कुछ लोग मंत्रद्वारा रोगमुक्त कर देते हैं।

श्रीअरविंद—मंत्र अनुष्ठानसे अलग चीज है। साधारणतः मंत्रमें कोई प्राणिक शक्ति रखी जाती है, वह स्वभावतः चैत्य या आध्यात्मिक नहीं होता।

शिष्य—क्या चैत्य या आध्यात्मिक मंत्र नहीं होते और क्या अहंकारपूर्ण कामोंके लिये उप-योग किये जानेपर उनमें परिवर्तन नहीं आता ?

श्रीअरविंद—चैत्य चैत्य ही है और चैत्य ही रहता है, और वह अपना काम किये जाता है। वह असफल नहीं होता, वह कभी भगवान् बननेकी कोशिश नहीं करता जैसा प्राणिक या अन्य शक्तियां करती हैं।

शिष्य—क्या कूपकी पद्धति एक अनुष्ठान मात्र है ?

श्रीअरविंद—जैसा कि मैं तुमसे कह चुका हूं, वह श्रद्धा और इच्छा शक्तिका मिश्रण है। लेकिन अपने-आपमें इतना ही काफी नहीं है, "दिनपर दिन, मैं अच्छा, और अच्छा होता जा रहा हूं", के शब्दोंको रोज-रोज दोहराना अनुष्ठान जैसा ही है परंतु उसमें एक तीसरी चीज भी है जो जरूरी है। मैं नहीं कह सकता कि वह क्या है लेकिन जब परिस्थितियां तैयार हों तो वह तीसरी चीज अपने-आप आ जाती है।

मुझे बुखार आया करता था और कभी-कभी कोई चीज नीचे आती और उसे सफलता-पूर्वक अस्वीकार कर देती थी जब कि अन्य अवसरोंपर तुम्हें एक ही चीजको लेकर उसपर बार-बार क्रिया करनी पड़ती है। मैंने देखा है अधिक-से-अधिक श्रद्धा भी सफल नहीं होती, तुम्हारी अधिक-से-अधिक प्रबल इच्छाशक्ति भी कारगर नहीं होती।

इसका मतलब यह नहीं है कि श्रद्धा जरूरी नहीं है या इच्छा शक्ति उपयोगी नहीं है लेकिन इन दोनोंको एक तीसरी चीजकी जरूरत होती है जिसके आनेसे, विरोधके होते हुए, काम सफल हो जाता है। साधारणतः विचार यह होता है कि अगर परिस्थितियां अनुकूल हों और प्रबल विरोध न हो तो सफलता मिल जाती है परंतु यह हमेशा सच नहीं होता।

जब तीसरा तत्व हो तो विरोधका कोई मूल्य नहीं रहता, सफलता अनिवार्य रूपसे आती है।

—पुराणीकृत श्रीअरविंदकी 'ईवनिंग टाक्स'से

हमारे योगका उद्देश्य

हमारे योगका उद्देश्य आत्मविलोपन नहीं आत्मसिद्धि है।

योगीके चरणोंके लिए दो मार्ग हैं, विश्वसे किनारा करना या विश्वमें पूर्णता पाना। पहला आता है संन्याससे, दूसरा सिद्ध होता है तपस्यासे। पहला हमारा स्वागत करता है जब हम सत्तामें भगवान्को खो देते हैं और दूसरा तब सिद्ध होता है जब हम भगवान्में सत्ताको सिद्ध कर लेते हैं। हमारा मार्ग पूर्णताका पथ हो, त्यागका नहीं। हमारा लक्ष्य युद्धमें विजय हो, संग्राममेंसे पलायन नहीं।

बुद्ध और शंकरने जगत्को मूलतः मिथ्या और दुःख दैन्यसे भरा माना अतः उनके लिए संसारसे पलायन ही एकमात्र बुद्धिमत्ता थी। लेकिन यह जगत् ब्रह्म है, जगत् भगवान् है, जगत् सत्य है, जगत् आनंद है। मनके अहंकारद्वारा दुनियाको गलत समझना मिथ्यात्व है

और जगत्में भगवान्‌के साथ हमारा गलत संबंध ही दुःख-दैन्य है। और कोई मिथ्यात्व नहीं है, दुःखका और कोई कारण नहीं है।

भगवान्‌ने अपने अंदर मायाद्वारा जगत्‌की रचना की। लेकिन मायाका वैदिक अर्थ भ्रांति नहीं है। वह तो प्रज्ञा, ज्ञान, क्षमता, चेतनामें विस्तार—प्रज्ञा प्रसृता पुराणी है। सर्वशक्तिमान प्रज्ञाने जगत्‌की रचना की है। यह किसी अनंत स्वप्नद्रष्टाकी व्यवस्थित बड़ी भूल नहीं है। सर्वज्ञ शक्ति जगत्‌को अपने अंदर या अपने आनंदमें अभिव्यक्त करती या छिपा लेती है। यह मुक्त निरपेक्ष ब्रह्मपर स्वयं उसके अज्ञानद्वारा आरोपित दासता नहीं है।

अगर जगत् ब्रह्मका अपने ऊपर आरोपित दुःस्वप्न होता तो इसमेंसे जागना हमारे परम प्रयासका स्वाभाविक और एकमात्र उद्देश्य होता और जगत्‌में जीवन अपरिवर्तनीय रूपसे दुःख-दैन्यके साथ बंधा होता तो इस दासतामेंसे भाग निकलना ही खोजने लायक एकमात्र रहस्य होता। परंतु जगत्‌सत्तामें पूर्ण सत्य संभव है क्योंकि यहांपर भगवान्‌ सब चीजोंको सत्यकी आंखसे देखते हैं और जगत्‌में पूर्ण आनंद संभव है क्योंकि भगवान्‌ सभी चीजोंका अमिश्रित स्वाधीनताके साथ रस लेते हैं। हम भी सत्य और आनंदका रस ले सकते हैं जिसे वेदने अमृत यानी अमरता कहा है। अगर हम अपनी अहंकारपूर्ण सत्ताको उनकी सत्ताके साथ पूर्ण ऐक्यमें डाल सकें तो हम भागवत बोध और भागवत स्वाधीनता ग्रहण करनेके लिए सहमत होते हैं।

जगत् भगवान्‌की स्वयं अपनी सत्ताके अंदर गति है। हम भागवत चेतनाके चक्र और ग्रंथियां हैं जो एक साथ जुड़कर उनकी गतिकी प्रक्रियाको सहारा देते हैं। संसार उनके अपने आत्म-सचेतन आनंदके साथ उनकी लीला है। एकमात्र उन्हींका अस्तित्व है जो अनंत, मुक्त और पूर्ण है। हम उसी सचेतन आनंदके आत्म-गुणन या उसके विविध रूप हैं जिन्हें लीलामें उसके साथी बननेके लिए निक्षिप्त किया गया है। संसार एक सूत्र, एक लय-ताल, एक प्रतीक पद्धति है जो स्वयं भगवान्‌की चेतनामें भगवान्‌को स्वयं अपने प्रति प्रकट करती है—इसका कोई जड़ भौतिक अस्तित्व नहीं है बल्कि इसका अस्तित्व स्वयं भगवान्‌की चेतना और आत्मा-भिव्यक्तिमें है। भगवान्‌की तरह हम भी अपनी आंतरिक सत्तामें ऐसा तत् हैं जो अभिव्यक्त हुआ है लेकिन अपनी बाहरी सत्तामें उस सूत्रके पद, उस लय-तालकी धुन, उस पद्धतिके प्रतीक हैं। चलो, हम भगवान्‌की गतिको आगे बढ़ायें, उनकी लीलामें भाग लें, उनके सूत्रको कार्यान्वित करें, उनके सामंजस्यको चरितार्थ करें, उनकी पद्धतिमें, अपने अंदर उनको अभिव्यक्त करें। यही हमारा आनंद और हमारी आत्म परिपूर्ति है। इसी उद्देश्यसे हम जो विश्वसे परे और उससे आगे हैं, विश्व सत्तामें प्रविष्ट हुए हैं।

पूर्णताको कार्यान्वित करना है, सामंजस्यको प्राप्त करना है। अपूर्णता, सीमांकन, मृत्यु, दुःख, अज्ञान, जड़-भौतिक सूत्रके पहले पद हैं और तभीतक समझमें नहीं आते जबतक हम अधिक विस्तृत पदोंको कार्यान्वित न कर लें और सूत्रकी फिरसे व्याख्या न कर लें। ये संगीतकारके सुर मिलते समय पहले विसंवाद हैं। अपूर्णतामेंसे हमें पूर्णताका निर्माण करना है, सीमांकनमेंसे अनंतताको पाना है, मृत्युमेंसे अमरताको खोजना है, दुःखमेंसे भागवत आनंदको प्राप्त करना है, अज्ञानमेंसे भागवत आत्मज्ञानका उद्धार करना है, जड़-भौतिकमेंसे आत्माको प्रकट करना है। अपने लिए और विश्वके लिए इस उद्देश्यको कार्यान्वित करना हमारी योग-साधनाका उद्देश्य है।

—श्रीअरविंद

व्यष्टिकी महानता

मानव कर्मकी सभी गतिविधियोंमें, सभी पुंजोंमें समयकी आत्मा—जिसे यूरोपवाले जीटगी (ट्साइट-गीइस्ट) और भारतीय 'काल' कहते हैं—अपने-आपको प्रकट करती है। इनके नाम ही बहुत सार्थक हैं। काली जो सबकी माता और सबका ध्वंस करनेवाली है वही मानव-जातिके हृदयमें शक्तिके रूपमें गुप्त रूपसे काम करती है। वह अपने-आपको मनुष्योंके सतत प्रवाहमें, प्रथाओं और गतिविधियोंमें अभिव्यक्त करती है। महाकाल अंतरमें स्थित वह आत्मा है जिसकी शक्ति कालीमें विस्तारित होती और जगत्की प्रगति और राष्ट्रोंकी नियतिको सांचेमें ढालती है। महाकाकी प्रेरणा अपने-आपको चरितार्थ करती है। एक बार गति आ जाय, अंतस्थ आत्माकी प्रेरणा हो तो काल और दिव्य जननी उसे अपने हाथमें ले लेती हैं; उसे तैयार करती और परिपक्व बनाकर चरितार्थ करती हैं। जब काल पुरुष एक निश्चित दिशामें गति करते हैं तो संसारकी सभी शक्तियोंकी पुकार होती है ताकि वे नियत प्रयोजनकी ओर प्रतिष्ठित धारको फैला सकें। जो कुछ सचेतन रूपसे सहायता करता है वह उसे फैलाता है लेकिन जो उसमें बाधा देता है वह उसे और भी ज्यादा विस्तारित करता है, झंझाग्रस्त सागरकी एक लहरकी न्याई, वह कभी उठती है कभी गिरती है, कभी विजय और वृद्धिके शिखरपर होती है तो कभी हतोत्साह और पराजयके गर्तमें, इस तरह छिपे हुए उद्गमसे आने-वाली प्रेरणा पूर्वनियत परिपूर्तिकी ओर बढ़ती है। मनुष्य सहायता कर सकता है, मनुष्य विरोध कर सकता है परंतु कालपुरुष अपना काम किये जाता है, रूप देता, दबाव डालता और आग्रह करता है।

कुरुक्षेत्रका वह महान् और स्मरणीय दर्शन—जिसमें श्रीकृष्ण अपने-आपको विश्वरूपमें प्रकट करके लोक क्षय करनेवाला काल बतलाते हैं—मानवजातिके इस गहरे बोधसे सारगर्भित है। जब अर्जुन अपने धनुष बाणको फेंक देना चाहता था, जब उसने कहा 'हम जो कर रहे हैं वह पाप है। मैं मनुष्योंके और भाइयोंके इस महान् विनाशसे दूर रहूंगा' तो श्रीकृष्ण उसकी बुद्धिको भूलका विश्वास दिलाकर अर्जुनकी कल्पनापर वस्तुओंके सत्यकी छाप लगानेके लिए उस अद्भुत अंतर्दर्शनकी ओर बढ़े जिसका वर्णन गीताके ग्यारहवें अध्यायमें है। ये महान् पंक्तियां यूँ हैं:—

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धो
लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥
तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम् ।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥

“मैं काल हूँ जो लोगोंका क्षय और नाश करता हूँ। मैं अपनी शक्तिके साथ उठा हूँ। और राष्ट्रोंको लील जानेके लिए उठा हूँ। जो विरोधी सेनाएं तुम्हारे आगे खड़ी हैं वे तुम्हारे मारे बिना भी मर जाएंगी। इसलिए तुम उठो और महान् यश लाभ करो, शत्रुओंको जीतो

और एक महान् तथा समृद्ध राज्यका उपभोग करो। ये लोग पहले ही मारे जा चुके हैं। मैंने ही इनका वध किया है। हे सव्यसाचिन्, तुम केवल निमित्त बन जाओ।”

श्रीकृष्ण अपने-आपको अर्जुनके आगे कालकी मन्दगतिके रूपमें नहीं बल्कि बड़ी सावधानीके साथ दशव्दियोंमें तैयार किये गये कार्यको क्षण भरमें भस्म करनेवाले कालके रूपमें प्रकट करते हैं। सब अनिवार्य रूपसे कुरुक्षेत्रके विनाशकी ओर गति करते आये थे। मनुष्य इसे नहीं जानते थे, जो मुसीबतको टालनेके लिए सब कुछ कर सकते थे, उन्होंने अपने कर्म या अकर्म द्वारा उसके आनेमें सहायता की। जिन्हें उसकी एक झांकी मिल गयी थी उन्होंने व्यर्थ ही भाग्य चक्रको रोकनेका प्रयास किया। स्वयं निष्काम कर्मयोगी श्रीकृष्ण, जो परिणामकी परवाह किये बिना अपना कर्म किये जाते हैं, आशाहीन दौत्यके लिए हस्तिनापुर गये लेकिन कालपुरुषने सबको अभिभूत कर दिया। केवल बादमें ही मनुष्योंने देखा कि कैसे सागरकी ओर दौड़ती नदियोंकी तरह, प्रदीप्त ज्वालाकी ओर उड़ते पतंगोंकी तरह अपने राजवंशों, शस्त्रास्त्रों, रथों और विराट् सेनाओं सहित, समस्त भव्य, शक्तिशाली, गर्वीला भारतीय जगत् कालके खुले मुंहकी तरफ, उसके प्रबल जबड़ोंमें खो जानेके लिए, उसकी किटकिटाती दाढ़ोंमें पिस जानेके लिए तेजीसे आगे बढ़ रहा है। शाश्वतकी लीलामें कुछ गतियां भयावह होती हैं और कुछ अन्य गतियां मधुर और सुन्दर। कुरुक्षेत्रके मृत्यु-नृत्यके बिना वृन्दावनका नाच अधूरा है क्योंकि दोनों ही जगत्की उस महान् सामंजस्यभरी गतिके अंग हैं जो असंगतिसे संगतिकी ओर, घृणा और संघर्षसे प्रेम और भ्रातृत्वकी ओर, अशुभसे, दुःख कष्ट और पापको शिवम्, शांतम्, शुद्धम्, आनन्दम्में बदलकर, क्रम-विकासकी परिपूर्तिकी ओर बढ़ती है।

कालपुरुषके प्रयोजनका प्रतिरोध कौन कर सकता है? भारतमें सैकड़ों बलवान् पुरुष थे, महान् दार्शनिक, ओर योगी, सूक्ष्म राजनेता, मनुष्योंके पथप्रदर्शक, विचार और कर्मके राजा, महान् बौद्धिक संस्कृतिके प्रस्फुटन अपने शिखरपर थे। ऐसा लगता है कि उनमेंसे कुछ बाएंकी जगह जरा-सा दाएंकी ओर मुड़ जाते तो सारी महाविपत्तिको रोका जा सकता था। जब अर्जुनने अपने धनुषको एक ओर फेंक दिया तो उसने यही सोचा था क्योंकि वही पाण्डवोंकी समस्त आशा था और उसके बिना पाण्डवोंकी विजय एक स्वप्न मात्र होती और युद्ध पागलपनकी क्रिया। उसीके आगे कालपुरुष सबसे अधिक शक्तिशालियोंकी असहायता और भागवत आदेशकी परिपूर्तिकी घोषणा करते हैं और कहते हैं “तेरे बिना भी ये योद्धा न रहेंगे जो विरोधी व्यूहोंमें क्रमबद्ध हैं” क्योंकि ये लोग केवल शरीरसे जीवित हैं लेकिन जो पीछे उपस्थित रहकर इनकी परिपूर्ति करता है उसमें ये मर चुके हैं। भगवान् जिनकी रक्षा करता है उन्हें कौन मार सकता है और भगवान् जिनको मार चुके हैं उनकी कौन रक्षा कर सकता है? जो मनुष्य हत्या करता है वह केवल निमित्त है, यंत्र है जिसके द्वारा पदोंके पीछे की गयी चीज उसके इस ओर की गयी चीज बन जाती है। जो बात कुरुक्षेत्रके संहारके बारेमें सच्ची थी वह इस जगत्में की जानेवाली सभी चीजोंके बारेमें सच्ची है, समस्त सृजन, संहार और संरक्षणके बारेमें सच्ची है जिनसे लीला बनती है।

इस शिक्षाकी महानता महान् पुरुषोंके लिए है, जिन्हें बड़े परिवर्तन लानेका काम सौंपा गया है वे कालपुरुषकी शक्तिसे भरे होते हैं, उनके अंदर कालीका प्रवेश होता है और जब काली किसी मनुष्यमें प्रवेश करती है तो वह बुद्धिमत्ता और संभावनाकी परवाह नहीं करती। काली प्रकृतिकी वह शक्ति है जो तारोंको उनके परिक्रमा पथपर उसी आसानीसे घुमाती है जैसे कोई वच्चा गेंदको घुमाता है। उस शक्तिके लिए कोई चीज असंभव नहीं है। वह असंभवको संभव बनानेमें बहुत कुशल है—अघटनघटनापटीयसी। वह है ‘देवात्मशक्ति’, स्वगुणैर्निगूढा’,

परम आत्माकी वह शक्ति जो अपनी ही क्रियाओंकी प्रणालियोंमें छिपी रहती है। उसे जो काम सौंपा गया है उसे पूरा करनेके लिए उसे समयके सिवा और किसी चीजकी जरूरत नहीं होती। वह कालमें गति करती है और स्वयं उसकी गति उसे परिपूर्ण करती, उसके साधन पैदा करती और उद्देश्यको पूरा करती है। यह कोई संयोग नहीं है कि वह एक आदमीकी अपेक्षा दूसरेमें अधिक कार्य करती है। उसे इसलिए चुना गया है क्योंकि वह उपयुक्त पात्र है, एक बार उसे चुन लेनेके बाद जबतक उद्देश्यकी पूर्ति न हो जाय, न तो वह मनुष्यको त्यागती है न उसे त्यागने देती है।

यदहङ्कारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे।

मित्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ॥

“तू जो सोचता है और यह कहकर अहंकारका आश्रय लेता है कि ‘मैं नहीं लड़ूंगा’, तेरा यह निश्चय व्यर्थ है, प्रकृति तुझे अपने काममें जोत देगी।”

जब ऐसा लगता है कि किसीने अपना कर्म त्याग दिया है तो इसका केवल यही अर्थ होता है कि उसका काम समाप्त हो गया है और काली उसे छोड़कर किसी और को ले रही है। जब कोई ऐसा आदमी नष्ट कर दिया जाता है जिसने कोई बड़ा काम किया हो तो इसका कारण होता है वह अहंकार जिसने आंतरिक शक्तिका दुरुपयोग किया है और वह शक्ति ही उसके टुकड़े-टुकड़े कर डालती है जैसे उसने नैपोलियनको तोड़ा था। कुछ यंत्र संजोकर रखे जाते हैं, कुछको एक ओर फेंक दिया जाता है और वे चूर-चूर हो जाते हैं लेकिन हैं वे सब यंत्र ही। महापुरुषोंकी महानता यही है। वे अपने बलसे महान् घटनाओंका निर्णय नहीं कर सकते। वे निश्चय करनेवाली शक्तिके उपयुक्त और विशेष रूपसे गढ़े हुए यंत्र होते हैं। मिराबोने फ्रेंच क्रांतिकी सृष्टिमें सहायता की, और कोई उसका पासंग भी न था। लेकिन जब उसने अपने-आपको क्रांतिके विरोधमें खड़ा करके, राजवंशका अवलंब बनकर क्रांतिके चक्रको रोकनेकी कोशिश की तो क्या फ्रेंच क्रांति फ्रांसके बड़े-बड़े आदमीके पथभ्रष्ट होनेसे रुक गयी? कालीने मिराबोपर अपना पांव रखा और वह गायब हो गया लेकिन क्रांति चलती रही, क्योंकि क्रांति काल-पुरुषकी अभिव्यक्ति थी, क्रांति भगवान्की इच्छा थी।

हमेशा ऐसा ही होता है, जिन्हें यह घमंड था कि महान् घटनाएं उनकी कृतियां थीं क्योंकि ऐसा लगता था कि पहल उन्होंने ही की थी, वे कालकी खाईमें चले गये और दूसरे उनकी ख्यातिके खंडहरपर आ गये। जिन्हें उनके अंदर स्थित काली आगे बढ़ाती है, जो नियतिके साथ समझौता नहीं करते, केवल वही बच पाएंगे। व्यक्तियोंकी महानता अंतस्थ शाश्वत ऊर्जाकी महानता है।

श्रीअरविंद (शताब्दी खंड ३से)

पूर्णयोग

योगके बीज

भगवान् हैं—यह योगका पहला बीज है। यह वेदांतका तत् सत् है। मैं हूं यह दूसरा बीज है। यह उपनिषदोंका सोऽहम् है। भगवान् अनंत, स्वयंभू, सच्चिदानन्द हैं। मैं भी वही अनंत, स्वयंभू, आत्मशक्ति, आत्मआनंद हूं। यह दोहरा तीसरा बीज है। यह समस्त मानव चिंतनका सार्वभौम परात्पर निर्णय है।

पूर्णयोग क्या है ?

यह भगवान्को पानेका पूर्णयोग है, पूर्ण आत्मसिद्धि, हमारी सत्ता और चेतनाकी संपूर्ण चरितार्थता, हमारी प्रकृतिका पूर्ण रूपांतर है। इसका अर्थ किसी और शाश्वत पूर्णताकी ओर लौटना नहीं बल्कि यहांपर जीवनकी पूर्णता है।

यह तो उद्देश्य है परंतु उपायमें भी वही पूर्णता है। उपायकी पूर्णताके बिना उद्देश्यकी पूर्णता नहीं मिल सकती। उपाय है, हम जिसे पाना चाहते हैं उसकी ओर पूरी तरह मुड़ना, अपनी समस्त सत्ताका और प्रकृतिके सभी भागों, मार्गों, गतिविधियोंका पूर्ण आत्मदान।

हमारा मन, इच्छा, हृदय, प्राण, शरीर हमारी बाहरी, भीतरी और अंतर्तम सत्ता, हमारा अतिचेतन और अवचेतन और साथ ही हमारे सचेतन भाग, सभीका इस तरह अर्पण होना चाहिए। सभीको साधन, इस उपलब्धि और रूपांतरका क्षेत्र होना चाहिए और उन्हें मानव चेतनामेंसे दिव्य चेतना और प्रकृतिमें बदलनेमें भाग लेना चाहिए।

यही है पूर्णयोगकी विशेषता

*

योग-पद्धतियां बहुत-सी हैं, बहुत-सी साधनाएं, मोक्षके मार्ग और भगवान्की ओर पहुंचनेके पथ हैं। हर एकका अपना अलग लक्ष्य है, एकमेव सद्बस्तुकी ओर जानेका विशेष और पृथक् उपाय है। हर एकका एक सहायक दर्शन और एक साधना है। पूर्णयोग उन सबको, हर एकके सारतत्त्वको लेकर बाहरी व्यौरोंमें नहीं, उनके सार तत्त्वमें, उद्देश्य, विधि, उपगमन आदिमें एकता लानेकी कोशिश करता है। वह सर्वग्राही दर्शन और साधना अपनानेकी कोशिश करता है।

कर्मयोग

सभी आध्यात्मिक पथ उच्चतर चेतना और भगवान्के साथ ऐक्यकी ओर ले जाते हैं। उनमेंसे कर्मयोग एक बहुत महत्वपूर्ण पथ है। वह उतना ही निश्चित है जितना भक्ति योग या ज्ञान योग।

यह न सोचो कि कर्म अपने-आपमें बंधनके सिवाय कुछ नहीं है। कर्म मोक्ष और भागवत पूर्णताके लिये सशक्त साधन हो सकते हैं। सब कुछ निर्भर है कर्मकी भावनापर और कर्मोंके

कामना और अहंकारसे परे आंतरिक और उच्चतर प्रकाशकी ओर अभिमुख होनेपर।

कर्म बंधन तब होते हैं जब वे कामनाके साथ या अहंकारके लिये किये जाएं। एक ऐसे मनकी प्रेरणासे किये जाएं जो बहिर्मुख हो, काममें डूबा हुआ हो, मुक्त तथा अनासक्त न हो बल्कि निम्नतर प्रकृतिके अज्ञानमें फंसा हो।

*

पहले निवेदन, फिर समर्पण, फिर हमारी निजी इच्छाकी भगवान्की इच्छाके प्रति अधीनता और उसके बाद उस इच्छाके साथ तादात्म्य—यह है कर्म योगका केंद्रीय रहस्य। लेकिन यह हमारी मानसिक चेतनाद्वारा नहीं किया जा सकता जो अपनी छोटी-सी मानव सीमामें बन्द होती है। हमारा योग उसे छोड़कर ज्यादा बड़ी और प्रकाशमान चेतनामें जानेके लिये हमारी सहायता करता है जिसमें ज्ञानका प्रकाश हो, जिसमें निर्भ्रांत शक्ति हो, जो उस विशालतर आनंदकी ओर खुली हो जिसमें हमारे तुच्छ मानव सुख-दुःख हमेशाके लिये डूब जायें। लेकिन मानव चेतनाकी सीमामें रहते हुए भी जो कुछ किया जा सके उससे भी बहुत राहत मिलती है, बड़ा छुटकारा मिलता है।

परंतु मनुष्यके भौतिक मनके लिये इतना करना भी आसान नहीं है, जब कि उसका उच्चतर मन और उच्चतर इच्छा इसकी मांग करते हैं। हमारे अंदर किसी चीजका अज्ञानके साथ गठबंधन होता है। वह समर्पणके सदा विरोधी रहता है, वह अपनी ही अंधी क्रियाओंमें फंसा रहता है और अपनी ही 'मुक्ति'में खुश रहता है, ऐसी मुक्तिमें जो पग-पगपर सैंकड़ों जंजीरोंकी खनक सुनाती है। हमारे उस विद्रोही अंशको यह खनक दिव्य संगीत मालूम होती है। हमारा मन किसी उच्चतर वस्तुके आगे समर्पणके विरुद्ध अच्छी-अच्छी युक्तियां खड़ी कर देता है। हां, अगर वह चीज हमारे अहंकारकी ही परछाई हो तो यह अंश समर्पण करनेके लिये तत्पर रहेगा। मानसिक स्तरपर हमारी उच्चतम आध्यात्मिक उपलब्धि भी—चाहे वह इस अंशद्वारा विकृत और दागदार न बनायी गयी हो—फिर भी सीमित और धब्बेवाली तो होती ही है।

हमारी सुरक्षा बस इसीमें है कि मनके परेकी सत्य-चेतनाकी ओर बढ़ चले जिसमें ज्यादा समर्थ गतिशील प्रकाश है। जो अपने अंदर विज्ञान और प्रकाशमान शक्तिके कारण नित्य मुक्त है तथा तुच्छता और अहंकारभरा अंधकार वहां फटक नहीं सकता। हम सत्य और उसके स्वामीको अतिमानसिक चेतनामें पाते हैं। अतिमानस परम इच्छाके प्राथमिक सृजन सशरीर परम इच्छाका यंत्र है। उस इच्छाका जो भूल भ्रांतिके परे शाश्वत, एक और अनंत है।

*

सभी योगोंका उद्देश्य है चेतनाके परिवर्तनद्वारा वस्तुओंके पीछे निहित सद्वस्तुतक पहुंचना, वस्तुओंके आभासमें न बने रहना। सभी योग-मार्गोंका समान रूपसे उद्देश्य है उस पीछेकी वास्तविकताके साथ ऐक्य, सहयोग या तादात्म्य पाना।

परंतु वह सद्वस्तु मनुष्य या मानसिक सत्ताके आगे अपने-आपको विभिन्न रूपोंमें प्रस्तुत करती है। भगवान् चाहे जो हों; हम उनके साथ ऐक्य या उनकी समीपता खोजते हैं। हम भगवान्को सगुण या निर्गुण दोनों रूपोंमें देख सकते हैं। वे हमें अपने प्रेम, अनुकम्पा, शक्ति और सामर्थ्य आदि किसी भी रूपमें आकर्षित कर सकते हैं। हमें भागवत सखा, दिव्य

प्रभु, जगत् पिता, जगत् माता, सबके सर्वशक्तिमान स्वामी या दिव्य प्रेमीके रूपमें एक ही प्रभुका दर्शन मिलता है। हम एक सार्वभौम आत्माकी उपस्थितिमें हैं जिसकी वैश्व चेतनामें हम अपने पृथक् अहंको परम पुरुषमें खो देते हैं, उसमें हम पूरी तरहसे अपना वैश्व और व्यष्टिगत अस्तित्व खो देते हैं। वहां हम अपनी उच्चतर आत्मा या सर्वकी आत्माको पाते हैं या एक ऐसे उत्कृष्ट रहस्यमें जा पहुंचते हैं जहां न कोई संबंध होता है न रंग रूप, जहां आत्मा या सर्वका निवास भी नहीं होता। या हो सकता है कि वह आदि शून्यका अनिर्वचनीय रहस्य हो जो हमारे लिये समस्त सत्के साथ-ही-साथ समस्त पीड़ाका उन्मूलन कर देता है या हो सकता है कि वह शून्य रहस्यमय सर्व हो जो मन और प्राणकी अनुभूतिद्वारा हमारे लिये निर्मित मिथ्या और भ्रांतिमय सत्तासे एकदम भिन्न हो।

भक्तियोग

भक्तिका पूर्ण योग सात अवस्थाओंमेंसे गुजरता है जिनमें से हर एक अपनेसे पहलेकी अवस्थाओं से खुलती है।

अभीप्सा, आत्मोत्सर्ग, आराधना, पूजा, भक्ति, प्रेम, भगवान्का समस्त सत्ता और प्राणपर अधिकार, दिव्य प्रेमका आनंद और भगवान्की सुन्दरता और मधुरता, परम पुरुषका निरपेक्ष आनंद।

हमारी पहली आवश्यकता है श्रद्धा। भगवान्पर श्रद्धाके बिना, भागवत सत्ताके अस्तित्व और उसकी सबसे अधिक महत्वपूर्णतापर श्रद्धाके बिना अभीप्सा या उत्सर्ग करनेका कोई कारण नहीं हो सकता, अभीप्साके पीछे कोई शक्ति या उत्सर्गके पीछे कोई सामर्थ्य नहीं हो सकती।

अगर केंद्रीय और आधारभूत श्रद्धा है तो संदेहोंका कोई मूल्य नहीं। संदेह आ सकते हैं परंतु वे केंद्रीय सत्ताकी श्रद्धाकी चट्टानके आगे टिक नहीं सकते। कुछ समयके लिये चट्टान संदेह और हताशाके झगसे ढकी रह सकती है फिर भी चट्टान सुदृढ़ और अविनाशी रहेगी। श्रद्धा हृदय है, आंतरिक हृदय है जिसमें चैत्य पुरुषका निवास है। बाहरी हृदय प्राणमय सत्ताका या प्राणमय व्यक्तित्वका स्थान है। मनकी तरह वह कभी विश्वास कर सकता और कभी विश्वास खो सकता है। संदेह मन, प्राण और भौतिक चेतनासे आता है। चैत्य अग्नि जितनी ही अधिक होगी, मन प्राण और शारीरिक चेतनाको बिगाड़ने और अंधेरा करनेकी संदेहकी शक्ति उतनी ही कम होगी।

*

अतिमानसिक योगका पहला शब्द है समर्पण और समर्पण ही उसका अंतिम शब्द है। अपने-आपको शाश्वत भगवान्के हाथोंमें दे देने, अपनी चेतनाको भगवान्तक उठाने और रूपांतरित करनेकी इच्छासे योगका आरंभ होता है। पूरी तरह अपने-आपको दे देनेमें उसकी समाप्ति होती है। जब आत्मदान पूरा हो जाता है तभी योगकी निष्पत्ति आती है। सब कुछ अतिमानसिक भगवान्में ले लिया जाता है, सत्ताकी पूर्णता और प्रकृतिका रूपांतर हो जाता है।

(श्रीअरविंदके पत्रोंके आधारपर)

नीलमकी कहानी

(यह कहानी माताजीने १९०६में अधिमानस सृष्टिके आदर्शको प्रकट करते हुए लिखी थी।)

सुदूर पूर्वमें एक छोटा-सा देश था। वहां हर चीजमें सुव्यवस्था थी और हर बातमें सामं-जस्य था। हर व्यक्ति अपने-अपने स्थानपर, सबके अधिक-से-अधिक भलेके लिये अपनी भूमिका पूरी करता था।

किसान, कारीगर, मजदूर, व्यापारी, सबकी एक ही महत्वाकांक्षा थी, एक ही चिन्ता थी—सब अपना काम अच्छे-से-अच्छा करना चाहते थे, और यह भी अपने हितमें। पहला कारण तो यह था कि उन्होंने अपना काम अपनी मरजीसे, आजादीके साथ चुना था; वह उनकी प्रकृति-के साथ मेल खाता था और उन्हें आनंद देता था, और फिर वे जानते थे कि हर अच्छे कामका उचित पुरस्कार होता है। उन्हें, उनके बीबी-बच्चोंको फालतू ऐशके सामान तो नहीं, पर जरू-रतकी सभी चीजें प्रचुर मात्रामें मिलती थीं और जीवन शांत और सुखमय था। लोग संतुष्ट थे।

वैज्ञानिक और कलाकार संख्यामें कम थे लेकिन सबको अपने विज्ञान और अपनी कलासे प्रेम था। उनका कृतज्ञ देश उनके जीवन-यापनकी व्यवस्था करता था क्योंकि उनके उपयोगी शोधों और ऊंचा उठानेवाले कर्मोंका लाभ और सुख पहले उन्हें ही मिलता था। इस प्रकार जीवन-संघर्षकी चिन्ताओंसे मुक्त वैज्ञानिकोंका एक ही लक्ष्य था कि उनके परीक्षण, उनके शोध-कार्य, उनका गंभीर और निष्ठापूर्ण अध्ययन मानवजातिके दुःख दूर करनेमें लगे, ज्योति और सुख देनेवाले ज्ञानके आगे अंधविश्वास और भयको अधिक-से-अधिक दूर खदेड़ दिया जाय; मानवजातिके तेज, ओज और योगक्षेममें वृद्धि हो। कलाकार अपनी सारी संकल्प-शक्तिको कलापर केंद्रित कर सकते थे और उनकी एक ही इच्छा थी: अपनी उच्चतम, व्यक्तिगत धारणाके अनुसार सौंदर्यको व्यक्त करें।

उनमें मित्र और पथप्रदर्शकके तौरपर चार दार्शनिक थे जिनका सारा जीवन गहरे अध्ययन और आलोकमय चिंतन-मननमें बीतता था ताकि मानव ज्ञानके क्षेत्रको निरंतर विस्तृत करते रहें और अभीतक जो रहस्य हैं उसके परदोंको एक-एक करके उठाते जायें।

सभी संतुष्ट थे क्योंकि उनके आगे कोई स्पर्धा या प्रतियोगिता नहीं थी और वे अपनी मरजीके अनुसार अपने-आपको काम या अध्ययनमें लगा सकते थे। सब सुखी थे इसीलिये उन्हें बहुत-से विधि-विधानोंकी जरूरत न थी। उनका कानून सबको बस एक सरल-सहज-सी सलाह देता था: "अपने-आप बनो।" सबके लिये बस एक ही विधान था जिसका कठोरता-के साथ पालन करना जरूरी था और वह था सद्भाव और उदारताका विधान जिसका उच्चतम तत्त्व है न्याय। यह उदारता किसी प्रकारके अपव्ययको नहीं स्वीकारती और न ही स्वतंत्र विकासमें किसी तरहकी बेड़ियोंको सह सकती है।

इस सुव्यवस्था और सामंजस्यके देशमें एक ऐसे राजाका राज था जो केवल इसीलिये राजा बना था क्योंकि वह सबसे बड़कर समझदार और बुद्धिमान् था, उसीके अंदर यह क्षमता थी कि उन्हें वह सब दे सके जिसकी उन्हें उरूरत हो; केवल वही इतना प्रबुद्ध था कि दार्शनिकोंके उच्चतम चिंतनको समझ सके और उनका मार्गदर्शन भी कर सके और साथ ही इतना व्याव-हारिक था, कि अपनी प्रजाकी, जिसकी आवश्यकताओंसे वह भली-भांति परिचित था, सुव्य-वस्था और कल्याणपर नजर रख सके।

हम जिस समयकी कहानी कह रहे हैं उस समय यह विलक्षण राजा काफी वयस्क हो चुका था—वह दो सौ वर्षका था—और यद्यपि उसका दिमाग बिल्कुल साफ था, वह पूरी तरह सजीव और सतर्क था, फिर भी अपने कंधोंपर पड़ी भारी जिम्मेदारियोंसे कुछ थक-सा चला था और अब निवृत्त होनेकी सोच रहा था। उसने अपने छोटे लड़के, मेओथा, को पास बुलाया। राजकुमार साधारण पुरुषोंसे ज्यादा सुन्दर और नाना प्रकारकी बातोंमें प्रवीण था। उसकी उदारता न्यायको छूती थी; उसकी बुद्धि सूर्यालोककी न्याई थी और उसकी समझदारीकी किसीसे तुलना नहीं हो सकती थी। उसने अपनी जवानीका कुछ समय मजदूरों और कारीगरोंमें बिताया था ताकि अपने अनुभवसे जान सके कि उनके जीवनकी मांगें और आवश्यकताएं क्या हैं। और बाकी समय एकांतमें या फिर महलके चतुष्कोण मीनारमें दार्शनिकोंको गुरु मानकर अध्ययन या ध्यानस्थ विश्राममें लगाया था।

मेओथाने सादर अभिवादन किया तो वापने उसे अपने ही आसनपर बिठाकर कहा: “अच्छा, बेटे, मैंने इस देशमें एक सौ सत्तर वर्षसे अधिक राज किया है और अभी सभी सद्भावनावाले मेरे शासनसे संतुष्ट मालूम होते हैं, लेकिन मुझे भय है कि शीघ्र ही प्रौढ़ अवस्था मुझे सुव्यवस्था रखने और सबका कल्याण करनेके बहुत भारी दायित्वको खुशीसे उठा सकनेमें बाधा देगी। मेरे बालक, तुम ही मेरी आशा और मेरे आनंद हो, प्रकृति तुम्हारे साथ बहुत उदार रही है, उसने तुम्हारे ऊपर उपहारोंकी वर्षाकी है और बुद्धिमत्तापूर्ण तथा नियमित शिक्षाके द्वारा तुमने उन्हें संतोषजनक रूपमें विकसित किया है। सारे देश, सामान्य किसानोंसे लेकर हमारे महान् दार्शनिकोंतक, सबको तुम्हारे ऊपर संपूर्ण और सहानुभूतिपूर्ण विश्वास है। तुमने अपनी उदारताके द्वारा उनका प्रेम और न्यायद्वारा उनका आदर-सम्मान कमाया है, और यह स्वाभाविक है कि जब मैं भली-भांति कमाए विश्रामकी मांग करूंगा तो वे स्वाभाविक रूपसे तुम्हें ही चुनेंगे। लेकिन तुम जानते हो कि सदा प्रतिष्ठित रिवाजके अनुसार कोई भी इस सिंहासनपर तबतक नहीं बैठ सकता जबतक कि वह दोहरा न हो, अर्थात्, सर्वांगीण अनुकूलताके साथ, उसके साथ एक न हो जाय जो उसे क्षमताओं और रुचियोंके पूर्ण संतुलनके द्वारा संतुलनकी शांति दे सके। इस रिवाजकी याद दिलानेके लिये ही मैंने तुम्हें यहां बुलाया है और साथ ही यह पूछना था कि क्या तुम ऐसी युवतीसे मिले हो जो हमारी इच्छाके अनुसार अपने जीवनको तुम्हारे जीवनके साथ जोड़नेके लिये योग्य और इच्छुक हो?”

“पिताजी, मेरे लिये बड़े आनंदकी बात होती यदि मैं यह कह पाता कि मैंने उसे पा लिया है जिसके लिये मेरी सारी सत्ता प्रतीक्षा कर रही है। पर खेद है, अभीतक बात ऐसी नहीं है। इस राज्यकी प्रायः सभी विकसित लड़कियां मेरी परिचित हैं, उनमेंसे बहुतोंके लिये मुझे सहानुभूति है, सच्चा अहोभाव है परंतु किसीने मेरे अंदर वह प्रेम नहीं जगाया जो एकमात्र न्याय-संगत बंधन बन सके, और शायद अपने-आपको धोखा दिये बिना मैं यह भी कह सकता हूं कि उस ओरसे भी किसीके अंदर मेरे लिये प्रेमके अंकुर नहीं फूटे। आप सौजन्यके कारण मेरी परखको बहुत मूल्य देते हैं, इसलिये मैं आपको अपने मनकी बात बताता हूं। मुझे लगता है कि अगर मैं देश-विदेशके रीति-रिवाज और विधि-विधान जान लूं तो मैं आपकी छोटी-सी प्रजापर शासन करनेके लिये ज्यादा उपयुक्त हो सकूंगा। मेरी इच्छा है कि एक वर्षके लिये पृथ्वी-भ्रमण कर लूं। सब चीजें देखूं और अपने-आपको ज्यादा अच्छा बना सकूं। इसलिये मेरा निवेदन है पिताजी, कि मुझे इस यात्राके लिये अनुमति दे दीजिये। और कौन जाने, शायद मैं अपनी जीवनसंगिनीको लेकर लौटूं जिसकी सारी सुख शांति, सारी सुरक्षा मैं ही हो सकूं।”

“यह समझदारी-भरी इच्छा है। जाओ, बेटा, पिताके आशीर्वाद तुम्हारे साथ होंगे।”

*

पश्चिमके सागरमें एक छोटा-सा टापू है जिसकी निधि उसके वन हैं। गर्मियोंका एक सुहावना दिन है। एक जवान लड़की विशाल वृक्षोंकी छाया तले चली जा रही है। उसका नाम है लिआन। वह सभी औरतोंसे बढ़कर सुन्दर है। उसका लचीला शरीर हल्के कपड़ोंमें मनोहर रूपमें लहरा रहा है। उसका हल्के रंगका चेहरा लालिमाके कारण और अधिक गोरा लगता है। उसके वालोंका जूड़ा अपने जरा-से सुनहरे रंगके कारण और भी चमकदार हो उठा है। ऐसा लगता है कि उसकी आंखें मानों नील गगनमें खुलनेवाले दो द्वार हैं जो उसके चेहरेको एक बौद्धिक आभासे चमका देते हैं।

लिआन अनाथ और जीवनमें एकदम एकाकी है। उसके अनुपम सौंदर्य और विरल बुद्धिने बहुतांकी वासना या सच्चे प्रेमको आकर्षित किया है। लेकिन उसने अपने स्वप्नमें एक पुरुषको देखा है, एक ऐसे पुरुषको जो अपनी वेश-भूषासे किसी दूर देशका मालूम होता था। उस अनजाने व्यक्तिकी मधुर, गंभीर दृष्टिने लड़कीके हृदयको जीत लिया और अब वह किसी औरसे प्रेम नहीं कर सकती। वह तभीसे आशा कर रही है, प्रतीक्षा कर रही है और जो भव्य चेहरा उस रात देखा था उसके सपने लेनेके लिये स्वतंत्र होनेके उद्देश्यसे ही वह इन ऊंचे-ऊंचे पेड़ोंके बीच इस तरह घूमा करती है।

प्रखर सूर्यालोक पत्तोंमेंसे छनकर नहीं आ सकता, चलनेवाले पगोंके नीचेकी काईपर सिलवटें तो पैदा होती हैं पर कोई आवाज नहीं होती। चारों ओर दोपहरकी नींदका वातावरण है लेकिन फिर भी उसे लगता है कि अदृश्य सत्ताएं आस-पासके जंगलोंमें छिपी हैं और सूक्ष्म जांच करनेवाली आंखें पेड़ोंके पीछेसे झांक रही हैं।

अचानक किसी पक्षीका स्पष्ट और आनंदमय गान मानों कूद पड़ता है और हर कठिनाई लुप्त हो जाती है। लिआन जानती है कि वन परोपकारी है और अगर उसके अंदर कुछ सत्ताएं रहती हैं तो वे उसका बुरा नहीं चाह सकतीं। उसके अंदर एक मधुर भाव उमड़ आता है और सब कुछ अच्छा और सुन्दर लगने लगता है। उसकी आंखें भर आती हैं। अपने अजाने प्रेमीके बारेमें उसकी आशा कभी इतनी तीव्र नहीं हुई थी। उसे लग रहा था कि हवामें कांपते वृक्ष, पैरोंके नीचे चरमराती हरियाली और मधुर गान गाते हुए पक्षी, सभी उसकी बात कर रहे हैं जो उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। इस विचारसे ही कि शायद वह उसके मार्गमें मिलने ही वाला है, वह कांपती हुई रुक गयी। हृदयकी धड़कनोंको संभालनेके लिये छातीपर हाथ रख लिया और उत्कृष्ट भावनाओंका पूरा रसास्वादन करनेके लिये आंखें बन्द कर लीं। संवेदन अधिकाधिक तीव्र हो चला। वह इतना यथार्थ है कि लिआनको लग रहा है जरूर कोई है। ओह! आश्चर्यजनक चमत्कार! वह खड़ा है। सचमुच वही है, ठीक वैसा ही जैसा उसने स्वप्नमें देखा था...। साधारणतः पुरुष जैसे होते हैं उससे बहुत अधिक सुन्दर...। वह मेओथा ही था।

एक ही चितवनमें दोनों एक-दूसरेको पहचान लेते हैं, एक चितवनमें ही वे चिर प्रतीक्षाकी और खोजके परमानन्दकी बातें कह लेते हैं, क्योंकि दोनों सुदूर भूतकालमें एक-दूसरेको जानते थे और अब उसकी निश्चिति प्राप्त कर ली है।

वह उसके बड़े हुए हाथमें अपना हाथ पिरोती है और दोनों लिये-दिये विचारोंसे भरे मौनके

साथ जंगल पार करते हैं। उनके सामने आनंद-विभोर सूर्यके नीचे शांत, हरित समुद्र फैला हुआ है। समुद्रके किनारे एक बड़ा जहाज डोल रहा है।

विनीत, विश्वासपूर्ण, लिआन मेओथाके पीछे-पीछे उस नौकामें चढ़ती है जो उनके लिये प्रतीक्षा कर रही थी और रेतपर आ लगी है। दो मजबूत चप्पू चलानेवाले उसे तेजीसे समुद्रमें खींचकर जहाजके पास खड़ा कर देते हैं।

जब छोटा-सा टापू क्षितिजमें नजरोसे ओझल होने लगता है तो युवती अपने साथीसे कहती है: "मैं तुम्हारे लिये प्रतीक्षा करती रही, अब तुम आ गये हो, मैं बिना ननुनचके तुम्हारे पीछे हो ली। हम एक-दूसरेके लिये बने हैं; मैं यह अनुभव करती हूँ: मैं जानती हूँ। और मैं यह भी जानती हूँ कि अब और हमेशाके लिये तुम मेरा सुख और मेरी सुरक्षा होगे। लेकिन मैंने अपने निवास-स्थान, इस टापूसे और उसके सुन्दर वनोंसे प्रेम किया है और मैं यह जानना चाहूंगी कि तुम मुझे किस समुद्र तटकी ओर लिये जा रहे हो?"

"मैं तुम्हें सारी दुनियामें खोजता फिरा हूँ और अब जब कि तुम मुझे मिल गयी हो और बिना कुछ पूछे-ताछे मैंने तुम्हारा हाथ पकड़ लिया है, तुम्हारी चितवनमें ही मैंने यह पढ़ लिया है कि तुम मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। इस क्षणसे और हमेशाके लिये मेरी प्रियतमा ही मेरी सब कुछ होगी, और अगर मैंने उससे छोटे-से वनोंका टापू छुड़वाया है तो इसलिये कि उसे उसके अपने राज्यमें पहुँचा दूँ जो इस धरतीपर एकमात्र ऐसा देश है जहाँ सामंजस्य है, वही एकमात्र प्रजा है जो उसके योग्य है।"

(श्रीमातृवाणी खंड २से)

(अक्तूबर १९०६)

तुच्छ अहंका लोप

जब तुच्छ अहं निश्चिह्न हो जाता है, तब क्या ऐसा नहीं हो सकता कि व्यक्ति सीधे "अपने-आपको भगवान्‌के अंदर ही उपस्थित पाये?"

परंतु हम अपने तुच्छ अहंकारको पूरी तरह निश्चिह्न करनेसे पहले भी अपने-आपको भगवान्‌के अंदर पा सकते हैं, क्योंकि, अपने तुच्छ अहंको विलीन करना कोई मामूली बात नहीं है!

परंतु इसे कैसे किया जा सकता है?

इसे कैसे किया जा सकता है? अहंको कैसे विलीन किया जाय?—सर्वप्रथम, तुम्हें उसे करनेकी चाह होनी चाहिये, और ऐसे बहुत कम लोग हैं जो इसे करना चाहते हैं। और ठीक-ठीक वही बात है जो वे कहते हैं, यही है जीवन-यापनके उनके तरीकेका औचित्य समर्थन, "इसी ढंगसे मैं बना हूँ, मैं अन्यथा कर ही नहीं सकता। और फिर, यदि मैं इसे बदल दूँ, यदि मैं उसे बदल दूँ या यदि मैं इस चीजके बिना काम करूँ अथवा यदि मैं उस चीजसे रहित हो जाऊँ तो फिर मेरा अस्तित्व ही नहीं रहेगा।" और यदि कोई इसे खुले रूपमें नहीं भी कहता तो वह सोचता यही है। और ये सब छोटी-छोटी कामनाएँ, ये छोटी-

छोटी तुष्टियां, ये नहीं-नहीं प्रतिक्रियाएं, जीवनके ये सब सामान्य तरीके, मनुष्य उनसे चिपक जाता है, कठोरतापूर्वक चिपक जाता है—मनुष्य उनसे चिपक जाता है, मनुष्य उन्हें छोड़ना नहीं चाहता। मैंने सैकड़ों उदाहरण देखे हैं जहां किसीकी कठिनाइयां दूर कर दी गयी थीं (किसी विशेष शक्तिके द्वारा, एक विशेष कठिनाई दूर कर दी गयी थी), परंतु कुछ दिन बाद वह उसे उत्साहके साथ वापस ले आया ! उसने कहा, “परंतु उसके बिना तो अब मेरा कोई अस्तित्व ही नहीं !” मैं ऐसे लोगोंको जानती हूं जिन्हें लगभग स्वाभाविक ढंगसे मानसिक नीर-वता दे दी गयी थी और जो, एक या दो दिन बाद भयभीत स्थितिमें वापस आये : “क्या मैं मूर्ख बन गया हूं”—क्योंकि मनोमय यंत्र सर्वदा काम नहीं कर रहा था...। तुम यह कल्पना नहीं कर सकते, तुम नहीं जानते कि इस तुच्छ अहंसे अपनेको पृथक् करना कितना अधिक कठिन है; यद्यपि यह इतना छोटा है फिर भी कितना अधिक रास्तेमें आता है। यह इतना सूक्ष्म होनेपर भी इतना अधिक स्थान घेर लेता है। यह बहुत कठिन है। मनुष्य इसे किन्हीं बहुत स्पष्ट वस्तुओंमें दूर धकेल देता है; उदाहरणार्थ, यदि कोई अच्छी चीज है और कोई व्यक्ति निश्चित रूपमें उसे सबसे पहले लेनेके लिये तेजीसे आगे दौड़ पड़ता है, अपने पासके व्यक्तिको धक्का भी मार देता है (साधारण जीवनमें यह चीज बहुत अधिक बार घटित होती है), तो वह बिल्कुल सचेतन हो जाता है कि यह बात बहुत, बहुत सुन्दर नहीं है, अतएव वह इस प्रकारकी अशिष्टताओंको दबाना आरंभ करता है, वह बहुत बड़ा प्रयास करता है—और फिर वह अत्यधिक आत्मतुष्ट हो जाता है : “मैं स्वार्थी नहीं हूं, जो कुछ अच्छा है वह मैं दूसरोंको दे देता हूं, मैं उसे अपने लिये नहीं रखता,” और वह फूलकर कुप्पा होने लगता है। और इस तरह वह नैतिक अहंकारसे भर जाता है जो भौतिक अहंकारसे बहुत अधिक बुरा है, क्योंकि वह अपनी श्रेष्ठताके विषयमें सचेतन होता है। और फिर ऐसे लोग हैं जो सब कुछ छोड़ चुके हैं, सब कुछ त्याग चुके हैं, जो अपना परिवार छोड़ चुके हैं, अपनी संपत्ति बांट चुके हैं, एकांतमें चले गये हैं, जो संन्यासी-जीवन बिताते हैं, और जो अपनी श्रेष्ठताके बारेमें भयानक रूपसे सज्ञान होते हैं, जो अपने आध्यात्मिक उत्कर्षकी ऊंचाईसे विचारी मानवजातिकी ओर नीचे ताकते हैं—और उनमें, उन लोगोंमें, एक ऐसा प्रबल अहंकार होता है कि जबतक वह छोटे-छोटे टुकड़ोंमें भंग नहीं हो जाता तबतक वे कभी, कभी भी भगवान्को नहीं देख सकते। अतएव यह कोई इतना आसान कार्य नहीं है। इसमें बहुत अधिक समय लगता है। और मुझे यह भी बता देना चाहिये कि जब यह कार्य हो भी जाता है तो इसे बराबर ही फिरसे आरंभ करना पड़ता है।

भौतिक रूपमें, हम अपने जीवनके लिये भोजनपर निर्भर करते हैं—दुर्भाग्यवश। क्योंकि भोजनके साथ-साथ हम नित्य और निरंतर अचेतनता, तमस्, भारीपन, जड़ताकी एक बहुत बड़ी मात्राको ग्रहण करते रहते हैं। हम अन्यथा कर ही नहीं सकते—जबतक कि हम सतत, बिना विच्छेदके पूर्णतः सज्ञान न बने रहें और, ज्यों ही कोई तत्त्व हमारे शरीरमें प्रविष्ट हो, हम तुरत उससे केवल ज्योति ही प्राप्त करनेके लिये उसपर क्रिया न करें और जो कुछ हमारी चेतनाको अंधकारमय करनेवाला हो उस सबका परित्याग न कर दें। अपना भोजन खानेसे पहले भगवान्को समर्पित करनेकी जो धार्मिक प्रथा है उसका मूल स्रोत और युक्तिसंगत व्याख्या यही है। भोजन करते समय मनुष्य यह अभीप्सा करता है कि यह आहार तुच्छ मानव अहंके लिये न ग्रहण किया जाय बल्कि अपने अंदर विद्यमान दिव्य चेतनाकी पूजाके रूपमें लिया जाय। सभी योगोंमें, सभी धर्मोंमें इसे प्रोत्साहित किया जाता है। यही उस प्रथाका, पीछे विद्यमान चेतनाके साथ संबंध स्थापित करनेका मूल कारण है ताकि निश्चित रूपसे अचेतनताको

आत्मसात् करना यथासंभव अधिक-से-अधिक कम कर दिया जाय जो हमारे बिना जाने दिन-प्रतिदिन, निरंतर बढ़ती रहती है।

प्राणिक रूपसे, यह वही बात है। प्राणिक रूपमें तुम प्राणमय जगत्में रहते हो और प्राणिक शक्तिकी सभी धाराएं तुम्हारी चेतनाके अंदर आती-जाती रहती हैं, एक-दूसरीसे मिलती-जुलती और एक-दूसरीका विरोध करती रहती हैं, परस्पर झगड़ती और परस्पर ग्रथित होती रहती हैं, और यहांतक कि यदि तुमने अपनी प्राण-चेतनाको शुद्ध करने, उसमें विद्यमान कामना-पुरुष और तुच्छ मानव-अहंको जीतनेका व्यक्तिगत प्रयास किया भी होता है, तुम अपने साथ रहनेवाले लोगोंसे आनेवाले सब प्रकारके विपरीत प्रकंपनोंको सर्वदा आत्मसात् करनेके लिये एक प्रकारसे विवश होते हो। तुम अपने-आपको किसी निर्जन स्थानमें बन्द नहीं कर सकते, भौतिक रूपसे ऐसा करनेकी अपेक्षा प्राणिक रूपमें करना और भी अधिक कठिन होता है और तुम सब प्रकारकी वस्तुएं अपने अंदर ग्रहण करते हो; जबतक तुम सतत सचेत नहीं रहते, निरंतर अपने ऊपर चौकसी नहीं रखते, और जो कुछ प्रवेश करता है उसपर बिल्कुल पूर्ण नियंत्रण नहीं रखते ताकि अपनी चेतनाके अंदर अवांछित तत्त्वोंको घुसने न दो, तुम सभी प्रकारकी कामनाओं, सभी प्रकारकी निम्नतर क्रियाओं, सभी तुच्छ अंधकारपूर्ण प्रतिक्रियाओं, अपने आसपासके लोगोंसे आनेवाले सभी अवांछित प्रकंपनोंकी छूतको अनवरत ग्रहण करते रहते हो।

मानसिक रूपमें यह और भी अधिक बुरा है। मनुष्यका मन एक सार्वजनिक स्थान है जो चारों ओरसे खुला है और इस सार्वजनिक स्थानमें चीजें आती हैं, जाती हैं, सभी दिशाओंसे आर-पार गुजरती हैं; और कुछ वहां जम जाती हैं और ये सर्वदा सर्वोत्तम नहीं होतीं। और वहां, उस भीड़के ऊपर संयम प्राप्त करना सभी संयमोंमें सबसे अधिक कठिन है। अपने मनमें आनेवाले विचारको संयमित करनेका प्रयत्न करो और तुम देखोगे। तुम ठीक-ठीक समझ जाओगे कि तुम्हें एक संतरीकी तरह, अपने मनकी आंखोंको पूरा खोलकर, कितनी अधिक मात्रा-में चौकसी रखनी पड़ती है, फिर उन भावनाओंके विषयमें अत्यंत स्पष्ट दृष्टि रखनी पड़ती है जो तुम्हारी अभीप्साके साथ मेल खाती हैं और जो मेल नहीं खातीं। और उस सार्वजनिक स्थानपर जहां सभी ओरसे सड़कें आकर मिलती हैं, तुम्हें प्रतिक्षण पुलिस तैनात रखनी पड़ती है ताकि सभी पथिक एक साथ भीतर न घुस आयें। यह बहुत कठिन कार्य है। फिर, तुम यह समझ जाओगे कि यदि तुमने सच्चे प्रयत्न किये हैं तो भी तुम इन सब कठिनाइयोंके अंततक एक दिनमें, एक महीनेमें, एक वर्षमें नहीं पहुंच जाओगे। जब तुम आरंभ करते हो तब तुम्हें अटूट धैर्यके साथ ही आरंभ करना चाहिये। तुम्हें यह कहना होगा कि "मैं जो कुछ पूरा करना चाहता हूं उसमें यदि पचास वर्ष भी लग जायें, सौ वर्ष भी लग जायें, कई जीवन भी लग जायें तो भी मैं उसे अवश्य पूरा करूंगा।"

एक बार यदि तुमने इसका निश्चय कर लिया है, एक बार यदि तुम बिल्कुल सज्जन हो चुके हो कि ये बातें ऐसी ही हैं और इस लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये सतत और स्थायी रूपसे प्रयत्न करनेका कष्ट उठाना लाभदायी है तो तुम आरंभ कर सकते हो। अन्यथा, कुछ समय बाद तुम्हारी आशा भंग हो जायगी; तुम निरुत्साहित हो जाओगे, तुम अपने-आपसे कहोगे "ओह! यह बड़ा कठिन है—मैं इसे करता हूं और यह चौपट हो जाता है, मैं फिर करता हूं और यह फिर चौपट हो जाता है, और फिर मैं इसे दुबारा करता हूं और यह हमेशा ही चौपट हो जाता है...। फिर क्या किया जाय? कब मैं वहां पहुंचूंगा?" अतएव मनुष्यमें बहुत अधिक धैर्य होना चाहिये। यह कार्य सौ बार चौपट हो सकता है,

और तुम इसे फिरसे एक सौ एकवीं बार करोगे; यह हजार बार चौपट हो सकता है और तुम फिरसे इसे एक हजार एकवीं बार करोगे जबतक कि अंतिम रूपसे यह चौपट नहीं होता। और अंतमें यह चौपट नहीं होता।

बस, यदि तुम्हारी समस्त सत्ता एक टुकड़ेसे बनी होती तो यह कार्य बहुत आसान होता, पर तुम बहुत-से टुकड़ोंसे बने हो, फिर तुम्हारे अंदर एक टुकड़ा ऐसा है जो आगे है, जिसने कठिन परिश्रम किया है, जो बहुत सचेतन, एकदम जाग्रत् है, और जब वह विद्यमान होता है तो सब कुछ ठीक चलता है, तुम किसी चीजको अपने अंदर नहीं घुसने देते, तुम अपने ऊपर निगरानी रखते हो और फिर... तुम सोने चले जाते हो और दूसरे दिन जब तुम जागते हो वहां दूसरा भाग उपस्थित होता है और तुम अपने-आपसे कहते हो, "परंतु अब कहां है वह सब कार्य जिसे मैंने किया था?..." और फिर तुम्हें सब कुछ नये सिरसे आरंभ करना पड़ता है। फिर नये सिरसे सब कुछ आरंभ करना पड़ता है जबतक कि सभी भाग, एकके बाद एक, चेतनाके क्षेत्रके अंदर घुस नहीं आते और प्रत्येकका रूपांतर नहीं हो जाता। और जब तुम अपनी पहुंचकी सीमापर चले जाते हो, एक परिवर्तन आता है, तुम एक प्रगति कर लेते हो—उसके बाद, तुम्हें दूसरी प्रगति करनी होगी, पर तभी जब पहली हो चुकी हो। परंतु पूरी प्रगति केवल तभी होती है जब कि सत्ताके सभी भाग इस प्रकार एक-के-बाद एक सामने ले आये जाते हैं और उन सबपर तुम, बिना किसी अपवादके, चेतना, ज्योति, संकल्प और लक्ष्यकी छाप इस ढंगसे डाल देते हो कि सब कुछ परिवर्तित हो जाता है।

मैं यह सब तुम्हें निरुत्साहित करनेके लिये नहीं, बल्कि तुम्हें सावधान करनेके लिये कह रही हूं। मैं नहीं चाहती कि तुम बादमें यह कहो, "ओह! यदि मुझे मालूम होता कि यह इतना कठिन है तो मैंने शुरू ही न किया होता।" तुम्हें यह जानना चाहिये कि यह कार्य अत्यंत कठिन है और इसे महान् दृढ़ताके साथ शुरू करना चाहिये और अंततक जारी रखना चाहिये, यहांतक कि यदि अंत बहुत दूर भी हो—बहुत-सी चीजें अभी और करनेको बाकी भी हों। अब, मैं तुम्हें यह भी कह दूँ कि यदि तुम इसे सच्चे दिलसे करो, परिश्रम और सावधानीके साथ करो, यह अत्यंत दिलचस्प कार्य है। जिन लोगोंका जीवन बड़ा ही एकरस-सा है, रुचिकर नहीं है (हां, ऐसे बिचारे लोग होते हैं जिन्हें एकदम नीरस कार्य करने पड़ते हैं और सर्वदा उन्हीं कार्योंको, और सर्वदा उन्हीं परिस्थितियोंमें करना पड़ता है, और जिनका मन चाहे जिस किसी चीजमें रस प्राप्त करनेके लिये पर्याप्त रूपसे प्रबुद्ध नहीं होता) ऐसे लोग भी, जब अपने ऊपर इस छोटे-से कार्यको करना आरंभ करते हैं, संयम करने, बहिष्कार करनेका कार्य आरंभ करते हैं, कहनेका तात्पर्य, जब प्रत्येक तत्त्व अपने अज्ञान, अपनी अचेतनता, अपने अहंभावके साथ आता है, उसे बदलनेके लिये संकल्पशक्तिके सामने रख दिया जाता है और मनुष्य जाग्रत् बना रहता है, उनकी तुलना करता है, निरीक्षण करता है, अध्ययन करता है और धीरे-धीरे कार्य करता है, वह असीम रूपसे दिलचस्प बन जाता है, मनुष्य अद्भुत और एकदम अप्रत्याशित चीजें खोज निकालता है। मनुष्यको अपने अंदर बहुत सारी छोटी-छोटी गुप्त तहें, छोटी-छोटी चीजें मिलती हैं जो प्रारंभमें नहीं दिखायी देती थीं, मनुष्य एक प्रकारका आंतरिक शिकार शुरू कर देता है, छोटे-छोटे अंधकारपूर्ण कोनोंमें शिकार खोजने लगता है और अपने आपसे कहता है: "क्या, मैं ऐसा था! यह चीज मेरे अंदर थी, मैंने इस नन्हीं चीजको पोस रखा है!" कभी-कभी तो वह इतनी गंदी, इतनी नीच, इतनी धिनौनी होती है! और एक बार जब उसका पता लग जाता है, कितना आश्चर्यजनक लगता है! फिर मनुष्य उसपर ज्योतिकी किरण डालता है और वह विलीन हो जाती है! और फिर उसके बाद तुममें

वह प्रतिक्रियाएं नहीं होतीं जो पहले तुम्हें इतना उदास—दुःखी बना दिया करती थीं, जब तुम कहा करते थे, “ओह ! मैं वहां कभी पहुंच नहीं सकता।” उदाहरणार्थ, तुम एक बहुत साधारण-सा संकल्प (ऊपरसे देखनेमें बहुत साधारण) करते हो : “मैं अब कभी कोई झूठी बात नहीं कहूंगा।” और अकस्मात्, तुम्हारे बिना जाने कि क्यों और कैसे, झूठी बात बिल्कुल अपने-आप निकल पड़ती है और तुम उसे तब देखते-जानते हो जब वह मुंहसे निकल चुकती है। तुम कहते हो : “यह तो सही बात नहीं है—जो मैंने अभी कहा है; मेरा मतलब तो कोई और ही बात कहनेका था।” अतएव तुम खोजते हो, खोजते हो... “यह कैसे घटित हुआ ? मैंने कैसे उस ढंगसे सोचा और वैसा कह दिया ? कौन-सी चीज मेरे अंदरसे बोली, किसने मुझे धक्का दे दिया ? ...” तुम स्वयं बिल्कुल संतोषजनक व्याख्या दे सकते और कह सकते हो, “यह चीज बाहरसे आयी थी” अथवा यह अचेतनताका एक क्षण था,” और इस विषयमें और कोई बात न सोचो। और दूसरी बार फिर यह बात घटित होती है। उसके स्थानमें, तुम इस प्रकार खोजते हो, “उस व्यक्तिका क्या उद्देश्य हो सकता है जो झूठ बोलता है ? ...” और तुम आगे बढ़ते हो—और आगे बढ़ते हो और एकाएक तुम एक छोटे-से कोनेमें एक ऐसी चीजको खोज निकालते हो जो अपने-आपको सत्य सिद्ध करना चाहती है, बलपूर्वक स्वयं आगे बढ़ जाना चाहती है अथवा देखनेके अपने निजी तरीकेको स्थापित करना चाहती है (चाहे जो भी हो उससे कुछ आता-जाता नहीं, उसके कई कारण हो सकते हैं), अपने-आपको उससे थोड़ा भिन्न रूपमें दिखाना चाहती है जो वह है ताकि लोग तुम्हारे विषयमें थोड़ी अच्छी राय बनायें और यह समझें कि तुम कोई बहुत विशिष्ट व्यक्ति हो... बस, यही चीज थी जो तुम्हारे अंदर बोल पड़ी थी—तुम्हारी सक्रिय चेतना नहीं, बल्कि वही चीज जो वहां थी और जिसने तुम्हारी चेतनाको पीछेसे धकेल दिया था। जब तुम एकदम सावधान नहीं थे, इसने तुम्हारे मुंहका, तुम्हारी जीभका उपयोग कर लिया, और तब तुम सचेत हुए ! झूठ निकल पड़ा मैं तुम्हें यह उदाहरण दे रही हूँ—लाखों दूसरे उदाहरण हैं और यह सब अत्यंत मजेदार है। और जिस हदतक मनुष्य अपने अंदर इस चीजकी खोज करता है और सच्चाईके साथ कहता है, “इसे अवश्य बदलना चाहिये,” वह देखता है कि वह एक प्रकारकी आंतरिक सूक्ष्मदर्शन-शक्ति प्राप्त कर रहा है, वह क्रमशः इस विषयमें सचेतन होता जा रहा है कि दूसरोंमें क्या घटित हो रहा है, और जब वे बिल्कुल वैसे नहीं होते जैसा कि वह उन्हें देखना चाहता है तो वह क्रोधसे आग-बबूला होनेके बदले यह समझना आरंभ कर देता है कि चीजें कैसे घटित होती हैं, क्या कारण है कि मनुष्य “इस प्रकारका” है, प्रतिक्रियाएं कैसे उत्पन्न होती हैं ! ... तब ज्ञानसे संतुष्ट होकर वह मुस्कराता है। वह अब कठोरतापूर्वक किसीका विचार नहीं करता, वह अपने अंदरकी या दूसरोंके अंदरकी कठिनाइयोंको, चाहे उनकी अभिव्यक्तिका केंद्र कुछ भी क्यों न हो, दिव्य ‘चैतन्य’को समर्पित कर देता है, और उसका रूपांतर करनेकी प्रार्थना करता है।

(श्रीमातृवाणी खंड ४से)

प्यारका बंधन

मालतीकी पड़ोसिन मुस्कराते हुए बोली, “अब तो आपके दर्शन ही दुर्लभ हो जाएंगे। मालतीकी समझमें कुछ न आया। उसने कहा, “आपकी पहली मेरी समझमें नहीं आयी, जरा समझाइये तो।” पड़ोसिनने कहा, अरे आपको नहीं मालूम आपके ऊपरका फ्लैट खाली हुआ है न, उसमें कोई बड़ा अफसर आनेवाला है। सुना है अफसरसे भी अफसरानी बड़ी अकड़ फूँ वाली है। उन्हें पाकर आप हम लोगोंको क्यों याद करने लगीं। मालतीने कहा, “ना भई, हम ऐसे अफसरोंके पीछे चलनेवाले नहीं हैं, बड़ी होगी तो अपने घरकी। वह नक्कू होगी तो हम उससे सवाये रहेंगे।”

साथ-ही-साथ मालतीने अपने बच्चोंको बुलाकर समझा दिया, देखो ऊपर कोई अफसरानी आ रही है। तुममेंसे कोई भी उनके यहां चपड़-चपड़ करने न जा पहुंचे।

बात गयी आयी हुई। मालतीने देखा गृहकार्य करनेकी जगह निक्कू ‘सयाना सेरू’ नामक पुस्तकमें आंखें गड़ाये बैठा है। वह जरा गरमी दिखाते हुए बोली, निक्कू तुमसे कितनी बार कहा है पुस्तकालय मत जाया करो। रोजकी पढ़ाई तो होती नहीं, बस ये किताबें...

लेकिन पुस्तकालय गया ही कौन है? निक्कूने बात काटते हुए कहा, यह किताब तो उमा मौसीने दी है और वह मांके चेहरेपर प्रश्न-चिह्न देखकर तालियां बजाने लगा—“वह ऊपर आयी है न उमा मौसी, उनका बेटा अनिल मुझे ऊपर ले गया था। सच, मौसी बहुत ही अच्छी हैं, तुम देखो तो तुम्हें भी बहुत अच्छी लगेंगी। एक बार अनिलको देख लो तो लाड़ किये बिना न रहोगी।” यह कहते-कहते वह चिराँटेकी तरह अपने हाथोंके पंख फड़फड़ाने लगा।

मालतीने ऊपर नजर उठायी तो खिड़की खोलती हुई एक महिला दिखलायी दी जो निक्कूकी ओर देखकर मुस्करा रही थीं। छरहरा बदन, गोरा रंग और प्रसन्नतासे दमकता देहरा देख-मालतीको समझते देर न लगी कि यही निक्कूकी मौसी हैं। उसने शिष्टाचारवश हाथ जोड़ दिये और उधरसे भी जवाब मिल गया। इस तरह एक नये परिचयका बीच बोया गया।

अब मालती “उमा मौसी”के क्रिया-कलापोंमें कुछ रस लेने लगी। वहां आते-जाते मेहमानोंका तांता देखकर उमाके लिये सहानुभूति भी होने लगी। अकेली जान कितना कुछ करती होगी। और उसी समय निक्कू महाशय ऊपर चढ़ते दिखायी दिये। मालतीने धीरेसे कहा—“क्यों बेचारीकी मुसीबत करनेपर तुला हुआ है? वैसे ही उनके यहां मेहमानोंकी कमी है क्या जो तू संख्या बढ़ाने जा रहा है?”

निक्कूने भी बड़ी रहस्यकी बात कहनेके ढंगसे कहा, “तुम उन्हें नहीं जानती मां। अभी कल-परसोंकी ही तो बात है, मैं ऊपर जा रहा था। बहुत सारे मेहमान देखे तो लौट पड़ा, मैंने सोचा इतनी भीड़में एक औरकी गिनती क्यों बढ़ाऊँ, लेकिन उमा मौसीने मुझे लौटते देख लिया और आवाज दी और मैं कुछ कहूँ उसके पहले ही बोलीं, बेटा, तू यहां की भीड़से बचेगा तो कभी आ ही न पायेगा। यहां तो हमेशा ही सात जाते और नौ आते रहते हैं।”

मैंने कहा, “मौसी इत्ते-इत्ते मेहमानोंकी टहल करते-करते तुम ऊब नहीं जातीं? तुम्हारी जगह मैं होऊँ तो अंदरसे चिटकनी लगाकर सो जाऊँ। मौसी हंस पड़ी बोली, “नहीं बेटे, ऐसे बातें नहीं करते। मेहमान आते हैं तो मुझे कितना कुछ सिखा जाते हैं, कितने नये मित्र बनते हैं, कितनी नयी चीजोंका पता लगता है। शायद मुझे मेहमानोंके बिना रहना पड़े तो ऊब उठेगी।”

मैंने कहा, “शायद मौसी आपके यहां वैसे मेहमान नहीं आते जैसे हमारे यहां आया करते हैं।” मैं तो उनकी शकल देखते ही कांपने लगता हूं। मैं स्कूल जानेके लिये तैयारी कर रहा हूं और वे झट अपना कुछ काम बता देंगे। मैं बैठा हिसाब कर रहा हूं उनका हुकुम होगा हमें जरा बाजार ले चलो। मांके डरसे उनका अपमान भी नहीं कर सकता और उनका काम भी खलता है।”

मौसी बोली, “नहीं ऐसी बात नहीं है, मेरे यहां भी ऐसे मेहमान आ धमकते हैं लेकिन मैं भगवान्से प्रार्थना करती हूं और वे किसी-न-किसी बहाने अपना रास्ता नापते हैं।”

मौसीके मुंहसे भगवान्का नाम सुनकर मैं मौचक्का-सा रह गया। उनके घरमें न पूजाका कमरा है न देवताओंकी मूर्तियां या चित्र। उन्हें कभी माला फेरते या पोथी बांचते भी नहीं देखा। मौसी हैं होशियार, मेरे चेहरेका भाव पढ़ते हुए उन्होंने कहा, “मैं समझ गयी तेरी बात। देख भगवान् वाहरके मंदिरमें ही नहीं हृदय-मंदिरमें भी निवास करते हैं। कबीर साहब कहते हैं:

नयनोंकी कर कोठरी पुतरी सेज बिछाय।

पलकोंकी चिक डारिके पियाको लिया रिझाय॥”

मालती इस रहस्यमय आधुनिक महिलाकी बातें बड़ी उत्सुकतासे सुन रही थी। जरा नजदीकसे जाननेकी इच्छा प्रबल हो उठी। मांको चुप देखकर निक्कू ऊपरकी ओर भाग निकला।

मालती और उमामें दोस्ती होते देर न लगी। राखी पूनोके अगले दिन मालती कह रही थी: “आह भैयाके हाथपर राखी बांधनेमें कितना सुख है उमा।” उमा बीचमें ही बोल पड़ी, “यूं तो मेरे कोई भाई नहीं है पर भगवान्की माया अपार है।”

कल मैं अपने काममें लगी थी। न जाने नरेन कब आकर जम गया। वह बैठा-बैठा थक गया तो बोला, “जीजी, यह क्या, आज राखी न बांधोगी?” मैं उसकी ओर ताकती रह गयी। राखीकी मांग करनेवाला मेरी नन्दका नन्दोई लगता था। जब कभी यहां आता है तो मुझसे मिलना नहीं भूलता। वह तो भला हो मधुका, यहां एक राखी भूल गयी थी। मैंने वही उसके हाथपर बांध दी। उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है फिर भी देखो कैसे सुन्दर रूमाल दे गया है। मालती उमाके जितने ही नजदीक आती जाती थी उतना ही उसका विस्मय बढ़ता जाता था।

एक दिन मालतीके घर मेहमान आ गये। देखा तो चीनीका मर्तवान उसका मुंह चिढ़ा रहा था। इतनी बड़ी भूल कैसे हो गयी। वह सीधी उमाके यहां पहुंची। लेकिन यह क्या? नौकरने बताया मेमसाहब हस्पताल गयी हुई हैं, उनके भाई बीमार हैं।

मालती अचकचाकर लौट आयी। अब उमा दिखायी न देती थी। तीन दिन बाद मालतीने उसे सीढ़ीसे उतरते हुए देखा तो हाल-चाल पूछने जा पहुंची। उमाने कहा, “नरेन सख्त बीमार हो गया है। यह तो भगवान्की कृपा है कि अहमदाबादसे यहांतक आ भी पाया। पेटमें ऐसा दर्द है कि सारा शरीर धनुष-सा बन गया है।”

मालती न चाहते हुए भी कह बैठी उसका अपना कोई नहीं है। उमा बोली, “अरे अपना, दुनियामें कौन किसका अपना है। सभी अपने-अपने मतलब के हैं। कहनेको भाई भी है, बहन भी लेकिन गरीबीकी देखभाल करनेके लिये किसके पास समय है, किसे इसकी परवाह है? अच्छा मुझे जाना चाहिये नहीं तो हस्पतालका दरवाजा बन्द हो जायगा। मैं उसके लिये खाना लेकर जा रही हूं।”

दो एक दिन बाद मालती फिर उमाके यहां गयी तो देखा वह तोशेदान तैयार कर रही है।

मालतीने कहा, “क्या फिर हस्पतालकी तैयारी है?” उमा हंसते हुए बोली, “तुम्हें मैं कुछ कुछ पागल-सी लगती हूँ न?” इतनेमें अनिल दौड़ा-दौड़ा आया और बोला, “तैयार है, लाओ मैं लिये जाता हूँ।” वह ऐसे चावसे जा रहा था कि कोई अपने सगे मामाके लिये भी क्या जायेगा।

अनिल चला गया। उमाने कहा, “मेरे इस भाईने सब बच्चोंका मन मोह लिया है। इधर दंदसे तड़पता है और साथ ही हंसी मजाक कर-करके इन्हें हंसाता रहता है। उसकी बातें सुनकर किसीको विश्वास न होगा कि वह इतनी तकलीफमें है। बच्चे इसके साथ ऐसे घुले-मिले रहते हैं मानों वह उन्हींमेंसे एक है।

दो-चार दिन और बीते। मालती उमाका उतरा हुआ उदास चेहरा देखकर चौंक पड़ी। दो-दो सीढ़ियां चढ़ती हुई ऊपर गयी। उमा खिड़कीके पास जड़मूर्ति बनी खड़ी थी। मालतीने धीरे-से उसका कंधा छुआ। उमा एकदमसे चौंक पड़ी और रंधे हुए गलेसे बोली, “हस्पताल-से फोन आया है, इनके दूसरे रिश्तेदारोंको खबर भेज दो। इसका मतलब तो तुम समझ ही सकती हो। आज सवेरे ही तो उसने मुझसे कहा था अब डाक्टरने मुझे मनपसंद खाना खानेकी स्वीकृति दे दी है। अब तुम्हारी मुसीबत करूंगा। क्या अब वह कभी न आ पायेगा मालती?”

और उमा धम्मसे बैठ गयी।

—अनुबेन

चीन जापान और भारत

बीसवीं शताब्दीकी प्रवृत्तियोंके बारेमें यह महत्वपूर्ण है कि उसकी सभी महान् और प्रतीकात्मक घटनाएं पिछली कुछ शताब्दियोंकी तरह यूरोपमें न होकर एशियामें हो रही हैं। रूस और जापानका युद्ध, चीनी क्रांति, तुर्की और फारसके वैधानिक परिवर्तन और अंतमें, लेकिन सबसे अधिक महत्वपूर्ण, चाहे अभी कितना ही अनिश्चित क्यों न हो, भारतकी आत्माका पुनर्जागरण। इस युवा शताब्दीकी यही सचमुच महत्वपूर्ण घटनाएं हैं। यूरोपमें उसके एक एशियायी कोनेको छोड़कर, इनके समान विशालता तथा महत्ववाली कोई घटना नहीं घटी। रूसमें क्रांतिकारी प्रकोपके असमय जन्मे रहस्यानुष्ठान, बड़ी-बड़ी हड़तालोंकी वृद्धि, शांति-आन्दोलनकी असफलता, जड़वादी साम्यवादके दबावसे मुद्रांकित कानूनोंकी वृद्धि, चाहे वे अधिक बड़ी चीजोंके अंकुर लिए हुए क्यों न हों, ये चीजें अव्यवस्था और ऐसे रोगके मात्र भौतिक अस्पष्ट लक्षण हैं जिनकी प्रशामक दे-देकर व्यर्थ चिकित्सा की जा रही है। ये नव जन्म और पुनरुज्जीवनकी निश्चित गतियां नहीं हैं। इस नयी प्रवृत्तिका महत्व इस तथ्यमें है कि यूरोपकी बड़ी-बड़ी घटनाएं चाहे वे बाहरसे आध्यात्मिक ही क्यों न दीखती हों, सामान्यतः बौद्धिक और सामाजिक झुकाव और महत्व रखती हैं परंतु एशियाकी महान् घटनाएं बाहरसे बौद्धिक, सामाजिक और राजनीतिक लगनेके बावजूद आध्यात्मिक महत्व रखती हैं। अतः जब एशिया फिरसे जगत्की मुख्य घटनाओंका स्थल बन रहा है तो यह एक निश्चित चिह्न है कि एक महान् आध्यात्मिक क्रांति, शायद आध्यात्मिकताका एक महान् युग मानवजातिके लिए तैयार हो रहा है।

(श्रीअरविंद शताब्दी संस्करण खंड १७से)

(अपूर्ण)

प्रतिभाका स्रोत

जब मनुष्य अपने अंदर ऐसी शक्ति भरता है जो बहुत अधिक होते हुए भी सामान्य रूपमें क्रिया करती है तो हम उसे योग्यता या निपुणता कहते हैं, जब वह अपने कार्यमें असामान्य हो तो हम उसे प्रतिभा कहते हैं। ऐसा मालूम होता है कि प्रतिभा वस्तुतः विकासमें कोई अपूर्ण पग है जिसके द्वारा मानवजाति अपने सबसे अधिक ओजस्वी और उन्नत व्यक्तियोंमें ऐसी क्षमता विकसित करनेकी कोशिश कर रही है जिसे नियंत्रित या अनुकूलित करनेके लिए पूरी जाति अभी काफी समर्थ नहीं है। जैसा कि इस प्रकारकी गतिमें हमेशा होता है, नयी घटनाकी क्रियामें काफी अधिक अनियमितता होती है। कभी-कभी लगता है कि इसके लिए प्रकृति आनुवंशिकतासे अपने कुछ परीक्षणों और मानवजातिके सुन्दर फूलोंकी तैयारी करती है।

—श्रीअरविद

*A happy beginning
A good continuation
and no end —
an endless progression*

14-5-57

New Horizon Sugar Mills (Pvt.) Ltd.
Pondicherry

Telegram : 'SAKAR'
Phone : Town Office : 280
Factory : 153

P.O. Box 29
Pondicherry
S. India

Life is a perpetual choice between truth and falsehood, light and darkness, progress and regression, the ascent towards the heights or a fall into the abyss. It is for each one to choose freely.

THE MOTHER

Arvind Exports (P) Ltd.

Exporters of Engg. Goods, Pesticides, Chemicals, Ceramics,
Readymade Garments & Handicrafts etc.

Bombay Office :
76,77 Atlanta, Nariman Point
BOMBAY - 400 021, INDIA

H.O : CALCUTTA
75C, Park Street,
CALCUTTA - 700016 INDIA

Offi : 240277 * 240367
Resi : 814512
TELEX: - 011-4104
Gram:- "ARVIXPO"

Offi : 249065 * 248642
Resi : 478368
TELEX: - 021-7984
Gram:- "AUROEXPORT"

*In the eternity of becoming each Avatar is only the
announcer, the forerunner of a more perfect realisation.*

-- The Mother

With the Compliments of:

Sri Mahalaxmi Oil Mills

Raniganj

Burdwan (W. Bengal)

Assam Tea Warehousing Corporation *Indian Tea Storage Agency*

**The most tried & trusted tea warehouse of
Tea Trade at Gauhati and Calcutta**

8, Camac Street
CALCUTTA-700016

Mg Partner : SATISH DEORAH

Phone : 44-8491, 43-2534, 43-1644

Gram : "INTEASTORE"

प्रबोध

115

प्रबोध के माध्यम से

4-1-85



दिसंबर

१९८४

पुरोधा

दिसंबर १९८४

वर्ष २३, अंक ३, पूर्णांक २१७

विषय-सूची

संपादकीय : राजकुमार इतोकी हत्या	१
मानवताका सच्चा शासन	३
सन्देश	४
क्षुद्रकाय अहं (सौनेट)	५
दैनन्दिनी	६
‘भारतीय संस्कृतिके आधार’ पर : एक झांकी	८
‘सांध्य वार्ताएं’ : गुह्य तथ्य, जीवन इत्यादिके बारेमें	९
सत्	१२
‘श्रीमातृवाणी’ से : ज्ञानके विषयमें कुछ प्रश्न	१८
अग्निपरीक्षा	२२
आत्मकथाएं : शिशिरबिन्दुकी, छड़ीकी, कागजके थैलेकी, एक कलमकी, घड़ीकी, कोशकी तथा सड़ककी	२४
‘गीर्वाणी’ : मन्त्रः	२४

सूचना : आजकल बी. पी. का खर्च बहुत बढ़ गया है। एक बी. पी. लौट आये तो हमें लगभग पांच रुपयेका नुकसान होता है इसलिये हम कोशिश कर रहे हैं कि बीपियां न भेजी जायं। सभी ग्राहकोंको चंदा खतम होनेपर सूचना दी जाती है। सूचना मिलनेके साथ ही अपना चंदा भेजनेकी कृपा करें और यदि किसी कारण आप ग्राहक नहीं रहना चाहते तो भी सूचना तो अवश्य दे दें। यहांसे पुरोधा हर महीनेकी १० तारीखको और अग्निशिखा पहले महीनेकी २५ तारीखको भेजी जाती है। डाकवाले कई बार देर लगा देते हैं।

हो सके तो एक साथ या किस्तोंमें ४०० देकर पुरोधा और अग्निशिखा दोनोंके आजीवन सदस्य बन जाएं और औरोंको भी बनाएं, इससे उनकी और हमारी दोनोंकी सहायता होगी।
 धन्यवाद।

संपादक पुरोधा एवं अग्निशिखा, पांडिचेरी ६०५००२

पुरोधा वार्षिक : १४.००; अग्निशिखा वार्षिक : १०.००; दोनों मिलाकर : २२.००

संपादक : रवींद्र, वंदना

प्रकाशक : अनिरुद्ध सरकार, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००२

संपादकीय :

राजकुमार इतोकी हत्या

(आजके सन्दर्भमें)

मानवजाति अपने महापुरुषों, यहाँतक कि अवतारोंकी भी हत्या करनेमें कभी पीछे नहीं रही। माताजीने अपने एक सन्देश (१४ नवंबर १९५५) में बतलाया था — बात पुरानी है, बहुत पुरानी। एक रेगिस्तानमें जहाँ अब अरब देश है भगवान् ने परम प्रेमको जगानेके लिये धरतीपर अवतार लिया था। जैसा कि हुआ करता है, मनुष्योंने उन्हें गलत समझा, उनपर सन्देश किया, उन्हें कष्ट दिये और उनका पीछा किया। आततायियोंके आघातोंसे ये बुरी तरह घायल हो गये। अपना काम पूरा करनेके लिये ये शान्तिके साथ अकेलेमें मरना चाहते थे। आततायियोंके पीछा करनेपर ये दौड़े। उस बंजर भूमिमें अचानक एक अनारकी झाड़ी दिखायी दी। रक्षक देवने शान्तिके साथ शरीर त्यागनेके लिये झाड़ीके नीचे शरण ली। तुरन्त चमत्कारिक रूपसे झाड़ीकी शाखाएं बड़ी हो गयीं और चारों ओर इस तरह छा गयीं कि पीछा करनेवालोंको यह पता ही न लगा कि वे जिसकी तलाशमें हैं वह यहीं छिपा है। वे अपनी राहपर चलते गये।

बूंद-बूंद करके पवित्र रक्त धरतीपर गिरता गया और उसे उपजाऊ बनाता गया। झाड़ी बहुत सुन्दर, बड़े-बड़े गहरे लाल रंगकी पंखुड़ियोंसे भरे हुए फूलोंसे लद गयी, मानों रक्तकी असंख्य बूंदें हों

ये वही फूल थे जो हमारे लिये भागवत प्रेमका प्रतीक हैं।^१

हर क्षेत्रमें इस तरहकी हत्याएं हुई हैं बल्कि यूं कहें कि बलिदान हुए हैं। ईसा, सुकरात, दयानन्द एक ओर हैं तो गैलिलियो जैसे वैज्ञानिक दूसरी ओर। इनमें सबसे लंबी शृंखला है राजनीतिक लोगोंकी। आधुनिक इतिहासमें ही अब्राहम लिंकन, केनेडी, मार्टिन लूथर किंग, आदिके नाम दिमागमें तैर जाते हैं और हमारे अपने घरमें महात्मा गांधी और अब इन्दिरा गांधीके नाम इस मालाके सुमेरु हैं।

इन्दिरा गांधीके जन्मसे कई वर्ष पहले जापानमें राजकुमार इतोकी हत्या की गयी थी। उन्होंने अपने देशके उत्थानके लिये क्या नहीं किया? परंतु श्रीअरविंद अपने इस लेखमें उनकी हत्याको त्रासदी माननेसे इंकार करते हैं। इन्दिराजीके बलिदानके संदर्भमें यह लेख विशेष रूपसे पठनीय और मननीय है।—सं०)

एक महान् व्यक्तिका अवसान हो गया है। शायद उन्नीसवीं शताब्दीने राजनीतिक क्षेत्रमें जिस सबसे बड़ी क्रियाशील शक्तिको जन्म दिया था वह समाप्त हो गयी। वह जापानका निर्माता था, रूसका विजेता था। इस महान् व्यक्तिके सबसे पहले यूरोपमें उसके अपनी महिमाके क्षेत्रमें एशियाकी श्रेष्ठताको प्रतिष्ठित किया और कुछ ही वर्षोंमें संसारके भविष्यको बदल दिया। कुछ लोग कहेंगे कि ऐसे आदमीका ऐसा अंत एक त्रासदी है। हमारा मत इससे भिन्न है। ऐसे आदमीकी मृत्यु, अगर उसे मरना ही हो तो अपने देशके विस्तार और उसकी महानताके लिये लड़ते हुए मरना अपनी कर्मठतामें तेजीसे चल देना, हमारे शास्त्रोंके अनुसार

^१माताजीने बहुत-से फूलोंके आध्यात्मिक अर्थ बतलाये थे, उनमें अनारका नर फूल भागवत प्रेमका और मादा फूल भागवत बलिदानका प्रतीक है।

*

उस वीर आत्माको सीधा स्वर्गके आनन्दमें पहुँचा देती है। जो आदमी अपने यौवनमें अपने ही देशवासियोंकी तलवारोंके कारण मौतके जवड़ेमें रहता था क्योंकि वह भगवान्‌के दिये हुए कार्यको पूरा करनेके लिये नये रास्तोंसे आगे बढ़नेका साहस करता था, वह अपनी वृद्धावस्था विदेशी हाथोंसे मारा जाता है क्योंकि वह न्याय और अपनी जातिकी स्वाधीनताके मार्गपर अपने कर्तव्य पथपर आगे बढ़ता जाता था। इस जगत्‌में अभी तक प्रेम, न्याय और शक्तिमें सामंजस्य नहीं स्थापित हुआ है। यहां क्रियाशील मनुष्योंके लिए चुनाव करना बहुत कठिन होता है। और जो पूरी सचाईके साथ चुनाव करता है और पूरी तरह लगकर काम करता है, उसका चुनाव भले ठीक हो या न हो, वह अपने लिए इहलोक और परलोकमें पुण्य कमा लेता है। इतो एक राष्ट्रका निर्माण कर रहा था और वह अपना काम पूरा करनेके लिए ही जिया, उसकी मृत्युसे लाभ न होता। वह मरते समय एक साम्राज्य रच रहा था और उसकी मृत्युद्वारा उस साम्राज्यकी प्रतिष्ठा हो जायगी। किसी महापुरुषकी अंतरात्मा जब अपने विकासमें तो पूर्णता पा लेती है परंतु अपने कार्यके बीचमें से ही कट जाती है तो वह अपने अनुयायियोंमें या अपने राष्ट्रमें प्रवेश कर जाती है और एक इतने बड़े पैमानेपर काम करती है जितना उसके शरीरके लिए संभव न होता। इस विवेकशून्य और असामयिक कार्यसे कोरियाको कोई लाभ न होगा। वह इससे बड़ी भूल न कर सकता था। संसारकी जातियोंमें जापानियोंको मृत्युका भय दिखलाकर उनकी महत्वाकांक्षा या उनके कर्तव्यसे अलग कर सकना एकदम असंभव है और इस प्रहारके परिणामस्वरूप जापान अपने कार्यमें और भी अधिक कठोर और दृढ़ हो जायगा। उसके पास विज्ञान है, संगठन है, सामर्थ्य है, निष्ठुरता है... स्वाधीनताके लिए संघर्ष करते हुए हर राष्ट्रको स्वाभाविक रूपसे भारतकी सहानुभूति मिलनी चाहिए परंतु कोरियावासियोंमें स्वाधीनता पानेके लिए आत्मबल नहीं है। अपने पौरुषमें ऊँचे उठनेका प्रयास करनेकी जगह उन्होंने हमेशा अपने एशियाई भाईके विरुद्ध, एशियाकी अखंडताके विरुद्ध यूरोपीय शक्तियोंको बुलानेका अक्षम्य अपराध किया है। सचाई और औचित्य कोरियावालोंके साथ हैं लेकिन वे उस सचाईकी रक्षा करनेके लिए बलका आह्वान करना नहीं जानते। केवल राष्ट्रप्रेमकी अपेक्षा अधिक ऊँचे नैतिक स्तरसे देखें तो जापानियोंका दृष्टिबिंदु गलत है लेकिन उन्हें अपने धर्मपर अत्यधिक तीव्र विश्वास है और वह धर्म है राष्ट्रीय कर्तव्य। वे अपनी सारी शक्ति उसीमें उंडेल देते हैं इसलिए यह कह सकना कठिन नहीं है कि विजयश्री किस पक्षका वरण करेगी।

राजकुमार हिरोबूमि इतो अपने राष्ट्रका एक प्रतिनिधि होनेके साथ-साथ उसका सबसे बड़ा राजनेता और नेता था। वह कुछ समयके लिए उससे ऊँचा उठा, लेकिन उसे अपने साथ ऊँचाईपर लानेके लिए। उसके अंदर अपने देश और राष्ट्रके सभी सद्गुण उफनते हुए दिखायी देते थे पर साथ ही उसकी त्रुटियाँ और दोष भी थे। वह सार्वजनिक कार्योंमें पूरी तरह निःस्वार्थ, शांत, आडंबररहित था और तब तक अपने-आपको पृष्ठभूमिमें रखता था जब तक कि कर्तव्यका आह्वान उसे आगे न बुलाये। वह अचंचल, धैर्यवान, आत्मसंयम, शक्तिशाली, फूर्तीला, सुव्यवस्थित, भयसे अपरिचित, पूरी तरह अपने राष्ट्रको समर्पित था। यह जापानियोंकी विशेषता है और वह जापानी था। व्यक्तिगत जीवनमें उसके अंदर त्रुटियाँ और दोष थे। अपने सार्वजनिक जीवनमें भी उसमें कुछ संकीर्णता थी। वह अपने और तरीकेमें ठीक और गलतका बहुत ख्याल न रखता था और न्यायकी अपेक्षा सफलताको ज्यादा पसंद करता था। अपने देशवासियोंकी इन साम्य विशिष्टताओंके अतिरिक्त उसकी राजनीतिक प्रतिभा इतिहासके किसी भी बड़े-से-बड़े राजनीतिज्ञोंसे उन्नीस नहीं थी। उसकी आंखें लोगोंके हृदय

दिसंबर १९८४

३

पढ़ लेती थीं, उसके ओठ गोपनीय बातोंके लिए हमेशा सिले रहते थे। अपनी भाषामें वह अद्भुत रूपसे शांत और प्रभावकारी था। उसका मस्तिष्क एक सम्यताको एक दृष्टिमें अपने आलिंगनमें भर लेता था और जो कुछ जरूरी होता उसे ले सकता था। उसकी बुद्धि बहुत तेज, पैनी और साथ ही सावधान थी जो रास्ते निकाल सकती, चुन सकती और व्यवस्थित कर सकती थी। उसमें अध्ययन करनेकी शक्ति, अन्वेषणकी प्रतिभा, उपयोग कर सकनेकी असीम क्षमता, खुले दिलकी परंतु कभी ढील न देनेवाली अनथक कार्य-क्षमता थी। उसके अंदर यह सब चीजें सारे संसारको बदल सकनेके लायक इतने बड़े पैमानेपर थीं कि संसारके इतिहासको बदलना उसके लिए कोई बड़ी बात न थी और उसे प्राचीन एशियाकी वह महान् देन प्राप्त थी जिसमें आदमी अपने-आपको कभी आगे नहीं लाता, जरूरत पड़नेपर मिटा सकता है। यूरोपमें ऐसी रंग-बिरंगी सशक्त प्रतिभावाला व्यक्ति अपने व्यक्तित्वके कोलाहलसे सारे वातावरणको भर देता। लेकिन वह छायामें रहता हुआ मौन कार्य करता गया और अपने कदमोंको छिपाता रहा। संसारने उसे उसके कामोंके परिणामके कारण ही जाना। बहुत-से आधुनिक जापानियोंकी तरह वह संदेहवादी था। उसके लिए उसका देश ही उसका आराध्य देव था जिसके लिए उसका सारा जीवन समर्पित था। वह उसीकी सेवाके लिए जीवित रहा और उसीके लिए मरा। ऐसी थी वह महान् विभूति जो धरतीपर एक पूर्वीय जातिके एक छोटेसे टापूके तुच्छसे कुनवेमें पैदा हुई, एक ऐसी जातिमें जो संसारमें बहुत ही पिछड़ी हुई थी और चालीस वर्षमें उसने उसे एक महान् राष्ट्रमें बदल दिया, एक साम्राज्यकी स्थापना की, एक राष्ट्रकी महानताका सृजन किया और सारे महाद्वीपको महानताके लिए तैयार किया। उसकी मृत्यु उसके जीवनके ठीक अनुरूप थी। केवल दो प्रकारकी मृत्यु महान् होती है और किसी आत्माको उच्चतम स्वर्गतक ले जाती हैं—किसी आत्मविस्मयकारी कार्यमें, रणक्षेत्रमें, हत्यारेकी तलवारसे, औरोंके लिए फांसीपर चढ़कर, अपने देशके लिए, सत्यके लिए, प्राण देना या फिर योगीकी तरह मरना जो स्वेच्छामृत्यु स्वीकार करता है, जरा मरणसे मुक्त रहता और उसीमें जा मिलता है जहांसे आया था। संदेहवादी इतो, देशप्रेमी, भागवत कर्मको निःस्वार्थ सेवीकी मृत्यु प्रदान की गयी थी।

(‘कर्मयोगिन्’में प्रकाशित ‘असैसिनेशन आफ इतो’के आधारपर)

मानवताका सच्चा शासन

पहले ब्राह्मण शास्त्र और कर्मकांडके द्वारा शासन करते थे, फिर आये ढाल तलवारके साथ शासन करनेवाले क्षत्रिय। आज वैश्य मशीन और घन द्वारा शासन कर रहा है और गुलामीसे मुक्ति पाये हुए शूद्र, संगठित श्रमके राज्यके सिद्धांतको लेकर बढ़ रहे हैं। लेकिन पंडित, राजा, व्यापारी या मजदूर—इनमेंसे कोई भी मानवताका सच्चा शासक नहीं है। औजार और फावड़ेकी तानाशाही भी उसी तरह असफल रहेगी जैसे पहलेकी तानाशाहियां असफल रही हैं। इस धरतीपर प्रसन्न और संतुष्ट लोगोंकी जाति तभी पनपेगी जब अहंकार मर जायगा और मनुष्यके अंदर भगवान् अपनी मानव सार्वभौमिकतापर शासन करेंगे।

(भागवत मुहूर्तसे)

—श्रीअरविंद

संदेश

हे नाथ ! वर दे, जिन लोगोंने तेरी विजयके लिये इतनी बहादुरीके साथ युद्ध किया है और दुःख झेला है, वे इस विजयके सच्चे और वास्तविक परिणामोंको इस जगत्में चरितार्थ होते हुए देखें।

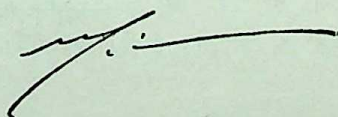
*

१९४७

इस वर्ष कोई प्रार्थना नहीं है, बल्कि एक प्रकारका प्रोत्साहन है। वह प्रोत्साहन और उसकी व्याख्या इस प्रकार है:—

7947

At the very moment when everything seems to go from bad to worse, it is then that we must make a supreme act of faith and know that the Grace will never fail us.



“जिस समय हर चीज बुरीसे अधिक बुरी अवस्थाकी ओर जाती हुई प्रतीत होती है, ठीक उसी समय हमें अपनी महती श्रद्धाका परिचय देना चाहिये और यह जानना चाहिये कि भगवत्कृपा कभी हमारा साथ नहीं छोड़ेगी।”

*

ऊषा निकलनेसे पहले अंधकार अत्यंत घना होता है।
स्वतंत्रता आनेसे ठीक पहलेकी परतंत्रता सबसे अधिक दुःखदायी होती है।
परंतु श्रद्धासंपन्न हृदयमें आशाकी वह सनातन ज्योति जलती रहती है जो निराशाके लिये कोई अवकाश नहीं देती।

क्षुद्रकाय अहं

यह जो अहंभावका पुतला जगज्जननी द्वारा यह निर्मित
स्वल्पायतन प्रकृतिके कर्मोंका जो लाभ उठाया करता,
निज जीवन विधानमें उनका इसने किया न्यासको खंडित,
नहीं चुकाता ऋण अपना अधिकार निरंतर मांगा करता।

हम सबका यह अहंबोध जीवनकी गतियोंमें आच्छादित,
सत्ताके तानेबानेमें रहता अंतरंगतः ग्रंथित
फूंक रहे निस्स्वार्थ भावका शंख जभी हम अतिशय दम्भित
यह चुपचाप समाया रहता करता हमको है आप्लावित।

एक खुली है राह समर्पित तुम्हें करें आत्माको और हृदयको
इस शरीरको, मनको, अपने प्रति कोषाणु करें हम अर्पित
फिर अनंत तब विश्वभावमें हो जावें अतिशय निमग्न जीनेको
तब प्रकाशमें डूब अशोभन जादू यह हो जायेगा सचमुच विगलित
स्वयं सर्वथा प्रकृति बनेगी तब विद्रोह भावसे मुक्त
परब्रह्मकी ही विशाल प्रांजलताका प्रश्वास प्रमुक्त।

—श्रीअरविद



काली प्रकृतिकी वह शक्ति है जो तारोंको उनके परिक्रमा पथपर उसी आसानीसे घुमाती
है जैसे कोई बच्चा गेंदको घुमाता है। उस शक्तिके लिए कोई चीज असंभव नहीं है। वह
असंभवको संभव बनानेमें बहुत कुशल है—अघटन घटना पटीयसी।

—श्रीअरविद

दैनन्दिनी

विसंखर

१. तुम्हें अपने अंदर अधिकाधिक उचित दृष्टि और आंतरिक शक्ति ग्रहण करने और उसका संचार करनेकी शक्ति विकसित करनी चाहिए और यह काम तात्कालिक विजय या पराजयसे उल्लसित या क्षुब्ध हुए बिना, शांति और धीरजके साथ करना चाहिए।
२. कार्य भगवान्‌के प्रति आत्मसमर्पण करनेका साधन हैं लेकिन उसे आवश्यक आंतरिक चेतनाके साथ करना चाहिए, जिसमें बाहरी प्राण और शरीर भी भाग लें।
३. तुम्हारे निकट ही हर समय एक बल रहता है जिसे तुम अपने अंदर बुला सकते हो, वह थकान, बेचैनी इत्यादि चीजोंको दूर कर देगा, लेकिन उसे ग्रहण करनेके लिए तुम्हें अचंचल होना सीखना चाहिए।
४. स्वभावतः एक उच्चतर ऊर्जा है, वर्तमान वैश्व ऊर्जाओंके ऊपर है और वही प्रकृतिको रूपांतरित करेगी और मानसिक, प्राणिक और भौतिक ऊर्जाओंको लेकर उन्हें अपने सादृश्यमें बदल लेगी।
५. अपने मनको उस कामकी ओर वापिस न जाने दो जो पूरा हो चुका है। वह भूत-कालका है और उसे फिरसे हाथमें लेना शक्तिका अपव्यय है।
६. भौतिक वस्तुओंमें व्यवस्थित सामंजस्य और व्यवस्था निपुणता और पूर्णताका आवश्यक भाग हैं और यंत्रको, दिये गये किसी भी कामके योग्य बना देते हैं।
७. सतत आंतरिक विकासद्वारा ही हम सदा नवीनता और जीवनमें अक्षय रस पा सकते हैं। और कोई संतोषजनक उपाय नहीं है।
८. कामके सुव्यवस्थित प्रबंधके लिए अनिवार्य नियम हैं, क्योंकि व्यवस्था और प्रबंधके बिना कोई चीज ठीक ढंगसे नहीं की जा सकती, उसके बिना सब कुछ संघर्षमय, अस्तव्यस्तता-पूर्ण और अव्यवस्थित बन जाता है।
९. सभी अहंकारमय हेतुओंसे मुक्त, वाणी और क्रियामें सत्यके प्रति सावधान, स्वाग्रह और स्वेच्छाचाररहित, सभी चीजोंके बारेमें चौकन्ना—यह है निर्दोष सेवक होनेकी शर्त।
१०. भौतिक चीजोंका बुरी तरहसे उपयोग, लापरवाहीसे उन्हें तोड़ना, फोड़ना, अपव्यय या दुरुपयोग, यौगिक चेतनाको अस्वीकारना है और भागवत सत्यको नीचे, भौतिक स्तरपर उतारने में बड़ी बाधा है।
११. यह सच है कि भौतिक चीजोंके अंदर एक चेतना होती है जो अनुभव करती और सावधानीको प्रत्युत्तर देती है और बुरी तरहसे उपयोग तथा असावधानीके साथ रख-रखावके प्रति संवेदनशील होती है।
इस बातको जानना, इसका अनुभव करना और इसके बारेमें सावधान रहना सीखना चेतनाकी एक महान् प्रगति है।
१२. जबतक मन इधर-उधर कूदता-फांदता रहे या बाहरी चीजोंकी ओर दौड़ता रहे तबतक अंतर्मुख, प्रकृतिस्थ और भीतरसे सचेतन होना संभव नहीं है।
१३. समाधिमें हुई अनुभूतियोंका उपयोग सत्ताको खोलने और तैयार करनेके लिए होता है लेकिन उसपर सच्चा अधिकार तभी होता है जब उपलब्धि जाग्रत अवस्थामें निरंतर बनी रहे। अतः इस योगमें सबसे अधिक मूल्य जाग्रत उपलब्धि और अनुभूतिको दिया जाता है।
१४. तुम्हें अपनी सभी अवस्थाओं और गतिविधियों, साथ ही भगवान्‌के बारेमें भी—भग-

दिसंबर १९८४

वान्की स्मृति, उपस्थिति, शक्ति, शांति, प्रकाश, ज्ञान, प्रेम और आनंदके बारेमें सचेतन होना चाहिए।

१५. ऐसा कौन है जो योगाभ्यास करता है परंतु जिसमें निराशा, असफलता, अविश्वास और अंधकारकी अवधियां, लंबी अवधियां न आती हों। लेकिन कोई चीज है जो उसे सहारा देती है और स्वयं उसके वावजूद चलती जाती है क्योंकि वह अनुभव करती है कि वह जिसका अनुसरण कर रही है वह सच है, अनुभव और लगनसे भी बढ़कर, वह उसे जानती है।
१६. अगर हमारे चारों ओर ऐसी शक्तियां हमेशा बनी रहती हैं जो अवसाद लाने और हतोत्साह करनेमें लगी रहती हैं तो हमेशा हमारे चारों ओर और हमारे ऊपर ऐसी शक्तियां भी रहती हैं जिनसे हम सहायता पा सकते हैं, जिन्हें हम अपने अंदर खींच सकते हैं ताकि वे हमें फिरसे उस बल, श्रद्धा, आनंद और शक्तिसे भर दें जो अव्यवसाय करती और विजय पाती है।
१७. तुम्हें कहना चाहिए, "चूंकि मैं केवल भगवान्को चाहता हूं इसलिए मेरी सफलता निश्चित है। मुझे केवल संपूर्ण विश्वासके साथ आगे बढ़ते चलना है और स्वयं उनका हाथ, उनके मार्गसे, उन्हींके समयपर, उन्तक सुरक्षाके साथ पहुंचानेके लिए रहेगा।" इसे तुम्हें अपने सतत मंत्रकी तरह रखना चाहिए।
१८. तुम और किसी भी चीजपर संदेह कर सकते हो लेकिन अगर जो केवल भगवान्को पाना चाहता है वह भगवान्तक अवश्य पहुंचेगा यह निश्चित है और दो और दो चारसे भी ज्यादा निश्चित है। हर साधकके हृदयकी तलीमें यह श्रद्धा होनी चाहिए, यह हर लड़खड़ाहट, हर प्रहार और हर अग्निपरीक्षामें सहारा देती है।
१९. योगमें जिस शक्तिकी आवश्यकता है वह है प्रयास, कठिनाई और कष्टमेंसे बिना थके, उदास हुए, साहस छोड़े और प्रयत्नको छोड़े या अपने लक्ष्य अथवा निश्चयको छोड़े बिना आगे बढ़नेकी शक्ति।
२०. जिसने भगवान्के साथ एक होने और उन्हें प्रकट करनेके जैसा महान् लक्ष्य अपने सामने रखा है वह भला जीवनकी समस्त तुच्छ और मूर्खतापूर्ण चीजोंसे कैसे प्रभावित हो सकता है?
२१. हम अपने अंदर एक शाश्वत चेतनाको लिए हुए हैं और हमें उसीके विषयमें सचेतन होना चाहिए।
२२. जो चीज जीते जी नहीं प्राप्त हो सकती या नहीं जीती जा सकती वह मृत्युके बाद तो निश्चित रूपसे नहीं पायी या जीती जा सकती है। वास्तवमें यह भौतिक जीवन ही प्रगति करने और सिद्धि प्राप्त करनेका सच्चा क्षेत्र है।
२३. किसी चीजसे नहीं डरो, भगवान् सभी सच्ची अभीप्साओंका हमेशा उत्तर देते हैं और उन्हें जो कुछ सहर्ष समर्पित किया जाता है उसे कभी अस्वीकार नहीं करते।
२४. तुम जितना अधिक खिन्न रहोगे और जितना अधिक विलाप करोगे उतना ही अधिक मुझसे दूर होते जाओगे। भगवान् खिन्न नहीं हैं और भगवान्को पानेके लिए तुम्हें सारी खिन्नता और हृदयकी सारी दुर्बलताओंको अपने अंदरसे दूर फेंक देना होगा।
२५. वास्तवमें प्राण ही मांगता है, निरंतर मांग करता है और कभी संतुष्ट नहीं होता...। चैत्य सत्ता, हृदयकी सच्ची और गहरी भावनाएं सदा संतुष्ट रहती हैं और कभी किसी चीजकी मांग नहीं करतीं।

२६. वास्तवमें शुद्ध और निःस्वार्थ प्रेमसे अधिक सुखी बनानेवाली दूसरी कोई चीज नहीं है।
२७. सच्चा दिव्य प्रेम सभी झगड़ोंसे ऊपर है। यह अपरिवर्तनीय आनंद और शांतिमें प्राप्त पूर्ण एकताकी अनुभूति है।
२८. प्रेम करनेका अर्थ अधिकार करना नहीं, बल्कि अपने-आपको देना है।
२९. निश्चय ही, अपने-आपमें अधिक न डूबे रहना हमेशा लाभदायक है।
३०. अगर तुम अपना काम एक ऐसे उत्सर्गके रूपमें करो जिसे तुम पूरी सचाईके साथ भगवान्‌के चरणोंमें अर्पित करते हो, तो वह काम उतना ही लाभदायी बन जायगा जितना कि ध्यान।
३१. प्रभो, वर्ष मर रहा है और हमारी कृतज्ञता तेरे आगे नमन करती है।
प्रभो, वर्ष नया जन्म ले रहा है, हमारी प्रार्थना तेरी ओर उठती है। वर दे कि यह हमारे लिये भी नव जीवनकी ऊषा हो।

‘भारतीय संस्कृतिके आधार’पर :

एक झांकी

भारतीय धर्म और दर्शनका अन्तहीन वैविध्य यूरोपीय मनको भ्रममें डाल देनेवाला, यहां तक कि उकता देनेवाला और निरूपयोगी प्रतीत होता है, हम कह सकते हैं कि जिस तरह घने वनमें पेड़-पौधोंकी बहुलताके कारण व्यक्ति वनके अंदर प्रवेश कर उसे देखनेमें असमर्थ होता है उसी भांति यूरोपीय मन धर्मके विभिन्न रूपोंके बाहुल्यके कारण सर्वसामान्य आध्यात्मिक जीवनको नहीं देख पाता। विवेकानन्दने ठीक ही कहा है कि अपने-आपमें यह अनन्त विविधता ही एक उत्कृष्ट धार्मिक संस्कृतिका लक्षण है।

भारतीय मनने सदा ही यह अनुभव किया है कि परमोच्च सत्ता अनन्त है, उसने एकदमसे अपने आरंभिक वैदिक कालसे ही यह देखा है कि प्रकृतिगत आत्माके सम्मुख अनन्तको हमेशा अनन्त रूपसे विविध रूपोंमें ही प्रकट होना चाहिये। जब कि पश्चिमी मनने हमेशासे ही इस उग्र और हम कह सकते हैं एकदमसे युक्तिहीन विचारको पोसा है कि समस्त मानवजातिके लिये एक ही धर्म होना चाहिये, एक ऐसा धर्म होना चाहिये जो अपनी संकीर्णताके कारण एक ही सिद्धान्त, एक ही पूजा-प्रणाली, क्रियाकी एक ही पद्धति, विधि-विधानकी एक ही परंपराके बलपर सार्वभौम सिद्ध हो। उसे ही वे एकमात्र सच्चा धर्म कहते हैं जिसको लोग यहां मनुष्योंके द्वारा सताये जानेके डरसे और दूसरे लोकोंमें ईश्वरके द्वारा आध्यात्मिक रूपमें त्याग दिये जाने या हमेशाके लिये भयानक दण्ड दिये जानेके भयसे स्वीकार करते हैं या यूं कहें कि उन्हें स्वीकार करना पड़ता है। मनुष्यकी तर्कहीनताकी यह भद्दी रचना, जो इतनी अधिक असहिष्णुता, क्रूरता और उग्र धर्माधताकी जननी है, भारतके स्वतंत्र और नमनीय मनपर कभी अपना अधिकार नहीं जमा सकती। हां, यह सच है कि हर जगह मनुष्योंमें कुछ सामान्य मानव त्रुटियां होती हैं और असहिष्णुता और संकीर्णता—विशेषकर धार्मिक अनुष्ठानोंमें—भारतमें भी रही है और है भी, यहां धार्मिक शास्त्रार्थका बहुत अत्याचार रहा है, सम्प्रदायोंके असन्तोषपूर्ण कलह हुए हैं जिनमें प्रत्येकने अपनी आध्यात्मिक श्रेष्ठता और अपने महत्तर ज्ञानका दावा किया है और कहीं-कहीं तो इन चीजोंने दंगोंका रूप ले लिया लेकिन फिर भी यह बात हम

निश्चित रूपसे कह सकते हैं कि ये चीजें यहां उतने पड़े परिमाणमें कभी नहीं हुई जितनी कि यूरोपमें हुई। यहां ये असहिष्णुताएं तार्किक आक्रमणके झगड़ों, सामाजिक प्रतिबन्ध या जाति-वर्णिकार तक ही सीमित रही हैं, इस सीमाको पार करके वे उस निष्ठुर उत्पीड़नके उन बड़े-बड़े रूपोंतक शायद ही पहुंची हों जो यूरोपके धार्मिक इतिहासपर कलंकका टीका लगाते हैं। भारतमें हमेशासे ही एक प्रकारकी उच्चतर और शुद्धतर आध्यात्मिक बुद्धिने क्रीड़ा की है जिसका प्रभाव सामूहिक मनपर भी पड़ा है। भारतीय धर्मने सदैव यह अनुभव किया है कि चूंकि मनुष्यके मन, स्वभाव और बौद्धिक आकर्षणकी विविधताका कोई अन्त नहीं इसलिये अनन्तके पास पहुंचनेके लिये मनुष्यको विचार और पूजाका पूर्ण स्वातन्त्र्य अवश्य देना चाहिये।

हम देखते हैं कि भारतने आध्यात्मिक अनुभव और ज्ञानकी प्रामाणिकताको स्वीकार किया पर उसने इससे भी अधिक आध्यात्मिक अनुभव और ज्ञानकी विविधताकी आवश्यकताको स्वीकार किया। पतनके दिनोंमें भी उसने इस दृष्टिको बनाये रखा कि प्रामाणिक शास्त्र एक ही नहीं हो सकता बल्कि वे अनेक होने चाहियें। एक नये प्रकाशको—जो पुरानी परंपराको व्यापक बनानेमें समर्थ हो—स्वीकार करनेकी तत्परता हमेशा ही भारतके धार्मिक मनकी विशेषता रही है। नास्तिक, बौद्ध और अज्ञेयवादी भारतमें उत्पीड़नसे मुक्त थे। जैन मतोंको अशास्त्रीय धर्म कहकर निन्दित ठहराया जा सकता था लेकिन उन्हें शास्त्रीय धर्म-मतों और दर्शनोंके साथ-साथ स्वतंत्रतापूर्वक रहने दिया गया। सत्यकी अपनी जिज्ञासामें उसने उन सभी-को पूर्ण अवसर प्रदान किया, उनके सब मूल्योंकी परीक्षा की और उनका जितना सत्य आत्म-सात् करने योग्य था उतनेको अपने आध्यात्मिक अनुभवकी सदा विस्तारशील परंपराके खजाने-में ले लिया। इस अजर परंपराको सावधानीके साथ सुरक्षित रखा गया लेकिन साथ ही उसने अपने अंदर सभी दिशाओंसे प्रकाशको प्रवेश करने दिया।

‘साम्बन्ध वार्ताएं’ :

गृह्य तथ्य, जीवन इत्यादिके बारेमें

४-२-१९२६

(आजका विषय था ‘सर्वांग सुन्दर शरीर’का आदर्श, जिस शरीरको कभी विकृत न किया जा सके।)

श्रीअरविंद—आदर्श तो ठीक है परंतु भौतिक सत्ता बहुत ज्यादा असंतोषजनक है। हम तथ्योंकी अवहेलना करके उसके पार नहीं जा सकते।

शिष्य—महात्मा गांधी अपनी आत्मकथामें शरीरके साथ किये गये अनेक परीक्षणोंकी बात कहते हैं। उनका कहना है कि संसारको सत्यको ग्रहण करने योग्य बनना चाहिये।

श्रीअरविंद—यह सच है। उनकी आत्मकथा रूसो और सेंट आगस्टाइनकी आत्मकथाओंके साथ साहित्यमें स्थान पायेगी लेकिन प्रश्न यह है कि क्या सत्य ही उनका आदर्श है? कहने-का मतलब है कि जब हम किसी नैतिक समाधानको अन्तिम रूपमें प्रस्तुत करें तो हमें पता होना चाहिये कि हम ठीक मार्गपर हैं या नहीं?

(अब बातचीत गुह्य तथ्योंकी ओर मुड़ गयी)

शिष्य—गुह्य प्रदर्शनोंके समय गुलदस्तों या मेजोंको अपने स्थानसे हटाया जाता है। क्या ये चीजें सम्मोहनद्वारा की जाती हैं?

श्रीअरविंद—नहीं, सम्मोहनशक्ति इसका जवाब नहीं है।

शिष्य—कहा यह जाता है कि माध्यमसे उस पदार्थतक एक धुंका मार्ग-सा होता है।

श्रीअरविंद—यह संभव है। भौतिक पदार्थके बहुत-से रूप होते हैं। हम स्थूलतम रूपको जानते हैं, इसके अतिरिक्त भौतिक पदार्थके बहुत-से सूक्ष्म रूप होते हैं और हर एकके अपने गुण धर्म होते हैं। भारतीय पुराण कथाओंमें सात धरतियोंकी बात आती है। वेदके अनुसार तीन धरतियां हैं। कहा जाता है कि राजा कार्तवीर्यने चौदह धरतियोंको जीता था!

शिष्य—क्या भौतिक शरीरको छोड़कर और भी शरीर हैं?

श्रीअरविंद—वस्तुतः मनुष्यके कोपोंके बीच कोई रिक्तता नहीं है। सचमुच यह सबसे नीचे से लेकर सबसे ऊंचेतक जानेवाला सप्तक है और इनमेंसे हर तत्त्व सातोंमें दोहराया गया है। इस तरह हर एकमें सब कुछ है। अन्यथा यह जगत् चल ही नहीं सकता। हमारा जो भौतिक शरीर है उसके अतिरिक्त अन्य चार शरीर भी हैं।

शिष्य—जब आदमी मरता है और उसका भौतिक शरीर नष्ट हो जाता है तो क्या होता है?

श्रीअरविंद—जब कोई चीज गायब होती है तो वह अगले लोकमें जा सकती है जो स्थूल भौतिक तो नहीं है परंतु भौतिक तो है ही; अतः अभौतिक हो जानेका सवाल ही नहीं उठता।

शिष्य—रहस्यमय तथ्योंमें भौतिकीकरण या अभौतिकीकरणके विचार देखे जाते हैं, उदाहरणके लिए जब कोई भौतिक पदार्थ प्रकट होता और फिर गायब हो जाता है तो इसे क्या कहा जाय?

श्रीअरविंद—लेकिन अभौतिकीकरण क्या है? वस्तुतः हमें पूछना यह चाहिए कि भौतिक पदार्थ है क्या? वह अमुक शक्तियों और शक्तियोंकी लीलासे बना है जो जड़ भौतिक रूपको बनाये रखती है। क्या ऐसा नहीं है?

शिष्य—तो क्या हम परमाणुके 'जीवन'की बात नहीं कह सकते?

श्रीअरविंद—इसकी व्याख्या यह हो सकती है कि जब किसी चीजको देशके चौथे आयाममें अदृश्य कर दिया जाता है तो हम इसे अभौतिकीकरण कह सकते हैं और जब उसे चौथे आयाममेंसे निकालकर इस देशमें रख दिया जाता है तो यही भौतिकीकरण है क्योंकि तब वह पदार्थ हमें दिखलायी देता है।

शिष्य—लेकिन आजकल वैज्ञानिक परमाणुकी ग्रहणशील शक्तिकी बात करते हैं तो क्या हम परमाणुके 'जीवन'की बात नहीं कर सकते?

श्रीअरविंद—परमाणुका जीवन। लेकिन इन चीजोंको तुम्हें आंतरिक आंखसे देखना होता है।

शिष्य—'आंतरिक आंखसे देखने' और 'चौथे आयाममें शरीर'का मतलब क्या है?

श्रीअरविंद—यह कहनेका एक ढंग है। तुम इन चीजोंको ज्यादा आसानीसे अनुभव कर सकते हो यानी तुम उनके बारेमें सचेतन हो सकते हो।

शिष्य—क्या हम उन्हें जान सकते हैं?

श्रीअरविंद—हम उन्हें अनुभव करते हैं। ज्ञान और चेतना एक चीज नहीं है, यह सूत्र-बद्ध ज्ञान नहीं, एक तरहकी अनुभूति है।

शिष्य—लेकिन हम परमाणुके जीवनका कोई चिह्न नहीं देखते।

श्रीअरविंद—जगदीश चन्द्र वसुने दिखला दिया है कि धातुओं और वनस्पतियोंमें भी यकान होती है, धातुओंपर जहरका असर होता है।

शिष्य—किसी सूक्ष्म या गुह्य शक्तिद्वारा लौह शलाका तोड़नेकी बात भी तो सुनी है।

श्रीअरविंद—वह जीवनी शक्ति है, वह धातुकी जीवनी शक्तिपर काम करती है। लेकिन धातुमें वह यांत्रिक होती है, जिसे हम 'जीवन' नामसे जानते हैं उससे इतनी भिन्न कि हम उसे 'जीवन' नहीं कह सकते।

परमाणुके अंदर रूप जीवनका सबसे अधिक दृश्यमान लक्षण है, अतः भौतिक अणुमें प्रायः यह प्रवृत्ति होती है जो चीज उसके रूप या आकारको बिगाड़े उसे वह फेंक देता है, रूपको बनाये रखनेका प्रयास रहता है।

शिष्य—अगर हम जीवनका कोई चिह्न न देखें तो यह कैसे कह सकते हैं कि इस चीजमें जीवन है?

श्रीअरविंद—जीवन या जीवन चेतना एक सापेक्ष शब्द है; निश्चय ही वह मानव जीवन अन्यथा वनस्पति जीवन जैसी कोई चीज नहीं है।

शिष्य—तब फिर यह कैसे कहा जाय कि उसमें जीवन या चेतना है?

श्रीअरविंद—तुम केवल उसका अनुभव कर सकते हो। अगर तुम वैश्व चेतनामें प्रवेश करो जो सभीमें समान रूपसे व्याप्त है तब तुम धातुकी मन्द और अल्प जीवनकी अभिव्यक्तिका अनुभव कर सकते हो। तुम स्वयं भौतिक पदार्थ और उसके इर्द-गिर्द इस जीवनका अनुभव कर सकते हो और वैश्व आत्माके साथ तादात्म्यद्वारा उसमें प्रवेश कर सकते हो। जब मेजपर चोट की जाय तो तुम उस चोटका अनुभव कर सकते हो। हाँ, तुम रूपके रूपमें उसे कह सकते हो, उसे दिखा नहीं सकते लेकिन उसके साथ एक हो सकते हो।

शिष्य—हम इस तादात्म्यका अनुभव कैसे कर सकते हैं?

श्रीअरविंद—घरेको तोड़नेके बाद जो पहली चीज तुम देखते हो वह है प्राणिक भौतिक शरीर। वह भौतिक शरीरके चारों ओर भौतिकके ही आकारसे बनता है मानों 'स्नायविक आवरण' हो। शरीरतक पहुंचनेके लिए रोगकी शक्तको इसे तोड़ना पड़ता है, अपवाद है वे आक्रमण जो सीधे भौतिक भागोंपर होते हैं।

तब तुम रोगको आते हुए देख सकते हो और स्नायविक आवरणमें यह अनुभव कर सकते हो कि रोग शरीरके किस भागमें आ रहा है या आक्रमणकी कोशिश कर रहा है क्योंकि स्नायविक आवरणके हर भागका एक शुद्ध भौतिक प्रतिरूप होता है। इस भांति पहले प्राणिक-भौतिकपर आक्रमण होता है और उसके बाद वह शरीरमें रोगका रूप ले लेता है।

स्वयं मुझे शरीरके चारों ओर ज्वरका अनुभव हो चुका है।

शिष्य—क्या हमें इन गड़बड़ोंके प्रति संवेदनशील होना चाहिए?

श्रीअरविंद—सभी प्रकारकी गड़बड़ और उत्तेजना दुर्बलताके लक्षण हैं। तुम्हें निर्विकार रहते हुए चेतनाके विकासकी ओर ध्यान देना चाहिए। कोई उत्तेजना न हो, हो केवल अनुभव और ज्ञान।

शिष्य—क्या भौतिकमें सातत्य होता है?

और एक शिष्य—एक ही प्रकारकी परिस्थितियोंमें एक ही प्रकारका वरण होता है इसलिये हम कह सकते हैं कि सारी चीज केवल यांत्रिक है, उसमें कोई 'जीवन' नहीं है।

श्रीअरविंद—उसमें जीवन तो है परंतु है बिल्कुल और तरहका। उसमें भी चेतना है

परंतु है अंतर्लीन और यांत्रिक नियमोंके आधीन कार्य करती है, उसका व्यष्टिगत रूप नहीं होता। जड़ वस्तुओंमें भौतिक शक्तियां होती हैं जो आकारको बनाये रखनेका प्रयास करती हैं। लेकिन आकारके इर्द-गिर्द कुछ जीवन शक्ति भी होती है जिसे उसके पीछे रहनेवाली वैश्व चेतना इकट्ठा कर देती है।

शायद उसे अनुभूति भी होती है परंतु उसका आलेखन नहीं होता, कोई व्यष्टिकरण न होनेके कारण विकास भी नहीं होता। और फिर व्यष्टिकरणका विचार भी तो सापेक्ष है। तुम कह सकते हो कि उसमें एक प्रकारका व्यक्तित्व होता है परंतु सापेक्ष रूपसे कहा जाय तो उसमें व्यक्तित्व नहीं होता। मनुष्य अधिक व्यष्टि भावापन्न है, परंतु साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि मनुष्य सचमुच अभीतक व्यष्टि नहीं बन पाया क्योंकि व्यष्टिभाव अभीतक अभिव्यक्त नहीं हुआ है।

(पुराणीकृत श्रीअरविंदकी 'ईर्वनिंग टाक्स'से)

सत्

सत्यके एक महान् संदेशवाहकका सामना होनेपर पाइलेटने कहा सत्य क्या है? निश्चय ही वह मजाक न कर रहा था, उसने छिछले हल्केपनके भावसे नहीं कहा था, यह बात उसने ईसामसीहसे मुंह मोड़कर एक ऐसी मोहयुक्त आत्माकी अधीरताके साथ कही थी जो उन लोगों-से ऊब गयी हो, जो ऐसे बड़े-बड़े शब्दोंका उपयोग करते हैं जो अपना अर्थ खो चुके हैं और ऐसे महान् आदर्शोंपर विश्वास करते हैं जो घटनाकी परखमें भ्रामक सिद्ध हो चुके हैं। सत्य क्या है? यह भूत है क्या जिसका इतने जमानेसे पीछा किया जा रहा है, जिसे मजबूतीसे पकड़ना इतना असंभव है, जिसके लिये इतना जवान, सुन्दर, प्रतिभाशाली, सुवक्ता और प्रशंसित व्यक्ति सूलीपर चढ़नेको तैयार हो जाय? क्या परिस्थितियों और घटनाओंने रोमन राज्यपालके आधे दुःख और आधे दयासे भरे प्रश्नको न्यायसंगत नहीं ठहराया? संदेशवाहक सूलीपर चढ़ गया और वह जिस सत्यको संदेशके रूपमें लाया था उसका क्या हुआ? स्वयं ईसाने इसे पूर्व-दृष्टिसे देख लिया था। उसे माननेवालोंने भी कभी उसे पूरी तरह नहीं समझा। सौ वर्षोंतक यह एक महिमामय मृगतृष्णा रहा जिसके लिये हजारों स्त्री-पुरुषोंने सहर्ष कारागार, यातना और मृत्युको सहा ताकि धरतीपर ईसाका राज्य आ सके और देशोंमें सुख-शांतिका राज्य हो। लेकिन जो राज्य आया वह ईसाका न था। वह था कांस्टनटाइनका, हिन्डेब्रांडका, एलेक्जेंडर-बोर्गियाका, और तेरह शताब्दियोंतक संदेश था—क्या? क्या वह धर्मान्विताका, मिथ्यात्वका, क्रूरता और दम्भका मुख्य सहारा, स्वार्थपूर्ण शक्तिका प्रबंधक और ऐसे समाजका मुख्य आधार नहीं रहा जो वह सब था जिसकी ईसाने निन्दा की थी? ऐसा मालूम होता है कि ईसाने सलीब-पर उन लोगोंके लिये प्राण दिये जो उन्हें मारनेके लिये इकट्ठे हुए थे—सद्दूसी^१, नास्तिक, बड़े पुरोहित, फरीसी, जेलट या पाखंडी, अत्याचारी और क्रूर, स्वार्थी, निर्दय रोमन सैनिक आदि। अपनी अन्तिम अवस्थामें आज, ऐसे शोचनीय जीवनके बाद, ईसाका सत्य संसारके हाल हीके प्रबुद्ध लोगोंद्वारा ऐसा मतिभ्रम या अंधविश्वास कहकर अन्ततः त्याग दिया गया है जिसने

^१सद्दूसी, जेलट और फरीसी यहूदियोंके दो कट्टर संप्रदाय थे जो ईसाके विरोधी थे।

कभी सहायक और कभी बाधक बनकर मानव बुद्धिके शैशवका मनोरंजन किया था। यह इतिहास बहुत ज्यादा सुस्पष्ट शब्दोंमें लिखा हुआ है अतः उन संदेशोंका ठीक प्ररूप नहीं हो सकता जो संसारने पाये हैं। लेकिन क्या यह किसी प्रकारसे समस्त सत्यकी नियति नहीं है? कौन-सा विचार है जो लंबी, निर्दय खोजबीनकी कसीटीपर सफल उतरा है? कौन-सा आदर्श है जो कालकी कसीटीपर सफल उतरा है? क्या पिछले पचास वर्षोंसे मानवजाति उस सबको नकारनेमें व्यस्त नहीं है जिसे पहले वह स्वीकारती थी। और अब जब कि बुद्धिवाद या जड़वादके नामसे नकार ने एक प्रकारके कामचलाऊ व्यावहारिक समर्थनका रूप धारण कर लिया है तो मनुष्यजाति फिरसे अपने नकारको नकारनेमें लगी है और इस बार संदेहके साथ अपने पुराने समर्थनोंको पुनर्व्यवस्थित कर रही है। ऐसा लगता है कि मनुष्यकी फिर फिर आनेवाली अनुभूतिमें पाइलेटका संदेहवाद कुछ कारण रखता है। क्या वास्तवमें बार-बार आनेवाले और भौतिक आभासोंके व्यावहारिक सत्य, जिनसे हम अपने जीवनपर शासन करते हैं, जैसे जन्म-मरण, क्षुधा, कामुकता, सुख-दुःख, वाणिज्य, पैसा कमाना, आराम, तकलीफ, महत्वाकांक्षा, सफलता और असफलता, इनके परे कोई सत्यके जैसी चीज है? क्या हमारे उच्चतम दर्शनोंने सभी चीजोंको माया घोषित कहीं किया है? और अगर माया भ्रांति है, चितनशील चेतनाका घोखा है तो वस्तुतः अनिर्वचनीय सत्ताको छोड़कर—जिसे हम समझ नहीं सकते—कहीं कोई सत्य नहीं हो सकता। बौद्ध धर्मने न्यायसंगत और सत्याभास रूपमें इसे शाश्वत शून्यमें एक अधिक और व्यापक संस्कार, चेतनाका एक मिथ्या संवेदन कहकर नकारा है। फिर भी मनुष्यकी रचना कुछ ऐसी है कि वह सत्यको पा सके या न पा सके, उसे उसका अनुसरण अवश्य करना पड़ता है। कोई चीज जो गुप्त रूपसे उसपर प्रभुत्व रखती है, जो उसके अस्तित्वके लिये अनिवार्य है, उसे मिथ्यात्वसे संतुष्ट होनेसे मना करती है, जिस क्षण वह दीख जाय या मान लिया जाय कि कोई चीज मिथ्या है तो वह उसे त्याग देता है और चीज टुकड़े-टुकड़े हो जाती है। अगर मनुष्य अपने त्यागपर डटा रहे तो वह चीज टिक नहीं सकती। कल वह चीज थी आज हम उसे लड़खड़ाते देख रहे हैं, कल हम उसे खोजेंगे और देखेंगे कि वह है ही नहीं, वह प्रकृतिमें वापिस चली गयी है, वह उसीमें घुल-मिल गयी है जिससे वह बनी थी। क्योंकि चेतनामें समस्त अस्तित्वके लिये श्रद्धा ही शर्त है और जिस चीजको श्रद्धासे वंचित किया जाय वह यहां या कहीं और अपना अस्तित्व खो बैठती है। 'न चैवामुत्र नो इह।' वह नहीं है, न इस जगत्में न किसी और में। इस महत्त्वपूर्ण और अनिवार्य आवश्यकतासे यह नतीजा निकालना बेजा न होगा कि सत्यका वास्तवमें अस्तित्व है और सब कुछ भ्रांति नहीं है। फिर भी यदि सत्य हमारी पकड़से बच निकलता है और हमें मोहभंग और उपहासकी अवस्थामें छोड़ जाता है तो शायद यह इस कारण हो कि न तो हमने यह स्पष्ट धारणा बनायी है कि स्वयं सत्य है क्या और न हमने उसे ग्रहण करनेके लिये उचित साधनोंको हाथमें लिया है। हम थोड़ी देरके लिये बुद्धके संस्कार जगत्को एक ओर छोड़ दें, और शंकरके मायावादको भी मस्तिष्कके सुगम कोनेमें बंद करके रख दें और ओम् तत् सत् और सर्व खल्विदं ब्रह्मके वेदान्ती आरंभसे शुरू करें। यानी तत् ही वह चीज है जिसका अस्तित्व है और हम जिस किसी चीजके बारेमें अभिज्ञ हैं वह ब्रह्म है। कम-से-कम यह संभव है कि हम इस खोजसे संस्कार और माया दोनोंके बारेमें ज्यादा अच्छी तरह समझकर लौटें और सत्यकी अवस्था और प्रकृतिकी खोजकर पाइलेटके प्रश्नका उत्तर दे सकें।

मैं आधारभूत सत्यकी, वस्तुओंके सत्यकी बात कर रहा हूं, केवल विवरणोंके तथ्य या विवरणोंकी नहीं क्योंकि उनका ज्ञान मौलिक सत्यके अन्वेषणका आधार या उसमें सहायक बनता

है। यह तथ्य कि एक विशेष प्रकारका संपर्क मुझे वेचैन बना देता है, अपने-आपमें कोई महत्त्व नहीं रखता सिवाय इसके कि वह पीड़ाके सामान्य कारणोंपर प्रकाश डालता है। संपर्क-की इस संवेदनात्मक प्रतिक्रियाके बारेमें मैं जो आधारभूत सत्य खोजता हूं वह है पीड़ाका स्वभाव, मूल और प्रयोजन। और पीड़ाका यह विधान इतना मूलभूत नहीं है जैसा उस संवेदन और संपर्ककी प्रकृति, मूल और प्रयोजनका सत्य है जिसकी एक विशेषता, उदाहरण या रूपांतरण है—पीड़ा। यह अधिक आधारभूत सत्य फिर एक विशेषता बनकर रह जाता है जब हम उसकी उस अस्तित्वकी प्रकृति, स्रोत और प्रयोजनके सत्यके साथ तुलना करते हैं जिसकी संवेदन और संपर्क विशेष परिस्थितियां हैं। इस तरह हम सबके मूलभूत सत्यपर आ पहुंचते हैं और जरासे विचारसे पता लगेगा कि अगर हम वास्तवमें और ठीक-ठीक उसे जानते हैं तो बाकी सबको तुरंत अपने-आपको प्रकट करना और अपना स्थान ले लेना चाहिए और शायद वे ऐसा करेंगे, यस्मिन् विज्ञाते सर्वं विज्ञातम्। तत्को जान लिया जाय, तो सब कुछ जान लिया जाता है। हमारे पूर्वजोंने ज्ञानके आधारभूत ऐक्यके इस सत्यको देखा था और वे पहले सत्को जान लेना चाहते थे। उन्हें विश्वास था कि सत् जान लेनेसे सत्के विभिन्न तत्व, विधान, पहलू और व्यौरे ज्यादा आसानीसे अपने रहस्य प्रकट कर देंगे। आधुनिक लोग एक और विचारका अनुसरण करते हैं और उसमें एक अपना सत्य है। उनका ख्याल है कि चूंकि सत्ता एक है इसलिए व्यौरोंका ज्ञान निश्चय ही आधारभूत ऐक्यके ज्ञानकी ओर ले जायेगा अतः वे तलीसे शुरू करके ऊपरकी ओर चढ़ते हैं। यह धीमा है लेकिन हम कल्पना कर सकते हैं कि वह प्रगतिका ज्यादा सुरक्षित तरीका है। दीवारकी दरारसे एक सुन्दर-सी कलीको देखकर टेनिसन पुकार उठता है “हे दरारोंमें खिले छोटेसे फूल, अगर मैं यह जान पाता कि तू क्या है तो मैं यह जान लेता कि भगवान् क्या है और मनुष्य क्या है।” इन पंक्तियोंमें विचार तो अच्छा है पर कविता घटिया है। निस्संदेह प्रश्न यह है कि क्या हम भगवान्को जाने बिना सचमुच फूलको जान सकते हैं—केवल नामरूप या नामरूपके समस्त व्यौरे नहीं—उसको जान सकते हैं? हम विज्ञानकी सहायतासे रूपको जान सकते हैं और उसका विश्लेषण कर सकते हैं और नामको दर्शनकी सहायतासे। परंतु स्वरूप? ऐसा लगता है कि ज्ञानकी उस परिपूर्तिके लिए किसी तीसरे यंत्रकी आवश्यकता है। तर्कबुद्धि और इन्द्रियां, भले ही उन्हें दूरदर्शी और सूक्ष्मदर्शक यंत्रोंकी सहायता प्राप्त हो, हमें उस चीजको नहीं दिखा सकते—न सदृशे तिष्ठति रूपमस्य—तत्का रूप नेत्रोंकी पहुंचसे बाहर है। मन और वाणीको हमें वहांतक ले जानेकी अनुमति नहीं है—न वाक् गच्छति न मनः। शंकरका तत्त्वज्ञानात्मक तर्क भी उस अंतिम विजयतक नहीं पहुंच पाता—नेषा तर्कणमतिरापनेया, मति या विचारमें यह उपलब्धि तर्कद्वारा नहीं होती। ये सब विभिन्न प्रकारकी अक्षमताएं एक ही अनिवार्य कारणसे हैं, ये इसलिए हैं कि सत्, सत्ता या अस्तित्वका सत्य, ब्रह्म वस्तुओंकी यथार्थता जो उन्हें भरे रहती है और उनके विचार और रूपको सहारा देती है, वह विचार और रूपके पहचाने और विश्लेषण किये जा सकनेवाले तत्वोंसे परे है—अणोरणीयांसम् अतर्क्यम् अनुप्रमाणात्। वह तात्त्विक सूक्ष्मतासे भी अधिक सूक्ष्म है इसलिए इसके बारेमें ऐसी तर्कणाद्वारा परिणाम नहीं निकाले जा सकते, अनुमान नहीं किया जा सकता, खोजा नहीं जा सकता जो नाम और रूपके तत्वोंसे आगे बढ़ती है और उसीको मापदंड मानती है। यह एक ऐसा सत्य है जिसे बड़े-से-बड़े दार्शनिक, वे चाहे वेदांती हों या अवैदांती, भूल जानेके लिए प्रवृत्त होते हैं। लेकिन श्रुति हमेशा इसपर जोर देती है।

फिर भी मानव जाति हजारों वर्षोंसे आग्रहपूर्वक और आवेगके साथ सत्यको ठीक उन्हीं

उपायोंसे खोजनेकी कोशिश कर रही है जिनके लिए श्रुतिने मना किया है। मानव चेतनाके लिए ऐसी भूल स्वाभाविक और अनिवार्य है। मनुष्यके अंदर देवदूत वह है जो प्रकाश और आनंदमेंसे इस अंधेरे, इस द्वाभा और अर्द्धप्रकाशमें, भौतिकके अंधकार, प्राणिक चेतनाकी द्वाभा, मनकी टूटी-फूटी आधी रोशनियोंमें उतरा है और उसकी प्रकृतिका मुख्य आवेग है उस प्रकाशके लिए पूरे आवेगके साथ लालायित रहना जिससे वह गिरा है। वह उसे तुरंत पानेमें असमर्थ है, उसमें अपने-आपको पूर्ण करनेकी धीरता बहुत कम है, अतः यह स्वाभाविक है कि अपनी उत्सुकतामें वह अन्य यंत्रोंको पकड़े जो किसी सीमित उपयोगिताके लिए हैं और अपने परम लक्ष्यको सिद्ध करनेके लिए उनपर उनकी सामर्थ्यसे अधिक दबाव डाले—वह लक्ष्य सदा एक होता है, पूर्ण प्रकाशको फिरसे पा लेना और इस पुनर्लाभद्वारा पूर्ण प्रकाशमें निवास करनेवाले पूर्ण और अमोघ आनंदको पाना। ज्ञानके भागोंके इस दुरुपयोगके परिणामस्वरूप तीन प्रकारके अवैध मानव क्रिया-कलाप शुरू हुए, दर्शन, धर्म और विज्ञानने अलग-अलग अपने-आपको इनका दोषी बनाया, वे दोष हैं—संप्रदायोंके विवादास्पद तत्त्वज्ञानात्मक दर्शन, धर्मके रूढ़ सिद्धांत और प्रयोगशालाओंका वैज्ञानिक दर्शन। दर्शन, धर्म और विज्ञान, हर एकका अपना-अपना निश्चित क्षेत्र और प्रदेश है। इनमेंसे हर एक मनुष्यकी उसकी महान् तन्मयता अर्थात् सत्के बारेमें, ब्रह्मके बारेमें वह जो कुछ जान सकता है उसे जाननेके प्रयासमें उसकी सहायता कर सकता है। दर्शनका काम है सत्की शाश्वत प्रणालियोंको न्यायसंगत रूपसे व्यवस्थित करना, धर्मका काम है सत्के व्यक्तिगत संबंधोंको प्राणिक और व्यावहारिक रूपमें व्यवस्थित करना और विज्ञानका काम है सत्के विशेष रूपों और गतियोंको सावधानीके साथ विश्लेषणात्मक ढंगसे व्यवस्थित करना। वास्तवमें वे आवश्यक हैं और उन्हें एक-दूसरेके लिए आवश्यक बनना चाहिए। जिन्होंने उचित सीमाओं और सीमाचिह्नोंको पहचान लिया है वे अपने सम्मिलित क्रिया-कलापसे मनुष्यको अभीतक प्राप्त पूर्णतातक पहुंचानेमें मदद दे पाते, लेकिन एक प्रकारकी बौद्धिक भूमिलिप्साके कारण वे हमेशा एक-दूसरेके देशपर आक्रमण करते रहे हैं, उन्होंने एक दूसरेकी स्थितिको नकारा है और इस कारण मानव युगोंसे एक दूसरेके साथ निरर्थक युद्धमें लगे रहे हैं। और अंततः तीनों ही एक दूसरेकी भूमिपर गैरकानूनी कब्जा करके एक-एक ऐसे ज्ञानको हथियानेका आग्रह करते हैं जिसके लिए वह तीनों समान रूपसे अयोग्य हैं। वह ज्ञान है जगत्का तात्त्विक स्वरूप, सत्की गुप्त यथार्थता, ब्रह्मका उत्तम रहस्य। यह भ्रांति, यह अस्तव्यस्तता, यह विभिन्न प्रकृतियों और कार्योंका अवैध मिश्रण, कलिकालका अभिशाप है जिससे अगर सब नहीं तो हमारी वे अधिकतर कठिनाइयां पैदा होती हैं जिनका सामना हमें, जातिके रूपमें उस दुःखदेय और अंधकारसे बचकर आनंद और प्रकाशमें जाते हुए करना होता है। यह कलिकी अस्तव्यस्तताका भाग और बहुत बड़ा भाग है।

यद्यपि बौद्ध धर्मकी अस्तव्यस्तताके बाद उसे सफलता तो नहीं मिली फिर भी भारतने हमेशा इन तीनोंको अपने-अपने उचित श्रम क्षेत्रमें रखनेकी नहीं—क्योंकि यह तो बढ़ते हुए अज्ञानके कारण असंभव हो गया था—तो कम-से-कम हमेशा उनसे कुछ सामंजस्य रखने और अगर वह बिगड़ जाय तो फिरसे स्थापित करनेकी कोशिश की है। गीता इस प्रयासका सबसे अधिक पूर्ण उदाहरण है। अस्तव्यस्तताकी अपनी बेलगाम शक्तिके साथ काम करते हुए देखनेके लिए हमें यूरोपीय महाद्वीपके बौद्धिक इतिहासतक जाना होगा और इसी तरह उपचारक शक्तियोंके सुधारको रोगसे अलग करके ही हम अवलोकन और निदान कर सकते और बादमें उपचार जान सकते हैं। ठीक तरह देखा जाय तो इस इतिहासमें दो क्रान्तिक

काल आये हैं, एक ईसाइयतसे पहलेका ग्रीको-रोमन दार्शनिक प्रकाशका युग और दूसरा आधुनिक वैज्ञानिक प्रकाशका युग जो अभीतक समाप्त नहीं हुआ है। पहले युगमें हम धर्मके अपहरणके विरुद्ध दर्शनका विद्रोह देखते हैं (विज्ञान उसके रक्षक आलिगनमें छिपा था)। हम देखते हैं कि छुटकारा पा कर दर्शन अपनी बारीमें, धर्मको नकारता है और उसके पवित्र विशेषाधिकारको हथिया लेता है। आधुनिक युगमें हम देखते हैं कि इस बार विज्ञान वयस्क होकर बाहर आता है और धर्मके विरुद्ध विद्रोहमें दर्शनको अपने पीछे रखकर, पहले अपने-आपको मुक्त करता है फिर धर्मको नकारता है और उसके विशेषाधिकारोंको हथिया लेता है। फिर अंतिम विजयकी प्रक्रियामें उसने, मुड़कर अपने गौरवपूर्ण सखाको अस्वीकार करके प्रहार करके गिरा दिया और उसके प्राचीन राज्यको भी हड़प लिया। अगर विज्ञानने धर्मको नकारा और तिरस्कारा है तो साथ-ही-साथ उसने तत्त्व मीमांसाको भी नकारा और तिरस्कारा है। उसने घोषणा की है कि भगवान् एक बर्बर पुराण कथा हैं, स्वप्नों, आतंकों और लाल-साओंकी कहानी हैं और उसने अनंतके साथ हमारे सायुज्यके अधिकारको अस्वीकार किया है। साथ ही उसने तत्त्वमीमांसाको कल्पना-शक्तिका विपथगमन, न्यायशास्त्रका मिथ्या विस्तार कहा है और किसी भी तत्त्वमीमांसक सत्ता या किसी भी चीजको माननेके हमारे अधिकारको नकारा है जिसका मूल्यांकन या अनुमान परीक्षणनली, धुरी, दूरबीन और खुदबीनसे न किया जा सके। लेकिन स्वयं उसने भी जीवनके तात्त्विक स्वभाव और उसकी साधारण रीतियों, मन, प्राण, शरीर और आत्माके परस्पर संबंधोंके बारेमें सिद्धांत बनानेमें संकोच नहीं किया। हमारे अभीके प्रयोजनके लिए इतना काफी है कि इन दोनों भयंकर अपहरणोंके युगोंके परिणामोंको देखें। दर्शनके अपहरणोंका नतीजा यह हुआ कि मानव जातिने अनंत सचाईके साथ, छुटकारेकी भावपूर्ण अनुभूतिके साथ अपने-आपको यहूदी धर्मके एक अंधेरे संप्रदायमें झोंक दिया और एक असेंके लिए, जिसे देखकर आश्चर्य होता है, हर प्रकारके धार्मिक बेतुकेपन यहांतक कि अत्यधिक विकराल चीजोंको भी स्वीकार कर लिया, ताकि उसे फिर एक बार पृथ्वीसे बड़ी किसी चीजको मानने और भगवान्के साथ नाता जोड़ने दिया जाय। प्राचीन दार्शनिक भावको इस्कन्दरियाकी रक्तरंजित गलियोंमें हिपेटिस^१के साथ टुकड़े-टुकड़े कर दिया गया। धार्मिकताने उसका स्थान हड़प लिया और अंधे तथा मूर्ख बनकर तत्त्वान्तरण और एकत्ववाद और न जाने कौन-कौनसे व्यर्थके रहस्योंपर बहस की। जबतक दर्शनको एक स्वतंत्र अस्तित्व रखने दिया गया, वह इस बातके लिए बाधित था कि अपना नहीं विज्ञानका कार्य करे। हम देखते हैं कि संप्रदायके लोग तर्क और शब्दोंकी बाड़द्वारा कार्य-कारण संबंधसे ऐसे प्रश्नोंकी व्याख्या करते हैं जिनका उचित निश्चय केवल अवलोकन और विश्लेषणद्वारा हो सकता है। क्योंकि धर्मशास्त्र या स्वयं मध्यकालीन धर्मने ज्ञानके इस क्षेत्रकी परवाह नहीं की। उसे वैज्ञानिक सत्योंकी कोई आवश्यकता न थी, जैसे जैकोबिन^२ गणतंत्रमें रासायनिककी जरूरत न थी। वस्तुतः जब कभी विज्ञानकी उपस्थितिने उसका ध्यान खींचा, उसे फांसी लगा दी गयी परंतु सभी अन्याय—और इसका अर्थ है तलीमें सत्य और ऋतुका निषेध—अपना दंड लेकर आते हैं या जैसे धर्म कहेगा—दैव दुर्विपाक और भगवान्का प्रतिशोध लाते हैं। मुक्त विज्ञान, अपने श्रमसाध्य उभारमें दानवोंकी शक्तिसे आज अपने पुराने

^१प्राचीन मिस्र देशकी एक प्रसिद्ध दार्शनिक और गणितज्ञ महिला। मतभेदके कारण धार्मिक लोगोंने इसकी हत्या कर डाली थी।

^२एक फ्रेंच राजनीतिक दल।

अत्याचारी धर्म और दर्शनसे बदला ले रहा है। वह उनके मंदिर तोड़ता है, उनके देवताओं और पैगम्बरोंका तिरस्कार करता है और उन्हें जीवित रहनेके अधिकारसे भी वंचित कर देना चाहता है। ग्रीको रोमन प्रदीप्तिका वह परिणाम था। वैज्ञानिक प्रदीप्तिका, आधुनिक ज्ञानोदयका, जड़वादीकी आग्नेय विजय और तीव्र बौद्धिक कट्टरताका परिणाम क्या होगा? इसकी अंतिम समाप्तिको देख सकनेके लिए अभी समय लगेगा, लेकिन उसकी अरचित रेखाएं दिखलायी दे रही हैं, धुंधली-सी राशियां उठ रही हैं। जैसे मध्यकालमें विज्ञान धुंधले ढंगसे बलमें बढ़ रहा था उसी तरह रहस्यवाद धुंधले तौरपर बलमें विकसित हो रहा है। हम पूर्वसे दानवाकार रहस्यमय आकारोंको डग भरते, अपने लिये किले बनाते, प्रस्थान बिन्दु बनाते प्रेतात्मवाद, मानसिक विज्ञान, अतीन्द्रिय शोध कार्य, नूतन हिन्दू, नूतन बौद्ध, नूतन इस्लाम, नूतन ईसाइयतके धुंधले आकारोंको अर्द्ध बौद्धिकमें फैलते बल्कि बौद्धिकको भी जीतते हुए देखते हैं। आइसिसके पुजारी, प्रज्ञानवाद (ग्नोस्टिसिज्म)के निपुण और प्रबुद्ध लोग जो सन्त पाल और पोपके हस्तक्षेपके कारण अपनी विजयसे वंचित रह गये थे वे इस वादके युगमें पैदा होकर अपनी तृप्तिकी मांग करते हैं। जड़वादके कुछ बाहरी दुर्ग अभीसे ढह रहे हैं, आक्रमण और आप्रही होता जा रहा है, बचाव ज्यादा अनिश्चित हो रहा है, अब उनका गर्वपूर्ण आत्म-विश्वास कम हो गया है पर वे कम क्रुद्ध, तिरस्कार भरे, कटु और असहिष्णु नहीं हैं, ऐसे आक्रमणकारियोंके अनुयायी बढ़ रहे हैं, उनके गढ़ फैल रहे हैं। अगर कोई उच्चतर और विशालतर सत्य हस्तक्षेप न करे तो ऐसा लगता है कि नयेके स्थानपर पुरानी अस्तव्यस्तता नये रूपमें स्थान ले लेगी। शायद कुछ शताब्दियोंमें कोई गुह्य समाज या उच्चतर माध्यमोंका प्रेतात्मावादी केंद्र हमारे लिए निर्धारित करेगा कि हम इहलोक और परलोकके बारेमें क्या सोचें, हमें देवताओंके साथ कैसे संबंध रखनेकी इजाजत होगी। हम किन प्रभावों या दीक्षितोंकी पूजा करेंगे। कौन जानता है? स्मिथफील्डकी ज्वालाएं विधर्मियोंको नरकसे बचानेके लिए फिरसे धधक उठें।

ये केवल झक्की, ऊटपटांग अनुमान नहीं हैं, मानवजातिके इतिहास और बाहरसे गणनातीत और सनकी दीखनेवाली इस चीजसे अर्थात् मानव प्रकृतिकी विशेष क्षमताओंसे हमें सावधान हो जाना चाहिए कि इन बातोंकी संभावना है या यह कि मुद्रणालयों और विज्ञानकी स्पष्टताओंके बावजूद ये चीजें एकदम असंभव नहीं हैं। निःसंदेह इतने विद्यालयों और अकादमियों और शिक्षाके इतने प्रसारके होते हुए बोध फिरसे धीमा न होगा और अंतमें देवों और भूतोंकी पूजामें गंवारोंको छोड़कर किसीको रस न होगा। हमें इन चीजोंको संभावनाके रूपमें स्वीकार करना चाहिए और यह जांच करनी चाहिए कि ये क्यों संभव हैं। यह प्रतिक्रिया अनिवार्य है क्योंकि दर्शन अत्यधिक उच्च और प्रकाशमय होते हुए भी ऐकांतिक और संकीर्ण होने लगता है और विज्ञान अत्यधिक धीर, यथार्थ और सूक्ष्म होते हुए भी सीमित, शुष्क और चुंघियाने लगता है। दोनों अपने उच्च तरीकेसे या अपने स्पष्ट, शुष्क तरीकेसे कट्टर और असहिष्णु हो सकते हैं जैसे धर्म अपने तरीकेसे है जो उच्च नहीं तीव्र है, स्पष्ट नहीं उत्साहपूर्ण है, और वे मानसके ऐसे स्तरपर रहते हैं जिसपर जनसाधारण अपने-आपको पूरे चैन और आराममें नहीं पाते, जहां वे संघर्षके बिना नहीं जी सकते और सांस लेनेमें कठिनाईका अनुभव करते हैं। ये दोनों मनुष्यसे इस चीजकी मांग करते हैं कि वह अपने हृदय और अपनी कल्पनाको बुद्धिके अर्पण करे, अपनी पूर्ण मानव प्रकृतिको अस्वीकार करे और ठंडे और शुष्क रूपमें जिये।

लन्दनके उत्तरमें एक स्थान जहां बहुतोंको फांसी दी गयी थी।

यह तो ऐसा ही हुआ जैसे तुम किसीसे कहो कि वह सांस लिये बिना जिये। हमें जिस मानसिक-जगत्में रहनेके लिए कहा जाता है वह हमारे लिए ऐसा है मानों उस समयका मानव जीवन हो जब सूर्यकी गरमी कम हो जाय, धरती ठंडी पड़ती जाय और वातावरण इतना विरलित हो जाय कि उसमें आरामसे रहना मुश्किल हो। यह कहनेका कोई लाभ नहीं कि मनुष्यको ऐसे वातावरणमें रहना चाहिए, कि इससे उसका मानसिक स्वास्थ्य और बल सुधरेगा। शायद उसे यह करना चाहिए, यद्यपि मेरा ख्याल ऐसा नहीं है, लेकिन वह ऐसा कर नहीं सकता। या यूं कहें व्यक्ति, ऐसा कर सकता है, क्योंकि व्यक्तिगत रूपसे मनुष्यके लिए सब कुछ संभव है लेकिन मनुष्यजाति यह नहीं कर सकती। इस मांगकी कभी अनुमति नहीं दी जा सकती क्योंकि यह प्रकृतिका निषेध, महान् जननीका तिरस्कार, उनके शाश्वत तथ्योंके स्थानपर तर्ककी नीरसताको रखना है। यह वस्तुओंके सत्यम्, ऋतम्को अस्वीकार करना है और अगर इसपर डटा जाय तो यह अपना प्रतिशोध लायेगा। अगर दर्शन और विज्ञान अपने-आपको तथा जगत्को हानि पहुंचाये बिना मानवजातिकी सहायता करना चाहें तो उन्हें यह स्वीकार करना चाहिए कि मनुष्य एक जटिल सत्ता है और उसकी प्रकृतिकी मांग है कि उसकी जटिलताका प्रत्येक भाग अपनी क्रियाशीलताके लिए अपना क्षेत्र पाये और उसकी हर एक तात्त्विक अभीप्सा संतुष्ट हो। उसकी प्रकृति और नियति है आप्तकाम होना, यानी अपनी कामनाओंमें व्यक्ति और जातिमें संतुष्ट होना, यद्यपि यह होगा सदा सत्यम् और ऋतम्के अनुकूल जो सुखम् और सुन्दरम् भी है, अनियमित रूपसे भूल भ्रांति और सनकोंके अनुसार नहीं। बौद्धधर्मके संतुलन बिगाड़ने और दूसरे विपथोंके आनेसे पहले प्राचीन हिंदू धर्मका यह एक महान् गुण था कि उसने कम-से-कम सिद्धांत रूपमें इस आधारभूत सत्यको स्वीकारा, भगवान् जिसपर आग्रह करते हैं उसे कभी अस्वीकार नहीं किया बल्कि पूर्ण या अपूर्ण रूपसे हर चीजको अपने उचित स्थानपर रखने और एक स्वाभाविक सामंजस्य पैदा करनेके लिए प्रयास किया।

—श्रीअरविंद

ज्ञानके विषयमें कुछ प्रश्न

क्या योगी चेतनाकी किसी ऐसी अवस्थाको प्राप्त हो सकता है जिसमें पहुंचकर वह सब कुछ जान सके, समस्त प्रश्नोंका, यहांतक कि विज्ञानकी कठिन समस्याओंका, जैसा कि सापेक्षता-वादकी परिकल्पनाके विषयमें भी, उत्तर दे सके?

सिद्धांततः योगीके लिये सब कुछ जान लेना असंभव नहीं है, पर सब कुछ योगीपर निर्भर है।

ज्ञान-ज्ञानमें भेद होता है। योगी मनके तरीकेसे नहीं जानता। योगी यदि सब कुछ जानता है तो इस अर्थमें नहीं कि वह हर एक संभावित जानकारीमें प्रवेश रखता है, या उसके मनके अंदर विश्वके समस्त तथ्य भरे पड़े हैं, या उसकी चेतना कोई अद्भुत विश्वकोष है। वह वस्तुओं, व्यक्तियों और शक्तियोंके साथ धारणात्मक रूपसे या सक्रिय रूपसे तादात्म्य स्थापित करनेकी क्षमताके कारण जान सकता है। अथवा इसलिये जान सकता है कि

वह चेतनाकी एक ऐसी भूमिकामें रहता या एक ऐसी चेतनाके संस्पर्शमें होता है जिसमें सत्य और ज्ञान स्थित हैं।

यदि तुम सत्य चेतनामें हो तो तुम्हें मिलनेवाला ज्ञान भी सत्यका ज्ञान ही होगा। इस अवस्थामें भी ज्ञेयके साथ अपनेको एक करके ही तुम उसके संबंधमें प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त कर सकते हो। यदि तुम्हारे सामने कोई समस्या उपस्थित की जाय, यदि तुमसे पूछा जाय कि अमुक अवसर-विशेषपर क्या करना चाहिये, तो तुम उस विषयपर पर्याप्त ध्यान देकर और एकाग्र होकर आवश्यक ज्ञान और सच्चे उत्तरको अनायास प्राप्त कर सकते हो। इस ज्ञानको तुम किसी परिकल्पनाका यत्नपूर्वक उपयोग करके अथवा मनोमय प्रक्रियाद्वारा कार्यान्वित करके प्राप्त नहीं करते। इन पद्धतियोंकी आवश्यकता तो वैज्ञानिक मनको अपने निर्णयोंतक पहुंचनेके लिये होती है। परंतु योगीका ज्ञान सीधा और तत्क्षण होता है; वह निगमनात्मक नहीं होता। किसी इंजीनियरको यदि एक मेहराब बनानी हो तो वह उसके ठीक-ठीक स्थानको, उसकी गोलाईकी रेखा और उसके पोले स्थानके कदको नाप-जोखकर ठीक करता है, इस विषयका निर्णय वह अपनी भौतिक विद्याकी सामग्री इकट्ठा करके करता है। परंतु योगीको इन चीजोंकी जरूरत नहीं होती; वह देखता है, चीजकी अंतर्दृष्टि पाता है और वह देखता है कि इस चीजको इस प्रकार करना होगा, केवल इसी प्रकार और किसी प्रकार नहीं; और यह देखना ही उसका ज्ञान होता है।

यद्यपि सामान्यतया तथा किसी अर्थमें यह ठीक है कि योगी अपनी दृष्टि और चेतनाके क्षेत्रसे सभी बातोंको जान सकता और सभी प्रश्नोंका उत्तर दे सकता है, फिर भी इसका यह मतलब नहीं कि ऐसा कोई प्रश्न नहीं जिसका योगी उत्तर न दे सके या न देना चाहे। जिस योगीको प्रत्यक्ष ज्ञान, वस्तुओंके सच्चे सत्यका ज्ञान प्राप्त है वह उन प्रश्नोंका, जो पूरी तरह मानव मनकी रचनाओंकी कोटिके होते हैं, उत्तर देनेकी परवाह नहीं करेगा, शायद उसे ऐसे प्रश्नोंका उत्तर देनेमें कठिनाई भी हो। यह हो सकता है कि वह केवल वस्तुओंके मिथ्या और बाह्य स्वरूपसे संबंध रखनेवाली तुम्हारी समस्याओं और कठिनाइयोंका हल करना न चाहे या न कर सके। उसके ज्ञानकी क्रिया मनमें नहीं होती। यदि तुम उसके सामने उपर्युक्त प्रकारका कोई फूहड़ मानसिक प्रश्न करो तो शायद वह उत्तर ही न दे। यह जो आम धारणा है कि जिस प्रकार ऊंचे दर्जेके किसी स्कूल-मास्टरसे प्रश्न किया जाता है उसी प्रकार किसी योगीसे भी तुम कोई अज्ञानयुक्त प्रश्न कर सकते हो अथवा भूत, वर्तमान और भविष्य कालके किसी भी समाचारको पूछ सकते हो और वह उत्तर देनेके लिये बाध्य है, यह एक मूर्खतापूर्ण विचार है। यह उतना बेढंगा है जितना किसी आध्यात्मिक पुरुषसे यह आशा रखना कि वह किन्हीं ऐसे असाधारण चमत्कारोंको दिखाये जो साधारण गंवारू बहिर्मुख मनको संतुष्टि देकर आश्चर्यचकित कर दे।

और फिर "योगी" शब्द बहुत ही अस्पष्ट और व्यापक है। योगी बहुत तरहके होते हैं, आध्यात्मिक अथवा गुह्य तत्त्वोंकी साधनाकी अनेक धाराएं और दिशाएं हैं और उनकी सिद्धियां भी अनेक स्तरोंकी होती हैं। कुछ योगी ऐसे हैं जिनकी शक्तियां मानसिक भूमिकासे ऊपरकी नहीं होतीं, दूसरे ऐसे हैं जो इस भूमिकासे ऊपर उठ गये हैं। सब कुछ उनकी साधनाकी भूमिका या प्रकृतिपर, जिस ऊंचाईतक वे पहुंचे हैं उसपर तथा जिस चेतनाका स्पर्श उन्हें मिला है अथवा जिस चेतनामें उन्होंने प्रवेश किया है उसपर निर्भर है।

क्या वैज्ञानिक भी कभी-कभी मनोमय भूमिकाके परे नहीं जाते? कहा जाता है कि आइन्स-

टाइनने सापेक्षतावादकी परिकल्पनाकी किसी तर्ककी प्रक्रियाके द्वारा नहीं, बल्कि सद्यः प्रेरणाके रूपमें प्राप्त किया था। क्या इस प्रेरणाका अतिमानससे कोई संबंध था ?

जिस वैज्ञानिकको कोई नया सत्य प्रकट करनेवाली प्रेरणा मिलती है वह अंतर्भासित मनकी भूमिकासे आती है। इस तरहका ज्ञान तब मिलता है जब उसका उस उच्चतर मनोमय भूमिकाके साथ, जो कि और भी अधिक ऊपरकी ज्योतिद्वारा प्रकाशमान होती है, सीधा संबंध हो जाता है और वहांसे प्रेरणा मिलने लगती है। परंतु इस सबसे 'अतिमानस'की क्रियाका कोई संबंध नहीं है और यह उच्चतर मनोमय भूमिका अतिमानसिक भूमिकासे कोसों दूर है। औसत अवस्थासे ऊपर उठते ही मनुष्य आसानीसे यह विश्वास करने लग जाते हैं कि वे पूर्ण भागवत क्षेत्रोंमें पहुंच गये हैं। साधारण मानव मन और 'अतिमानस'के बीच अनेक अवस्थाएं, अनेक स्तर और अनेक भूमिकाएं हैं। यदि कोई साधारण कोटिका आदमी इन मध्यवर्ती भूमिकाओंमेंसे किसी एकके भी सीधे संपर्कमें आ जाय तो वह चौंधियाकर अंधा बन जायगा, वह विशालताके भानके बोझके नीचे कुचल-सा जायगा अथवा अपना संतुलन गंवा देगा; फिर भी वह 'अतिमानस'से दूर होगा।

योगी सभी बातोंको जान सकता और सभी प्रश्नोंका उत्तर दे सकता है, इस साधारण धारणाके पीछे असली तथ्य यह है कि मनके अंदर एक ऐसा स्तर है जहां समस्त वस्तुओंकी स्मृति संग्रहीत होती और सदा विद्यमान रहती है। पार्थिव जीवनमें होनेवाली समस्त मानसिक क्रियाएं इस स्तरमें स्मृतिगत और अंकित की जाती हैं। जिनमें वहांतक पहुंचनेकी क्षमता है और जो वहांतक जानेका कष्ट उठाना चाहते हैं वे वहां किसी भी चीजको पढ़ और जान सकते हैं। परंतु उस क्षेत्रको अतिमानसिक भूमिका समझ लेनेकी भूल नहीं करनी चाहिये। लेकिन वहांतक पहुंचनेके लिये भी, तुम्हें अपने स्थूल या भौतिक मनको निश्चल और नीरव कर सकना चाहिये; तुम्हें अपने समस्त संवेदनोंको एक किनारे रखकर अपनी साधारण मनोमय क्रियाओंको, फिर चाहे वे कैसी ही क्यों न हों, बन्द कर सकना चाहिये; तुम्हें अपने प्राणके दायरेसे बाहर निकलना और अपने शरीरकी गुलामीसे मुक्त होना चाहिये। तभी तुम उस क्षेत्रमें प्रवेश कर सकोगे और वहां जो कुछ है उसे देख सकोगे। पर यदि तुम इस प्रयासमें पर्याप्त दिलचस्पी रखते हो, तो तुम वहां पहुंच सकते हो और पृथ्वीकी स्मृतिमें जो कुछ लिखा हुआ है उसे बांच सकते हो।

इस प्रकार, यदि तुम निश्चल-नीरवतामें गहरे उतर जाओ तो चेतनाकी एक ऐसी भूमिकामें पहुंच सकते हो जहां तुम्हारे लिये अपने सभी प्रश्नोंके उत्तर पा लेना असंभव नहीं रहता। और यदि कोई व्यक्ति ऐसा है जो अतिमानसके पूर्ण सत्यके प्रति सचेतन रूपसे खुला हो, उसके साथ सतत संपर्कमें हो, तो वह निश्चय ही ऐसे किसी भी सवालका उत्तर दे सकता है जो अतिमानसिक प्रकाशसे उत्तर पानेके लायक हो। प्रश्न वस्तुओंके पीछे जो सत्य और सद्बस्तु है उससे संबंध रखनेवाला होना चाहिये। बहुत-से प्रश्न और विवादग्रस्त समस्याएं मनके द्वारा बुने गये कल्पनाओंके वाग्जाल होते हैं और वे वस्तुओंके मिथ्या-पार्श्वसे ही संबंध रखते हैं। उनका वास्तविक ज्ञानसे संबंध नहीं होता, वे ज्ञानकी विकृतिमात्र हैं, उनका ताना-बाना ही अज्ञानका होता है। अतिमानसिक ज्ञान मनके अज्ञानद्वारा उपस्थित की गयी समस्याओंका उत्तर दे अवश्य सकता है; पर यह उसका अपना उत्तर होगा और बहुत संभव है कि वह मनकी भूमिकासे प्रश्न करनेवालोंको जरा भी संतुष्ट न कर सके, हो सकता है कि वह उनकी समझमें न आये। तुम्हें ऐसी आशा नहीं करनी चाहिये कि अतिमानस भी मनकी

तरह काम करे और न यह मांग करनी चाहिये कि सत्य-चेतनामें रहनेवाले ज्ञानको अज्ञानमें रहनेवाले अर्द्धज्ञानके साथ टांका जा सके। मनकी योजना एक चीज है, लेकिन 'अतिमानस' बिल्कुल अलग चीज है और यदि वह अपने-आपको मनकी मांगके अनुसार ढाल ले तो वह अतिमानस न रहेगा। ये दोनों एकदम भिन्न हैं और एक साथ नहीं रखे जा सकते।

चेतना जब अतिमानसिक आनंदको प्राप्त कर लेती है तो क्या वह मनके व्यापारमें विल-चस्पी लेना बन्द कर देती है?

मानसिक व्यापारोंमें अतिमानस उसी प्रकारकी दिलचस्पी नहीं लेता जैसी कि मन लेता है। वह विश्वकी समस्त गतियोंमें ही अपने ढंगसे दिलचस्पी लेता है, किंतु एक और ही दृष्टि बिदुसे, एक और ही दृष्टिसे। उसकी दृष्टिके सम्मुख जगत्का रूप और ही प्रकारका दीखने लगता है, यहां दृष्टिकोण ही पलट जाता है और सभी चीजें, जैसी मनसे नजर आया करती हैं उससे भिन्न प्रकारकी, बल्कि बहुधा उससे विपरीत, नजर आती हैं। वस्तुओंका अर्थ बदल जाता है; उनका पहलू उनकी हलचल और प्रक्रिया, उनके विषयका सभी कुछ दूसरी ही आंखोंसे देखा जाता है। यहां हर चीजके पीछे अतिमानस रहता है; मनकी गतियोंमें, उसी प्रकार प्राण और स्थूल-भौतिक गतियोंमें, विश्वकी समस्त लीलामें अतिमानस बहुत गहरी दिलचस्पी रखता है, किंतु उसकी दिलचस्पी और ही प्रकारकी होती है। यह लगभग वैसा ही भेद है जैसा कठपुतलीके तमाशोंमें एक तो उस आदमीका रस होता है जिसके हाथमें धागे होते हैं, जो जानता है कि कठपुतलियोंको क्या करना है, उस संकल्पको जानता है जो उन्हें नचा रहा है और यह भी जानता है कि वे उसीके नचाये नाचती हैं; दूसरा उस आदमीका रस है जो खेल देखता है, लेकिन बस क्षण-क्षण होनेवाली घटनाओंको ही देख पाता है, उनके अतिरिक्त कुछ नहीं जानता। जो व्यक्ति खेलका दर्शक होता है और उसके रहस्योंसे अनजान होता है, उसकी खेलकी घटनाओंके प्रति दिलचस्पी अधिक तीव्र उत्सुकता-पूर्ण और आवेशमय होती है और वह उसकी अभीतक अज्ञात नाटकीय घटनाओंको उत्तेजना-पूर्ण कौतूहलके साथ देखता है; किंतु दूसरा, जिसके हाथमें खेलकी बागडोर है और जो तमाशोका संचालक है, स्थिर और शांत रहता है। दिलचस्पीकी एक ऐसी प्रखरता या प्रगाढ़ता होती है जो अज्ञानसे ही आती है और वह भ्रमके साथ जुड़ी हुई होती है और जब तुम अज्ञानसे बाहर निकल आते हो तब वह भी जाती रहती है। वस्तुओंके प्रति मानव प्राणियोंकी जो दिलचस्पी होती है उसकी स्थापना भ्रमपर होती है, यदि भ्रम हटा दिया जाय तो फिर इस लीलामें उन्हें कोई दिलचस्पी रहेगी ही नहीं; उन्हें वह रूखी और नीरस लगेगी। यही कारण है कि यह सब अज्ञान और भ्रम इतने दिनोंतक टिके रह सके हैं; यह इसलिये है कि मनुष्य इसे पसंद करते हैं और इससे तथा इसमें जो विशिष्ट रस मिलता है उससे चिपके रहते हैं।

(श्रीमातृवाणी खंड ३से)



संकटकी घड़ीमें पूर्ण अचंचलताकी जरूरत होती है।

अग्निपरीक्षा

श्रीअरविद यहां लिखते हैं: “‘प्रकाश’की जो ‘शक्तियां’ सहायता करना चाहती हैं अथवा जिन्हें इसके लिये अनुमति दी गयी है, वे बहुत थोड़ी हैं और अल्प समयके लिये ही आती हैं।” ऐसा क्यों?

तुम्हें जाकर उन्हींसे पूछना चाहिये! परंतु वहां एक निष्कर्ष है, अंतिम वाक्य बहुत स्पष्ट व्याख्या देते हैं। वहां कहा गया है: “नहीं तो, क्या अमरता कोई खिलौना है जो बिना सोचे किसी बच्चेको दे दिया जाय, अथवा क्या दिव्य जीवन कोई पुरस्कार है जो बिना प्रयास किये प्राप्त हो या ऐसा मुकुट है जो किसी निर्बल मनुष्यके लिये अभिप्रेत हो?”... यहां हम इस प्रश्नपर वापस आ जाते हैं कि विरोधी शक्तियोंको हस्तक्षेप करनेका, तुम्हें परेशान करनेका अधिकार क्यों दिया गया है। परंतु यथार्थमें यह परीक्षा है जो तुम्हारी सच्चाईकी जांच करनेके लिये आवश्यक है। यदि पथ बहुत सुगम होता तो प्रत्येक व्यक्ति पथपर चल पड़ता, और यदि बिना किसी बाधा और बिना किसी प्रयासके लक्ष्यतक पहुंचना संभव होता तो प्रत्येक व्यक्ति लक्ष्यतक पहुंच जाता, और जब मनुष्य अंततक पहुंच जाता तो परिस्थिति ठीक वैसी-की-वैसी ही रहती जैसी कि वह प्रारंभ करनेके समय थी, जरा भी परिवर्तन नहीं होता। इसका मतलब है कि नवीन जगत् ठीक वैसा ही होता जैसा कि पुराना जगत् अबतक रहा है। पर वास्तवमें यह चीज इस योग्य नहीं कि इसके लिये कष्ट उठाया जाय! स्पष्ट ही बहिष्करणकी एक प्रक्रियाकी आवश्यकता है जिसमें कि बस वही चीज रह जाय जो नवीन जीवनको अभिव्यक्त करनेमें समर्थ है। कारण यही है, कोई और नहीं, यही सर्वोत्तम कारण है। और, हां, यह एक प्रकारका अनुकूलीकरण है, यह अग्नि-परीक्षा है, जो वस्तु इस परीक्षामें टिकी रह सकती है केवल वही पूर्णतः शुद्ध होती है; जब सब कुछ जलकर राख हो जाता है तो वहां बना रहता है केवल शुद्ध सोनेका एक नन्हासा डला। और यह सब ठीक ऐसा ही है। इन सब चीजोंमें जो बहुत कुछ जोड़ देता है वह है दोष-त्रुटि, पाप, उद्धार आदिका धार्मिक विचार। परंतु सच पूछा जाय तो इसमें कोई मनमाना निर्णय नहीं है! इसके विपरीत, प्रत्येक व्यक्तिको सर्वोत्तम तथा अत्यंत अनुकूल परिस्थितियां ही प्रदान की गयी हैं। उस दिन हम कह रहे थे कि वास्तवमें केवल अपने मुहदोंके साथ ही भगवान् कठोरतापूर्वक व्यवहार करते हैं; तुमने समझा था कि यह एक मजाक है, पर यह वास्तवमें सच है। सच पूछो तो जो लोग आशासे भरे होते हैं, जो इस पावन लौके भीतरसे गुजरेंगे, केवल उन्हींको अधिक-से-अधिक फल प्राप्त करनेके लिये परिस्थितियां दी जाती हैं। और मनुष्यका मन इस प्रकारका बना हुआ है कि तुम इसकी परीक्षा कर सकते हो; जब कोई अत्यंत दुःखद घटना तुम्हारे साथ घटती है तो तुम स्वयं अपने-आपसे कह सकते हो, “हां, इससे यह सिद्ध होता है कि मैं इस योग्य हूं कि मुझे यह कठिनाई देनेका कष्ट उठाया जाय, इससे सिद्ध होता है कि मेरे अंदर कोई ऐसी चीज है जो इस कठिनाईका मुकाबला कर सकती है”, और तुम देखोगे कि शोकसंतप्त होनेकी जगह तुम प्रफुल्लित होगे—तुम इतने प्रसन्न और शक्तिशाली हो जाओगे कि अत्यंत कष्टकर चीजें भी तुम्हें अतीव मनोहर प्रतीत होंगी! यह परीक्षण करना बहुत आसान है। चाहे जो भी परिस्थिति हो, यदि तुम्हारा मन उसे किसी अनुकूल वस्तुके रूपमें देखनेका अभ्यासी हो तो वह तुम्हारे लिये जरा भी कष्टदायी नहीं रहेगी। यह बिल्कुल

सुपरिचित बात है; जबतक मन किसी चीजको स्वीकार करनेसे इंकार करता है, उससे संघर्ष करता है, उसे बाधा पहुंचानेकी कोशिश करता है, तबतक मनुष्यके अंदर यंत्रणाएं, कठिनाइयां, तूफान, आंतरिक संघर्ष तथा समस्त दुःख-क्लेश रहते ही हैं। परंतु जिस क्षण मन यह कहता है, “बहुत अच्छा, यही चीज है जिसे आना था, बस, इसी तरह इसे घटित होना था,” जो कुछ होता है उससे तुम संतुष्ट रहते हो। ऐसे लोग हैं जिन्होंने अपने शरीरपर अपने मनका ऐसा संयम प्राप्त कर लिया है कि वे कुछ भी अनुभव नहीं करते; उस दिन मैंने कतिपय गुह्यवादियोंके विषयमें यही बात कही थी; यदि वे यह समझते हैं कि जो यातना उन्हें पहुंचायी जा रही है वह उन्हें एक क्षणमें अपनी चेतनाके वर्तमान स्तरोंको पार करनेमें और ‘सिद्धि’ प्राप्त करने, अपने सामने रखे हुए लक्ष्यको प्राप्त करने, भगवान्‌के साथ एकत्व प्राप्त करनेके लिये उन्नतिके एक साधनके रूपमें सहायता करेगी तो फिर वे बिल्कुल ही यातनाका अनुभव नहीं करते। ऐसा लगता है मानों उनके शरीरपर मानसिक विचारकी कलाई चढ़ गयी हो। ऐसी बात बहुत बार घटित हो चुकी है; यह उन लोगोंका बहुत सामान्य अनुभव रहा है जिनमें वास्तवमें तीव्र धर्मानुराग रहा है। और आखिरकार, यदि मनुष्यको किसी-न-किसी कारण अपना शरीर छोड़ना और नया शरीर लेना ही हो तो क्या यह अधिक अच्छा नहीं है कि मृत्युको कोई वीभत्स पराजय बनानेकी जगह कोई भव्य, हर्षयुक्त और उत्साहपूर्ण वस्तु बना दिया जाय? जो लोग जीवनसे चिपके रहते हैं, जो एक या दो क्षण भी अपना अंत रोक रखनेके लिये प्रत्येक संभवनीय उपायसे चेष्टा करते हैं, जो तुम्हारे सामने भीषण वेदनाका उदाहरण रखते हैं, वे यह साबित करते हैं कि वे अपनी अंतरात्माके विषयमें सचेतन नहीं हैं...। तो भी, यह शायद एक साधन है, है न? मनुष्य इस घटनाको एक साधनमें बदल सकता है; यदि मनुष्य सचेतन हो तो वह, प्रत्येक चीजकी तरह, इसे एक सुन्दर वस्तु, बहुत सुन्दर वस्तु बना सकता है। और ध्यान दो, जो लोग इससे नहीं डरते, जो बेचैन नहीं होते, जो बिना किसी मलिनताके मर सकते हैं, वे ऐसे लोग होते हैं जो कभी मृत्युकी बात नहीं सोचते, अपने सम्मुख उपस्थित इस “संत्रास”से बराबर घिरे नहीं रहते जिससे कि उन्हें अवश्य बचना है और जिसे वे अपनेसे जितनी दूर संभव हो उतनी दूर धकेलनेकी कोशिश भी करते हैं। ऐसे लोग जब अवसर उपस्थित होता है, अपना मस्तक उठा सकते और हंसते हुए कह सकते हैं कि “मैं यहां हूं!”

बस, ये ही लोग हैं जिनमें अपने जीवनका यथासंभव सर्वोत्तम उपयोग करनेका संकल्प होता है, ये ही लोग हैं जो कहते हैं, “जबतक आवश्यक है, तबतक उसके अंतिम क्षणतक, मैं यहां बना रहूंगा और मैं अपने लक्ष्यकी सिद्धिके लिये एक क्षण भी नहीं खोऊंगा;” ये ही लोग, जब आवश्यकता पड़ती है, सर्वोत्तम दृश्य उपस्थित करते हैं। क्यों?—यह बहुत सरल है, क्योंकि वे अपने आदर्शमें निवास करते हैं, अपने आदर्शके सत्यमें रहते हैं; क्योंकि उनके लिये वही सच्ची वस्तु होती है, वही उनकी सत्ताका एकमात्र कारण होती है, और सभी वस्तुओंमें वे इस आदर्शको, सत्ताके इस कारणको देख सकते हैं, और वे कभी भी स्थूल जीवनकी गंदगीमें नीचे नहीं उतरते।

अतएव, निष्कर्ष यह रहा :

कभी मृत्युकी इच्छा नहीं करनी चाहिये।

कभी मरनेका संकल्प नहीं करना चाहिये।

कभी मरनेसे भयभीत नहीं होना चाहिये।

और सभी परिस्थितियोंमें अपने-आपको अतिक्रम करनेका संकल्प बनाये रखना चाहिये।

(श्रीमातृवाणी खंड ४से)

आत्मकथाएं

(शिक्षिकाने कक्षामें विषय दिया 'आत्मकथा'। विद्यार्थियोंके लेखोंके साथ-साथ शिक्षिकाका लेख भी अंतमें दिया जा रहा है। —सं०)

एक शिशिरबिंदुकी आत्मकथा

एक दिन अरुणोदयके पहले भगवान् आकाशकी सैर करने निकले। अचानक पवनका एक झोंका आया और उनके गलेमें सुशोभित मोतियोंका हार टूट गया। सब मोती धरतीपर बिखर गये। मैं भी इन मोतियोंमेंसे एक था। सबसे पहले मैं एक वृक्षकी नयी नवेली पत्तीपर गिरा पर शीघ्र ही उधरसे फिसल कर मैंने नीचे घासको अलंकृत कर दिया। सारा संसार जैसे मेरे नन्हेंसे रूपमें प्रतिबिंबित हो उठा और मैं उसकी मायामें फंस गया। अचानक एक भूली भटकी किरणने मुझे देखा, वह मुझसे मन-ही-मन प्यार करने लगी और अवसर मिलते ही मुझे चुराकर ले गई, कहीं दूर, बहुत दूर—और अब संसार नहीं केवल शून्यता ही मेरे पारदर्शी रूपमें प्रतिबिंबित हो रही थी।

—सीमा

छड़ीकी आत्मकथा

मैंने जब जन्म लिया तो मेरे सारे भाई-बहन उपस्थित थे। मुझे बहुत प्यारसे उन्होंने अपने बीचमें रखा। कुछ दिन बाद हमें एक दूकानके शो-केसमें रखा गया। हम मस्तीसे सड़कपर चलनेवालोंको देखते और टिप्पणियां करते। हर रोज एक-न-एक बिकता और हम कम होते जाते।

एक दिन मैंने एक जवान आदमीको आते देखा। उसे देखते ही मुझे महसूस हुआ कि आज मेरी बारी है। वाकई उसने मुझे खरीदा और सुन्दर कागजमें लपेटकर घर ले गया। आज उसकी बूढ़ी मांका जन्मदिन था और मैं उन्हें उपहारके रूपमें दी गई।

वह रोज मुझे नियमित रूपसे मंदिर ले जाती। मैं अपने-आपको बहुत भाग्यशाली मानती और उस बूढ़ी मांको धन्यवाद देती। लेकिन यह क्या, एक दिन कुछ बच्चे हमारे घरके चबूतरे-पर खेलने आए तो उसने मुझे घुमाते हुए उन बच्चोंको भगा दिया। मुझे बहुत दुःख हुआ और आश्चर्य भी क्योंकि वह तो इतना पूजा-पाठ करती थीं और भगवान्को मानती थीं फिर बच्चोंके प्रति प्यार क्यों नहीं! बच्चे तो भगवान्के सबसे नजदीक होते हैं फिर उनके साथ ऐसा व्यवहार क्यों? मैं उस दिनसे अनमनी-सी हो गई। मुझे अब मंदिर जानेमें कोई रस नहीं आता था। वस मैं इस बातसे खुश थी कि मैं किसीका सहारा हूं, लेकिन मैं उस बूढ़ी मांसे संतुष्ट नहीं थी। दुनियाकी रीतियोंको देख मैं टूटती जा रही थी। एक दिन बुढ़िया मांको तेज बुखार आया और उसने बिस्तर पकड़ लिया। मैं एक कोनेमें खड़ी ऊंध रही थी कि अचानक चबूतरेपर बच्चोंकी किलकारियां सुनाई दीं। मैं चहक उठी लेकिन बूढ़ी मांका ह्याल आते ही मैं सहम गई। लेकिन मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा जब मेरी मालकिनने बच्चोंको बुलाकर मिश्री दी और उन्हें प्यारसे थपथपाया। मेरी आंखोंमें आंसू आ गए। मैंने सोचा कि बुढ़ियाने मरते समय स्वर्गका सुख प्राप्त कर लिया है।

बहुत साल बीत चुके हैं अब मेरा भी अंतिम समय निकट आ रहा है। कौन जाने कल ही भगवान्‌के यहांसे निमंत्रण पत्र आ जाए।

—नम्रता जैन

कागजके थैलेकी आत्मकथा

मैं वादामी कागजका एक पैकेट हूँ। मैं अपनी ही तरहके और बहुत सारे पैकेटोंके बीचमें दबा पड़ा था। वैसे हम न जाने कितने दिनोंतक पड़े रहे। फिर एक दिन दो हाथोंने हमें उठाया और मुझे महसूस हुआ कि हमें कहीं ले जाया जा रहा है। उसके बाद हम कहीं रखे गये।

वैसे पड़े-पड़े मुझे अपने ऊपर रखे और सब पैकेटोंके वजनका अनुभव हो रहा था। फिर अचानक एक दिन वह वजन घटने लगा। मेरे ऊपरके सब पैकेट हटा दिये गये और मैंने उजालेकी एक दूसरी झलक पायी। हवाको अपने ऊपरसे हौले-हौले बहते हुए महसूस करनेमें कितना आनंद आ रहा था। जी कर रहा था इस पवनको एक निश्वासमें अपने अंदर भर लूं और शीतलतासे पूर्ण हो जाऊं। तभी तेलमें सना एक हाथ मेरे ऊपर पड़ा और मुझमें गरमा-गरम आलूके चिप्स भर दिये गये। मैं सब निकाल कर न फेंक दूं इसलिये मेरे मुंहमें दो क्लिप्स लगा दिये गये। मैं इस हालतमें एक बच्चेके हाथोंमें सौंप दिया गया।

बच्चेने खींचकर दोनों क्लिप्स निकाले, फिर एक-एक कर सारे चिप्स खा डाले। उसके बाद मुझे वहीं फुटपाथपर मरोड़कर फेंक दिया।

कैसा बुरा हाल हुआ मेरा, क्या बताऊं। लोगोंने लातें मार-मारकर मुझे यहांसे वहां फेंका। जब किसी तरह रात हुई तो वर्षा होने लगी और हम भीग गये। मेरी सब चोटोंमें दर्द हो रहा था। और मैं ठंडके मारे कांप रहा था। फिर मैं बेहोश हो गया। जब होश आया तो मैंने अपने-आपको कूड़ेके बीच पाया। अब भी मैं यहीं अवमरा पड़ा हूँ।

—स्वाति अग्रवाल

एक कलमकी आत्मकथा

मेरा जन्म और कलमोंकी तरह किसी कारखानेमें नहीं हुआ था बल्कि एक लेखकके हाथों। पैदा हुई मैं अद्भुत ढंगसे, और जीवन भी मेरा एक अद्भुत ढंगसे बीता। सबसे पहला अक्षर जो मैंने लिखना सीखा, वह था 'श्री' और इसी 'श्री' को मैंने अपने जीवनका लक्ष्य बनाया।

मैंने जीवनमें बहुत ही उच्च पद पाया। मैं अपने मालिकके लिए उनके प्राणसे भी अधिक प्रिय थी। जितने प्रेमसे उन्होंने मुझे काष्ठके टुकड़ेसे तराशकर बनाया, उतने ही प्रेमसे उन्होंने मुझे जीवन भर रखा भी। वे हमेशा मुझसे कहते, "बेटी, सैनिक अपने-आपको, अपने देशको, तलवार या बन्दूकसे बचाता है। वे उसके हथियार हैं। पर मेरा हथियार तुम हो। मैं अपने-आपको, अपने भाइयोंको तुम्हारे द्वारा अवर्म और पातकियोंसे बचानेकी कोशिश करता हूँ। सैनिक अपने बल और साहससे हथियार चलाते हैं, लेखक अपनी बुद्धि, अपने ज्ञान और अपनी उपलब्धिसे वार करते हैं।" मेरे मालिकने जितने भी लेख, कहानियां या निबंध लिखे, वे सब साहित्यके सागरमें रत्न समान चमके।

मेरे मालिक पूर्ण रूपसे एक महान् लेखक थे। लिखना, उनकी नजरोंमें, काम नहीं था। वह उनके व्यक्तित्वका एक अंश बन गया था, जैसे खाना और सोना। उनके साथ मुझे रात-रात जागकर लिखना पड़ता था। परंतु यह मुझे कभी नहीं अखरा। कभी-कभी मुझे महसूस होता था कि मैं उन्हींमें जीती हूं, दोनोंकी जिन्दगियां एक हैं।

आज मेरे मालिकको गुजरे कई वर्ष बीत गये हैं पर आज भी उनकी याद मेरे मनमें ताजी है। मैं अब भी उनकी मेजपर वहीं रखी हुई हूं जहां पहले रखी रहती थी। उनका हर लेख मुझे अक्षरशः याद है (आखिर मैंने ही तो उन्हें लिखा था) और उन्हींको मैं दोहराती रहती हूं, उनके वाक्योंकी गहराईको नापती रहती हूं। जो तब समझमें नहीं आया था वह अब आ रहा है। सचमुच, कितनी अच्छी तरहसे वे इस दुनियाको पहचानते थे।

—विश्वज्योति पाण्डे

घड़ीकी आत्मकथा

मैं अपने जन्मकी तारीख तो नहीं बता सकती लेकिन इतना जरूर बता सकती हूं कि मेरा जन्म ईसासे पहले हुआ था। मुझसे पहले ऐसी कोई वस्तु न थी जो समय बता सकती। इसलिए मुझे अपने-आपपर बहुत गर्व है।

मेरे जन्मसे पहले लोग बहुत डरे-डरेसे रहते थे, सूरज कभी भी उग आता और कभी भी ढल जाता था। और यह नहीं पता चलता था कि रात कब होगी और दिन कब होगा। सभी यही सोचते कि सूरजको कोई निगल लेता होगा और कहीं उनको भी न आ दबोचे। इसी डरसे सब गुफामें दुबके रहते। आखिर ऊपरवाला मनुष्यको डराकर कबतक रखता, हमलोग तो उसीकी संतान हैं। उन्हीं दिनों मेरा जन्म हुआ। धीरे-धीरे मेरी सूरत और शक्लमें सुधार हुआ। पहले-पहल मैं कैसा था यह तो मुझे याद नहीं लेकिन जब मैं समझने लायक हुआ, उस समय मैं मोमबत्तीका बना था। उन दिनों मैं इतना जटिल नहीं था। उसके बाद मुझे मिट्टीसे बनाया गया। लेकिन अब तो मैं आप लोगोंके सामने हूं।

—राजीव चौधरी

कोशकी आत्मकथा

मुझे आलमारीमें रखा ही गया था कि सब किताबें घूरकर देखने लगीं। फिर कुछ देर बाद कई किताबें आपसमें बातें करने लगीं। मैं डर गया। यह मेरे लिए एक नयी जगह थी और मुझे केवल यही मालूम था कि मैं श्रीअरविंद अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा केंद्रमें हूं। क्योंकि आज किसीने मेरे पहले पृष्ठपर यही छपा था।

अचानक सब किताबें चुप हो गईं। कुछ देर चारों ओर सन्नाटा छाया रहा। अंतमें इस नीरवताको एक मोटी किताबकी आवाजने तोड़ा। उसने पूछा, 'आजसे तुम यहां रहोगे?'

मैंने धीमे स्वरमें 'हां' कह दिया। फिर उसने पूछा, 'तुम कौन-सा शब्दकोश हो?' 'मैं फ्रांसीसी भाषाका शब्दकोश हूं।'।

उसका नम्रतासे भरा स्वर सुनकर मैंने शांत भावसे उत्तर दिया, 'मैं अंग्रेजीका शब्दकोश हूं।' कुछ ही मिनटों बाद सारी किताबें मेरे साथ ऐसे बातें करने लगीं जैसे मैं सालोंसे

उनको पहचानता होऊँ। किसीने मुझे इस स्कूलके विषयमें बताया, किसीने यह बताया कि स्कूलके बच्चे हमारा कैसे उपयोग करते हैं। कइयोंने अपनी-अपनी आत्मकथा भी सुनायी। सारी किताबें अपनी-अपनी बातें सुनानेको उत्सुक थीं। मैं शांति और धैर्यसे सुन रहा था। इस तरह सारा दिन बीत गया।

दूसरे दिन कोई मुझे आलमारीसे बाहर निकालकर एक कमरेमें ले गया। उसने मुझे एक सीधा-सादा लेकिन सुन्दर कपड़ा पहनाया। उसपर मेरा नाम लिखा 'लॉगमैन्स' और उसके नीचे एक नंबर लिखा। मैं बहुत खुश हुआ। मेरे साथ कभी किसीने ऐसा व्यवहार नहीं किया था। मुझपर इतने प्यार और नम्र भावसे हाथ नहीं फेरा था। फिर मुझे वापस आलमारीमें रखा गया। मैंने देखा कि सब किताबोंपर आवरण चढ़ा हुआ था। मैंने कल अंधेरेमें यह देखा ही न था।

कुछ देर बाद एक नन्हा-सा बच्चा अपने कोमल गोरे हाथोंसे मुझे आलमारीसे निकाल कर एक कुर्सीपर बैठ गया। बड़ी शानके साथ एक शब्द देखने लगा। वह शब्द मिलनेके बाद उसने उसका अर्थ अपनी कापीमें लिखा। कुछ शब्द देखनेके बाद उसने मुझे वन्द कर दिया। मैंने देखा कि उसने एक शब्दका अर्थ नहीं लिखा था। शायद उसने मेरा अर्थ वही समझा होगा। मैंने मन ही मन कहा, 'हां, इस शब्दके भावका अनुभव करना होगा। इसे शब्दोंमें व्यक्त करना कठिन है।'।

यह बात लड़केको समझाना और भी मुश्किल है क्योंकि उस बच्चेका शब्दभंडार छोटा था। मैंने पूरी कोशिश की थी लेकिन असफल रहा। जब मुझे वापस आलमारीमें रखा गया तब मैंने तुरंत अपनी सहेलियोंको इस लड़केकी समस्या समझायी। उन्होंने कहा कि उसको साधारण शब्दोंमें समझानेकी वे अपनी पूरी कोशिश करेंगी। मेरे पास वाले शब्दकोशको उठाकर फिरसे वह लड़का उस शब्दको देखने लगा। मेरा दिल जोरोंसे धड़कने लगा। मैंने भगवान्से प्रार्थना की कि उस मासूम बच्चेको उस शब्दका अर्थ स्पष्ट कर दें। वह लड़का शब्दका अर्थ पढ़कर अपनी कापीमें उसका अर्थ लिखने लगा। उसके चेहरेपर एक विजयी मुस्कान थी मानो वर्षोंके बाद ठंडी-ठंडी हवा सूर्यके चेहरेसे काली घटाओंकी चादर हटाती हो। और सूर्यकी मुस्कान इन्द्रधनुष बनकर एक रंग-विरंगे प्रकाशकी धाराके समान आसमानमें फैली हो।

मैंने भगवान्को लाखों धन्यवाद दिये क्योंकि उनकी कृपासे उस बच्चेके लिए शब्दका अर्थ स्पष्ट हुआ था।

उस दिनसे जब भी मेरे पास बच्चे ऐसे अपरिचित शब्द देखने आते हैं, मैं भगवान्की याद करता हूँ और वे सब समस्याएं दूर कर देते हैं।

—मीरा

सड़ककी आत्मकथा

क्या कहा? आप मेरी कहानी सुनना चाहती हैं? बड़ा ताज्जुब होता है यह सुनकर। आप लोग तो हमें इन्द्रियोंसे वंचित एक निर्जीव, निस्पंद वस्तु समझते थे न! अचानक आप हमारी दुनियाको समझने लगे यह सुनकर आशा बंधती है कि अब हमारे साथ आपका व्यवहार कुछ मृदु हो जायगा।

(शेष आवरण ३ पर)

हिन्दू मतके अनुसार हर युगमें नैतिक और आध्यात्मिक विकासकी अपनी रेखाएं होती हैं। सत्ययुगसे कलियुग तक धर्मका ह्रास वास्तवमें ह्रास नहीं, आध्यात्मिकताके बाहरी रूपों और अवलम्बोंकी घिसाई है जो हृदयमें ज्यादा गहरी आध्यात्मिक तीव्रताको तैयार करती है। हर कलियुगमें मानव जाति तात्त्विक आध्यात्मिकतामें कुछ उन्नति ही करती है। हम चाहे आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि बिन्दुको अपनाएं या प्राचीन हिन्दू दृष्टिको, मानव जातिकी प्रगति एक तथ्य है। ब्रह्माका चक्र सदा-सर्वदा चलता रहता है, लेकिन वह एक ही जगह नहीं घूमता। उसके चक्कर उसे आगे ले जाते हैं।

—श्रीअरविंद

कोई मानव संकल्प भागवत संकल्पके सामने नहीं टिक सकता।

— श्रीमां



चादर, शाल, दोशाले थोक खरीदनेके लिये पत्र-व्यवहार करें :

यूनिक स्टोर्स

घास मंडी; लुधियाना

फोन : २५४४७



Life is a perpetual choice between truth and falsehood, light and darkness, progress and regression, the ascent towards the heights or a fall into the abyss. It is for each one to choose freely.

THE MOTHER

Arvind Exports (P) Ltd.

Exporters of Engg. Goods, Pesticides, Chemicals, Ceramics,
Readymade Garments & Handicrafts etc.

Bombay Office :
76,77 Atlanta, Nariman Point
BOMBAY - 400 021, INDIA

H.O : CALCUTTA
75C, Park Street,
CALCUTTA - 700016 INDIA

Offi : 240277 * 240367
Resi : 814512
TELEX: - 011-4104
Gram:- "ARVIXPO"

Offi : 249065 * 248642
Resi : 478368
TELEX: - 021-7984
Gram:- "AUROEXPORT"

*In the eternity of becoming each Avatar is only the
announcer, the forerunner of a more perfect realisation.*

— The Mother

With the Compliments of:

Sri Mahalaxmi Oil Mills

Raniganj

Burdwan (W. Bengal)

Assam Tea Warehousing Corporation *Indian Tea Storage Agency*

**The most tried & trusted tea warehouse of
Tea Trade at Gauhati and Calcutta**

8, Camac Street
CALCUTTA-700016

Mg Partner : SATISH DEORAH

Phone : 44-8491, 43-2534, 43-1644

Gram : 'INTEASTORE'

With the Best Compliments of:

Indian Transport Agency

Leading Transport House since 1949; Fleet Owners

H.O.: 24 Ganesh Chandra Avenue, Calcutta - 700 013

PHONES: 27-8960, 27-3069

TELEX: 2191 DORA IN

Branches :

**Bombay, Madras, Bangalore, Delhi, Gauhati, Dibrugarh,
Digboi, Tinsukia, Sibsagar, Jorhat, Shillong, Nowgong, etc.**

You have no right to dispense with morality unless you submit yourself to a law that is higher and much more rigorous than any moral law.

THE MOTHER

Space donated by

Kooverji Devshi & Co. Pvt. Ltd.

**FIREX LEADS TO SAFETY
SAFETY LEADS TO PROSPERITY**

प्रबोधा

१९१-८९५

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

हरिद्वार

१८
१७.९.८५

२१९५०७

७७

२२/९

सितंबर

१९८५

उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, राजस्थान, मध्य प्रदेश, हरियाणा,
गुजरात, ओडिसा, आंध्र प्रदेश, पंजाब और मैसूर सरकार द्वारा
सरकारी पुस्तकालयों, विद्यालयों और महाविद्यालयों आदिके लिये स्वीकृत

पुरोधा

सितंबर १९८५

वर्ष २३, अंक १२, पूर्णांक २२६

विषय-सूची

संदेश		१
अमर्त्यता (सानेट)	श्रीअरविंद	२
दैनन्दिनी		३
‘भारतीय संस्कृतिके आधार’पर : मानवताका उच्चतर लक्ष्य		४
सान्ध्य वार्ताएं : शारीरिक साधन		६
‘दिव्य जीवन परिचय’ : दो नकार	अम्बालाल पुराणी	७
निष्कलंक तंत्र	नलिनीकांत गुप्त	१२
श्रीमातृवाणीसे : भगवती माताके अन्य ‘व्यक्तित्व’		१५
केंद्रीय सत्ता और उसकी प्राप्ति		१८
शांतिके बारेमें		१९
उपनिषदोंके ब्रह्म		२१
अनंत और शाश्वतकी शक्ति	श्रीअरविंद	२२
‘गीर्वाणी’ : प्रकाशदूतः		२३
तिरछी किरणें		२६
अक्तूबर ८४ से सितंबर ८५तकके मुख्य लेखोंकी सूची		आ० ३

बहुत-से ग्राहकोंका चंदा अभीतक नहीं आया है। उन्हें याद दिलानेके लिए—

कृपया अपना चंदा शीघ्र भेजनेकी व्यवस्था करें। पुरोधाका चंदा १४ और अग्निशिखाका १० वार्षिक है। दोनोंका मिलाकर २२ भेज दें और अगर हो सके तो एक साथ या किस्तोंमें ४०० देकर आजीवन सदस्य बन जायें।

अपने इष्ट मित्रोंका ध्यान भी इस ओर खींचनेकी कृपा करें।

	पुरोधा	अग्निशिखा	दोनों मिलाकर
वार्षिक चंदा	१४	१०	२२
आजीवन सदस्यता	२२५	१७५	४००

संपर्क सूत्र—संपादक पुरोधा एवं अग्निशिखा, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

संपादक : रवीन्द्र, वंदना

प्रकाशक : अनिरुद्ध सरकार, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००२

संदेश

Beyond words, above thoughts
the flame of an intense
aspiration must always
burn, steady and bright.

My love and blessings
are with you

5.3.55

शब्दोंसे परे, विचारोंसे ऊपर, तीव्र अभीप्साकी ज्वाला हमेशा जलती रहनी चाहिए, स्थिर और देदीप्यमान।

मेरा प्रेम और मेरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं।

५-३-५५

—माताजी

*

अमर्त्यता

ईश्वरके अपने स्वातंत्र्यको मैंने गहरा पिया है,
जहांसे एक गुह्य अधिराज्य व्युत्पन्न होता है :
पार्थिव परिधानमें प्रच्छन्न वह जीवित रहता है,
मैं जगविहीन सत्ता हूं विराट् और स्वतंत्र ।
उस परमाधिकारसे अंकित एक क्षणने
मुझे मुक्त कर दिया विश्वव्यापी खूंटियों और वेड़ियोंसे;
मृत्यु और कालको नष्ट कर मेरी प्रकृति रहती है
अमर्त्यताके गहरे हृदयमें ।

अज्ञानके साथ हस्ताक्षरित ईश्वरका अनुबंध-पत्र फट गया है;
समय शाश्वतका अंतहीन संवत्सर बन गया है,
मेरी आत्माका विस्तृत आत्म सजीव असीम अंतरिक्षका,
अपने ज्योतिर्मय और अजन्मे शरीरका रेखाचित्र बनाता है
पृथ्वी-परिच्छदके पीछे; अवगुण्ठनके अंदर प्रकट हो रहा है
एक अविनश्वर मुखका सांचा ।

श्रीअरविंदकी कविता 'इम्मोर्टेलिटी'के आधारपर

—अनु० अमृता

दैनिन्दिनी

सितंबर

१. सामान्यतः प्रकृतिसे प्रेम करना संतुलित और शुद्ध होनेका लक्षण है, जिसे आधुनिक सम्यता नहीं समझती।
२. स्थिर अचंचल मनके मौनमें तुम प्रकृतिके साथ बहुत अच्छी तरह संपर्क साध सकते हो।
३. प्रकृति भगवान्की एक सीमित-सी अभिव्यक्ति मात्र है।
४. चेतना जितनी विशाल हो, वह उतनी ही अधिक वस्तुओंको और यथार्थताओंको अपने अंकमें भर सकती है, और तब भौतिक आवश्यकताएं उतनी ही कम होती हैं।
५. नयी चेतनाके बारेमें बोलनेके लिये तुम पहले उसे अपने अंदर प्रकट होकर अपने रहस्योंका उद्घाटन करने दो। उसके बाद ही तुम उसके बारेमें अधिकारके साथ कुछ कह सकते हो।
६. हम यहां अपने जीवनको सरल और सुखद बनानेके लिये नहीं हैं। हम यहां भगवान्को पानेके लिए, भगवान् बननेके लिए, भगवान्को अभिव्यक्त करनेके लिये हैं।
७. हम यहां, धरतीपर सत्य और प्रेमकी विजय लानेके लिये हैं और यह अवश्य आयेगी।
८. एक परम दिव्य चेतना है। हम इस दिव्य चेतनाको भौतिक जीवनमें अभिव्यक्त करना चाहते हैं।
९. हठ, एक महान् गुण, अध्यवसायका गलत उपयोग है।
१०. प्रगतिकी ओर अपने प्रयासमें हठी बनो और तुम्हारी हठ उपयोगी होगी।
११. इस नये कामके लिये पुराने तरीकोंसे काम न चलेगा।
१२. वस्तुतः कोई प्रभावकारी चीज करनेसे पहले न केवल एक नयी चेतनाको दृढ़तासे प्रतिष्ठित करना होगा बल्कि नयी प्रक्रिया भी खोजनी होगी।
१३. मेरे वालकोंमेंसे हर एक, सभीके बारेमें यह ठीक है कि वे जब कभी मिथ्यात्वके आवेशमें सोचते, बोलते या क्रिया करते हैं तो वह मेरे शरीरपर प्रहारका काम करता है।
१४. भगवान्की खुशीसे भर जाओ, मुझे खुश करनेका सबसे अच्छा उपाय यही है।
१५. जब कोई पूरी तरह भगवान्को समर्पित हो तो उसके लिये दूसरोंके मतका कोई महत्व नहीं होता।
१६. केवल परम प्रभुके मतका ही महत्व है।
१७. केवल एक सद्वस्तु है, केवल एक जीवन है। केवल एक चेतना है—वह है भगवान्।
१८. अग्नि-परीक्षाएं सबके लिये होती हैं, अंतर बस इसमें होता है कि तुम उनका सामना कैसे करते हो, कुछ लोग मुस्कराते हैं और कुछ शोर मचाते हैं।
१९. अग्नि-परीक्षाओंके लिये कृतज्ञ हो, वे भगवान्की ओर जानेवाली सबसे छोटी राहें हैं।
२०. अपने चारों ओर व्यवस्था लाना अपने भीतर व्यवस्था लानेमें सहायता करता है।
२१. चीजें, हम जैसा मानते हैं उसकी अपेक्षा बहुत ज्यादा अच्छी तरह व्यवस्थित हैं।
२२. दुनियामें कोई चीज ऐसी नहीं है जो अपने मूलमें दिव्य न हो।
२३. जबतक तुम किसीके पक्षमें और किसीके विपक्षमें हो तबतक तुम निश्चित रूपसे सत्यके बाहर हो।

२४. भूतकालको चले जाने दो। वस अनंतपर केंद्रित रहो।
२५. जो भूतकालको छोड़कर, बिना किसी भारके भविष्यकी ओर दौड़नेको तैयार हैं वे अपने लक्ष्यतक ज्यादा जल्दी पहुंचेंगे।
२६. आध्यात्मिक नियमोंके अनुसार जीनेमें समय लगता है लेकिन धैर्यके साथ परिणाम जल्दी आता है।
२७. दृढ़ और धीर बनो, सब कुछ ठीक होगा।
२८. अधीरता नहीं, सच्चाईके साथ धीरज।
२९. साधक भगवान्से शांति पाता है, ऐसी शांति जो बाहरी परिस्थितियोंसे बिल्कुल अछूती रहती है।
३०. भगवान् जो चाहते हैं वही चाहनेसे हम निरंतर शांति पाते हैं। भगवान्की ओर अधिक मुड़ो, सच्ची आंतरिक शांतिके लिये अभीप्सा करो और तुम्हें बिना किसी क्षोभके अपना काम करनेके लिए काफी शक्ति मिल जायगी।

‘भारतीय संस्कृतिके आधार’पर :

मानवताका उच्चतर लक्ष्य

पिछले लेखोंमें भारतीय धर्मके मूल तत्वों, इसके विकासके उद्देश्य तथा इसकी पद्धतिकी मूल भावनाका कुछ विस्तारसे वर्णन किया गया है फिर भी यह वर्णन अभीतक अधूरा है क्योंकि इन चीजोंकी निरंतर उपेक्षा की जा रही है और इस धर्मका समर्थन या विरोध करनेवाले लोग व्यौरों तथा गौण विषयोंपर ही तर्क-वितर्क करते रहते हैं। व्यौरोंका अपना महत्व तो है क्योंकि ये संस्कृतिको जीवनमें क्रियान्वित करनेके अंग हैं लेकिन इनका ठीक-ठीक मूल्यांकन तब तक नहीं किया जा सकता जबतक हम उस मूल भावनाको पूरी तरहसे हृदयंगम न कर लें जो उन व्यौरोंके केंद्रमें विद्यमान है, अगर हम उसे भूल जायें तो व्यौरे सारहीन हो जाते हैं। भारतीय संस्कृतिमें हम उसी मूल भावनाको विसराकर केवल व्यौरों तथा गौण विषयोंसे चिपके रह गये। भारतीय संस्कृतिका मूलतत्त्व तथा सारभूत भाव असाधारण रूपसे उच्च और श्रेष्ठ था, सचमुच वह एक ऐसा उच्चतम तत्व और भाव था जिसकी मानव आत्मा कल्पना कर सकती है क्योंकि जीवनके बारेमें इससे अधिक महान् रहस्य और क्या हो सकता है जो मानव अंतरात्माके अत्यंत विशाल रहस्य तथा उसकी उच्चतम संभावनाओंकी कुंजी प्रदान करता है, इससे अधिक महान् संस्कृति और क्या हो सकती है जो मनुष्य-जीवनको कालमें कालातीत की, व्यष्टिमें विराट् पुरुषकी, सांतमें अंतकी और मनुष्योंमें भगवान्की क्रिया समझती है, या फिर जो यह मानती है कि मनुष्य शाश्वत तथा अनंतको केवल जान ही नहीं सकता बल्कि उसकी शक्तिमें निवास भी कर सकता है और आत्मज्ञानके द्वारा स्वयंको वैश्व, आध्यात्मिक तथा दिव्य भी बना सकता है? मानव जीवनके लिये इससे महान्तर लक्ष्य और क्या हो सकते हैं कि वह आंतरिक तथा बाह्य अनुभूतिके द्वारा तबतक विकसित होता रहे जबतक कि वह परमेश्वर-

में निवास करने, अपनी आध्यात्मिक सत्ताका अनुभव करने, अपनी उच्चतम सत्ताके ज्ञान, संकल्प और आनंदमें पहुँचकर दिव्य बननेमें समर्थ न हो जाय ? वास्तवमें भारतीय संस्कृतिके प्रयासका पूर्ण उद्देश्य यही है।

यह कहना आसान है कि ये विचार कपोल कल्पनाएं तथा अव्यावहारिक हैं। वस्तुतः न कोई अंतरात्मा है न सनातन सत्ता और न ही कोई दिव्य वस्तु है और अगर मनुष्य धर्म और दर्शनशास्त्रके पचड़ेमें पड़े बिना अपने इस क्षणिक तथा तुच्छ जीवन और शरीरका यथासंभव अच्छे-से-अच्छा उपयोग करे तो यह उसके लिये कहीं अधिक अच्छा होगा। यह कथन मनुष्यके प्राणिक और भौतिक मनके लिये बहुत स्वाभाविक है क्योंकि वह कूपमंडूककी भांति मात्र कुंएके जीवनको संपूर्ण जीवन मान लेना पसंद करता है और यह मत इस धारणापर आश्रित है कि मनुष्य केवल वही बन सकता है जो कि वह इस क्षण है और उसमें कोई ऐसी महत्तर वस्तु नहीं है जिसे विकसित करना उसका कर्तव्य हो यानी "यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्" की वृत्ति। लेकिन जो लोग ऐसा कहते हैं, अर्थात् जो जीवनमें उच्चतर तत्वका निषेध करते हैं उनकी बातें मूल्यहीन, वास्तविकतासे कोसों दूर हैं। क्योंकि किसी भी महान् संस्कृतिका संपूर्ण लक्ष्य यह होता है कि वह मनुष्यको उसकी वर्तमान सीमित स्थितिसे विशालतर क्षेत्रोंमें उठाये, उसे ज्ञानकी ओर ले चले यद्यपि वह अथाह अज्ञानसे ही अपनी यात्रा शुरू करता है, उसे विवेकके द्वारा जीवन विताना सिखाये यद्यपि वास्तवमें वह अपने अविवेकके द्वारा जीवन यापन करता है। उसे शुभ और एकताके विधानद्वारा जीना सिखाये यद्यपि आज वह अशुभ और वैषम्यसे भरा हुआ है, उसे सुन्दरता और सामंजस्यके विधानके द्वारा जीना सिखाये, यद्यपि उसका यथार्थ जीवन कुरूपता और कलहपूर्ण वर्तमानोंका घृणास्पद मिश्रण ही है, उसे अपनी अंतरात्माके किसी उच्च विधानके द्वारा जीना सिखाये, यद्यपि वर्तमान स्थितिमें वह अहंकारपूर्ण तथा अनाध्यात्मिक है और अपनी जड़-भौतिक सत्ताकी आवश्यकताओं तथा कामनाओंमें ही डूबा हुआ है। अगर किसी सम्यताका इनमेंसे कोई भी लक्ष्य न हो तो शायद यह कहा ही नहीं जा सकता कि उसकी कोई संस्कृति है और निश्चित रूपसे यह तो किसी भी अर्थमें नहीं कहा जा सकता कि उसकी एक महान् और श्रेष्ठ संस्कृति है। प्राचीन भारतने जिस उच्च लक्ष्यकी कल्पना की वह इन सभी लक्ष्योंसे ऊंचा है क्योंकि वह इन सभीको अपने अंदर लिपे हुए है, वास्तवमें, उसने जीवनके किसी पहलूको नहीं छोड़ा, इस सर्वांगीण लक्ष्यको संपन्न करना वस्तुतः जातिके जीवनको उदात्त और श्रेष्ठ बनाना है, इसमें असफल होना भी इसके लिये एकदम से प्रयास न करनेसे कहीं अधिक अच्छा है और इसमें थोड़ी-सी सफलता पा लेना भी मनुष्य जातिकी भावी संभावनाओंको चरितार्थ करनेमें महान् सहायता प्रदान करना है।

अगले लेखमें हम भारतीय संस्कृतिकी इस सर्वांगीण प्रणालीकी चर्चा करेंगे।

सांध्य वाताहं :

शारीरिक साधन

१९-७-१९४३

शिष्य—‘क’ने अपने पत्रमें किसीको लिखा है कि मनुष्यमें प्राणिक सत्ता ही बीमारियोंके लिए जिम्मेदार होती है, शरीरका इसमें कोई भाग नहीं होता। आप क्या कहते हैं?

श्रीअरविंद—तुम कह सकते हो कि “भौतिक द्रव्य” अच्छे, बुरे, स्वस्थ और अस्वस्थके बारेमें कुछ नहीं जानता परंतु मानव शरीर यानी भौतिक चेतना “भौतिक द्रव्य” नहीं है। वह सचेतन होता है इसलिए बीमारियोंके बारेमें उसकी अपनी जिम्मेदारी होती है।

शिष्य—ऐसा मालूम होता है कि ‘क’ प्रायश्चित्तके बारेमें कह रहा था। वह कहता यह चाहता था कि प्राणमय सत्ताके या मनके अपराधके लिए शरीरको दण्ड देना ऐसा ही है जैसे रामके अपराधके लिए श्यामको दण्ड देना।

श्रीअरविंद—इस बातपर भी मतभेद हो सकता है। यह सोचना ठीक नहीं है कि मन, प्राण और शरीर एक दूसरेसे इतने अलग हैं, कि परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया नहीं कर सकते। यह सच नहीं है। भौतिक शरीर प्राणिक सत्तापर प्रतिक्रिया कर सकता है।

शिष्य—लेकिन हमारी भौतिक सत्ता प्राण या मनकी सत्ताके जितनी सचेतन नहीं है।

श्रीअरविंद—यह कहा जा सकता है कि भौतिक अन्वियोंकी अपेक्षा अधिक असचेतन है लेकिन इस कारण यह नहीं कहा जा सकता कि वह अन्य भागोंपर प्रबल प्रभाव नहीं डाल सकता।

इसके अलावा, उपवास करने या घोर तप करनेका निर्णय प्राण और मनुष्यका मनोमय पुरुष करता है, शरीर निर्णय नहीं करता।

शिष्य—लेकिन योगके मनोवैज्ञानिक पथोंपर शारीरिक तपको जरूरी नहीं माना जाता।

श्रीअरविंद—भौतिक तप या शरीरको गलानेको इसलिए महत्व नहीं दिया जाता, उसे प्रभावकारी नहीं माना जाता या उसे प्रोत्साहन नहीं दिया जाता क्योंकि यह अपने-आपमें प्राण या मनमें परिवर्तन लानेके लिए काफी नहीं है। तुम तपस्या भले कर लो परंतु तुम्हारा प्राण पूरी तरह अपरिवर्तित बना रह सकता है।

इस प्रकारका परिवर्तन ज्यादा आसानीसे तब आ सकता है जब चेतना शारीरिक साधनोंके बिना, सीधी क्रिया करे। चेतनाके अंदर वांछित परिवर्तन लानेके लिए ज्यादा सीधे साधन है।

शारीरिक तपस्याको प्रोत्साहित न करनेका एक और कारण भी है। अगर यह तपस्या ठीक तरहसे की जाय तो इससे शारीरिक ऊर्जा बहुत बढ़ जाती है और फिर परिणाम इसपर निर्भर रहता है कि इस ऊर्जाको कौन अपने वशमें लेता है। साधारणतः देखा यही जाता है कि गलत शक्तियां इस ऊर्जाको हथिया लेती हैं। विरले लोग ही संकटमें पड़े बिना इस स्थितिमेंसे गुजर सकते हैं। सारी तकलीफकी जड़ अवचेतनामें है और कठिनाई वहीसे आती है।

लेकिन अगर चेतनाका कोई भाग तपस्या करे, उदाहरणके लिए अगर प्राण तपस्या करे तो वह आवश्यक परिवर्तन ला सकता है।

२०-३-१९४३

कैंसर से पीड़ित एक साधककी मृत्यु हो गयी।

शिष्य—क्या आपका ख्याल है कि 'र'को ठीक किया जा सकता था? लोगोंकी धारणा है कि कैंसर असाध्य है।

श्रीअरविंद—कम-से-कम 'र'के लिए तो यह संभव था लेकिन फरवरी दर्शनके बाद उसके अंदर किसी चीजने प्रत्युत्तर देना बन्द कर दिया। पिछले तीन दिनोंमें शरीरपर न तो उच्चतर शक्तिका और न दवाईका कोई असर हुआ।

शिष्य—क्या आध्यात्मिक सहायता, उसके प्रत्युत्तरकी परवाह किये बिना अपना प्रभाव न डाल सकती थी?

श्रीअरविंद—इस प्रकारके मामलोंमें संबद्ध व्यक्तिका पूरा-पूरा सहयोग अत्यंत आवश्यक है।

शिष्य—लेकिन अगर आप आक्रमण करनेवाली शक्तिको जानते हैं तो...

श्रीअरविंद—आक्रमक शक्तिको पहचान लेना एक चीज है और उसे भगा सकना दूसरी चीज है। इन मामलोंमें मनकी बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस आदमीने निश्चय कर लिया था कि वह फरवरी दर्शनकी प्रतीक्षा करेगा और उसके बाद मर जायगा। इसके अतिरिक्त, जब वह यहां आया था, रोग काफी बढ़ चुका था।

शिष्य—ऐसे मामलोंमें सफलताके लिए क्या शर्तें हैं?

श्रीअरविंद—या तो पूर्ण सहयोग या पूर्ण वश्यता।

(पुराणीकृत श्रीअरविंदकी 'ईवनिंग टाक्स'से)

दिव्य जीवन परिचय :

दो नकार

(अध्यात्मवादीका नकार, जड़वादीका नकार)

दिव्य जीवनके दूसरे अध्यायमें श्रीअरविंद आत्मा और जड़ भौतिकके विरोधकी बात करते हैं। माना यह जाता है कि आत्मा इस भौतिक मंदिरमें निवास करती है। सारे विश्वमें सचमुच आत्मा ही जीवित जाग्रत है। अगर हम समस्याके समूचे रूपको लें तो हमें यह स्वीकार करना होगा कि भौतिक द्रव्य एक श्रेष्ठ द्रव्य है जिसमेंसे आत्मा अपना परिधान

आश्रममें कैंसरका यह पहला आक्रमण था। उन दिनोंके एक बड़े फ्रेंच विशेषज्ञ रोगीको देखने आये थे। उन्होंने माताजीके साथ इस रोगीके बारेमें बड़े विस्तारसे बातचीत की और विज्ञान उस समयतक जितना जानता था वह सब बतलाया। यह सब सुननेके बाद माताजीने किसीसे कहा, डाक्टरकी बातें सुनकर मैं इस निष्कर्षपर पहुंची हूं कि कैंसर सचमुच रोग नहीं है। जब शरीरके कोषाणु केंद्रीय चेतनाके विरुद्ध विद्रोह कर बैठते हैं तो उसे कैंसर कहा जाता है। इसका सच्चा इलाज यही होगा कि उन विद्रोही कोषाणुओंको सचेतन बनाकर केंद्रीय चेतनाके आधीन किया जाय।—सं० (स्मृतिके आधारपर)

बुनती रहती है। श्रीअरविद कहते हैं कि आत्मा बारंबार कभी न खतम होनेवाले अपने मंदिरोंकी शृंखला बनाती रहती है। एक अर्थमें भौतिक द्रव्य एक श्रेष्ठ पदार्थ है जिसमेंसे आत्मा अपने अंतरहित परिधान और भवन तैयार करती रहती है। पुराकालमें उपनिषदोंने घोषणा की थी कि भौतिक पदार्थ ही ब्रह्म है, भौतिक अनंत है। भौतिक पदार्थ निश्चेतन नहीं है। जब मनुष्य आत्मा और भौतिक तत्वके विरोधकी बात करते हैं तो यह भूल जाते हैं कि ये एक अविभाज्य परमार्थ तत्वके दो सिरे हैं। मानव मन एक सिरेपर आत्माको देखता है और दूसरे सिरेपर जड़ भौतिकको। इनमें एक आरोहण क्रम है और मानव मनको लगता है कि इस क्रमसे होकर एक सिरा दूसरेसे मिलता है। उनमें कोई विरोध नहीं है। जड़-भौतिक अपने-आपमें अंतर्लीन आत्मा या यूँ कहें आत्माका मुखौटा है। आत्माके अंदर जड़ भौतिककी सभी संभाव्यताएं छिपी हुई हैं। भौतिक द्रव्यसे आत्मातक एक पूरा अविच्छिन्न और अविभाज्य क्रम है, भौतिकसे प्राण, प्राणसे मन, मनसे अतिमन और फिर सत्, यह एक क्रम या सोपान है।

कुछ लोग कहते हैं कि शुद्ध सत् ही वास्तविक है। भौतिक यांत्रिक, जड़, निश्चेतन अतः अवास्तविक है। उस सोपानसे अपरिचित होनेके कारण जो एकको दूसरे से मिलाता है और यह न जाननेके कारण कि भगवान् सर्वव्यापक हैं, प्रकृतिमें भी मौजूद हैं, वे भगवान् और प्रकृतिको एक दूसरेके विरोधमें खड़ा कर देते हैं, भगवान् पूर्ण रूपसे सचेतन और प्रकृति पूर्णतया अचेतन। श्रीअरविद कहते हैं कि यदि तुम प्रकृति और भगवान्के विरोधको स्वीकार करते हो तो यदि तुम भगवान्की ओर मुड़ो तो तुम प्रकृतिके विमुख हो जाते हो और यदि प्रकृतिको स्वीकारो तो भगवान्से इंकार करते हो। इस तरह तुम ऐकान्तिकतापर जा पहुंचते हो।

ऐसे आध्यात्मिक लोग हैं जो केवल आत्माको ही सच्चा मानते हैं। उनके लिए निरपेक्ष ही यथार्थ है। इसके विपरीत जड़वादी भगवान्से इंकार करता है। उसके लिए भौतिक ही सत्य है। आत्मासे, चेतनासे इंकार करना अपेक्षाकृत सरल है इसलिए जड़वादीका काम ज्यादा आसान है क्योंकि जड़ वस्तुएं हमारी इन्द्रियोंके आगे स्पष्ट रूपसे उपस्थित रहती हैं।

कट्टर जड़वादीके लिए भौतिक पदार्थकी उपस्थिति सिद्ध करना आसान होता है। वह कह सकता है कि भौतिक पदार्थ सत्य है और शक्ति सत्य है लेकिन अगर हम उससे पूछें कि भौतिक क्या है और शक्ति क्या है तो वह कुछ न बता सकेगा। वह इतना ही कहेगा कि ये अज्ञेय हैं, वह अभीतक इसके बारेमें कुछ नहीं जानता पर उसे विश्वास है कि ये सत्य हैं। लाइफ डिवाइनके इस अध्यायमें श्रीअरविद कहते हैं कि इनका समाधान और सामंजस्य संभव है। ये एक दूसरेका विरोध करनेवाली चीजें नहीं हैं, विरोध मनुष्यके मनमें है। आत्मा और भौतिक तत्व परमार्थ तत्वके दो छोर होनेके नाते मानव सत्ताके लिए ठोसपनका भाव लिये हैं लेकिन इस शृंखलाकी बीचकी चीजें मनुष्यके यथार्थताके भावको संतुष्ट नहीं कर पातीं। ऐसी विचार-पद्धतियां हैं जो मनुष्यको जीवन-शक्तिकी क्रियापर ही संतुष्ट रहना सिखाती हैं। अन्य किसी मानसिक चरम साध्यकी स्थापना करते हैं लेकिन वे भी मानव आत्माको अधिक समयतक संतुष्ट नहीं कर सकते क्योंकि वह किसी ठोस चीजके लिए मांग करती है। जो विचार-पद्धतियां अज्ञेयको मानकर चलती हैं या नास्तिक वृत्ति अपनाती हैं वे मनुष्यकी जिज्ञासाको अधिक समयतक संतुष्ट नहीं कर सकतीं। ऐसी पद्धतियां मनुष्यकी वर्तमान प्रकृतिको ही अंतिम मान लेती हैं।

वे यह नहीं स्वीकार करतीं कि मनुष्य अपने अंदर ज्ञान और चेतनाके अन्य साधन भी

विकसित कर सकता है। अगर हम यह मान लें कि मनुष्य अपने वर्तमान मनोवैज्ञानिक सांचेमें ही बंधा रहेगा तो स्वभावतः बहुत कुछ करना संभव न होगा। लेकिन जैसे अपने भौतिक अन्वेषण और शोधके कार्यमें मनुष्यने कोई सीमा निर्धारित नहीं कर ली उसी तरह मन और प्राणके अनुभवों, अनुभूतियों और परीक्षणोंके लिए भी होना चाहिए। यह समग्र वैश्व ऊर्जा क्या है? साधारण उत्तर यही होगा कि वह अज्ञेय है, हम उसे जान नहीं सकते। विभिन्न स्तरोंपर एक असीम जटिल शक्ति काम कर रही है। मनके स्तरपर, प्राणके स्तरपर, भौतिक स्तरपर लाखों-करोड़ों शक्तियां कार्यरत हैं। तो वह अज्ञेय कौन-सा है जिसे जाना नहीं जा सकता? श्रीअरविद कहते हैं कि वह वर्णनातीत है और अभी अज्ञेय है, परंतु हमेशा ऐसा ही न रहेगा। तुम उसे मनद्वारा नहीं, उसका अनुभव करके, उसे प्राप्त करके जान सकते हो। अतः एक ऐसी वृत्तिको अपनाना संभव है जिसमें जड़वादीके आत्मासे नकार और संन्यासीके भौतिकसे नकारका समाधान किया जा सके। जड़वादीका नकार यूरोपीय संस्कृतिमें बहुत जोरसे पैठा हुआ है। संन्यासीका निषेध भारतीय संस्कृति जैसी संस्कृतियोंमें मजबूत था जहां आत्मा ही को एकमात्र यथार्थता मानकर अन्य सबको माया या भ्रान्ति कह दिया जाता था।

अगर हम बौद्धिक और तर्कसंगत दृष्टिसे देखें तो आत्मा और भौतिक पदार्थ दोनों ही अज्ञेय हैं। मन जड़ पदार्थको नहीं जानता और आत्माको नहीं जान सकता। अगर जड़वादी यह मानकर चलता है कि वर्तमान गठन ही मनुष्यके लिए एकमात्र संभव गठन है तब तो ज्ञान प्राप्तिके साधनोंमें उसके पास रह जाती हैं केवल इन्द्रियां और तर्कबुद्धि। और अगर हम अपने-आपको इसीमें बंद कर लें तो फिर कोई समाधान नहीं रहता! अगर तुम इन्द्रियों और बुद्धिके परे जाना चाहो तो कह दिया जाता है कि यह संभव नहीं है। लेकिन तब उन शक्तियोंके साथ क्या किया जाय जो इन्द्रियों और बुद्धिसे अधिक शक्तिशाली हैं। हम उन शक्तियोंके विकासकी बातको कबतक काट सकते हैं जो हमारी इन्द्रियोंसे अधिक शक्तिशाली और बुद्धिसे अधिक प्रभावशाली हैं। मनुष्यके अंदर वर्तमान परंतु अभी सोयी हुई शक्तियोंको जगाना हमारी बहुत बड़ी आवश्यकता है। ये शक्तियां मनुष्योंके किसी विशेष वर्ग या जातिका इजारा नहीं हैं। ये समस्त मानवजातिकी संभाव्यताएं हैं।

इन नयी क्षमताओंके अस्तित्वको प्रमाणित करनेके लिए साक्ष्यका एक विशाल क्षेत्र है। हमसे अंधविश्वास या कपोल कल्पनाको मानकर चलनेके लिए नहीं कहा जाता। अकाट्य तथ्य मौजूद हैं जिनके माननेसे इंकार नहीं किया जा सकता। सम्मोहन, दूरबोध, विचार संप्रेषण, संकल्पद्वारा चिकित्सा, औरोंके विचार पढ़ना आदि ऐसे तथ्य हैं जिनसे आज कोई इंकार नहीं कर सकता। जिसे हम भविष्यवाणी कहते हैं, भविष्यका आभास कहते हैं या, स्वप्नमें भविष्यकी सूचना मानते हैं वह भी इसी प्रकारका तथ्य है। इस प्रकारके अनेक तथ्य हैं जो यह प्रमाणित करते हैं कि मनुष्यके अंदर सुषुप्त क्षमताएं हैं। आध्यात्मिक दृष्टिसे ये बहुत ऊंची नहीं हैं परंतु इनसे यह निश्चित रूपसे प्रमाणित होता है कि इन्द्रियां और तर्क-बुद्धि ही मनुष्यके लिए अंतिम साधन नहीं हैं। भौतिक स्तरपर ऐसी घटनाएं घटती रहती हैं जो इन क्षमताओंके अस्तित्वको प्रमाणित करती हैं।

श्रीअरविदकी दृष्टि इतनी अधिक समन्वयात्मक है कि वे कहते हैं कि तर्कबुद्धिवाली वृत्ति और बौद्धिक जड़वादने स्वयं आध्यात्मिकताकी बहुत सेवा की है। उसने आध्यात्मिकताका मार्ग साफ कर दिया है और सारे प्रयासको संगठित किया है, उसने अंधविश्वास, कपोल कल्पनाओं

और इच्छाजनित धारणाओंके झाड़-झंकाड़को साफ कर दिया है। उनका कहना है कि आध्यात्मिक जीवनके लिए भी स्पष्ट, बुद्ध और सुनियंत्रित बुद्धिकी जरूरत है। स्वयं श्रीअरविद-का जीवन इस बातका बहुत अच्छा दृष्टांत है कि शुद्ध, नियंत्रित बुद्धि और मनका संतुलन आध्यात्मिक जीवनके लिए कितने उपयोगी हैं। जब १९२०में मैं दूसरी बार उनसे मिला तो मैंने पूछा, 'दिव्य चेतना तो आप पा ही चुके हैं, अब किसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं?' वे कभी अपनी दिव्यताकी घोषणा करना पसंद नहीं करते थे। उन्होंने जो जवाब दिया वह ठीक उन्हींका जवाब हो सकता था, कितना निर्वैयक्तिक और कितना यथार्थ। उन्होंने कहा, 'भगवान् तो सब जगह हैं लेकिन भगवान्का काम तबतक पूरा नहीं होता जबतक भागवत चेतना नीचे उतर कर समस्त प्रकृतको और भौतिक जगत्को रूपांतरित न कर दे।' अगर कोई और कम क्षमतावाला होता तो आश्वासनको लेकर ही भाग निकलता और चिल्लाता 'लो भगवान् आ गये, सब कुछ हो गया।' शुद्ध, नियंत्रित बुद्धि ही देख सकती है कि अभी कितना कुछ करना बाकी है।

दूसरे महायुद्धके समय जब वे मौन आध्यात्मिक सहायता दे रहे थे तब इस निर्वैयक्तिकता और संतुलनका अच्छा अंदाजा मिलता था। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता था कि भगवान् संसारको जो मौन सहायता करते हैं उसका एक जीता-जागता दृष्टांत हमारे आगे था। दुनिया-में इसका किसीको पतातक न चला। हमें इस विषयमें कुछ थोड़ा-बहुत अंदाज था क्योंकि हम उनके नजदीक रहते थे। युद्ध समाप्त होनेके कुछ वर्ष बाद उन्होंने इस बातका चलता-सा जिक्र किया। हमें यह बतलानेके लिए कि भौतिक शक्तियोंके अतिरिक्त अन्य शक्तियों-द्वारा भी काम करवाया जा सकता है। उन्होंने कभी किसी चीजके लिए अपने-आप श्रेय नहीं लिया। उनकी दृष्टि बिल्कुल स्पष्ट थी। उन्होंने बतलाया कि यह सब अतिमानस-शक्तिका काम नहीं था अपितु दिव्य चेतना अधिमानस यंत्रके द्वारा काम कर रही थी। अगर अतिमानस शक्तिकी क्रिया होती तो तुरंत भागवत संकल्पकी विजय हो जाती, बीचमें कोई विघ्न-बाधा या हस्तक्षेप न हो पाता। अधिमानस भी एक समर्थ शक्ति है और जब वह विभिन्न शक्तियोंके चक्करमें काम करता है तो वह घटनाओंको ऐसा मोड़ दे सकता है कि वे भगवान्की इच्छित दिशामें चले और भगवान्की विजय नजदीक आये।

अधिमानस इसलिए कर सकता है क्योंकि वह एक वैश्व शक्ति, बल्कि वैश्व शक्तिसे बढ़कर कुछ है। उपनिषद् केवल ब्रह्मको नहीं बल्कि धरतीको भी अभिव्यक्तिके आधारके रूपमें स्वीकार करते हैं। उपनिषद्का कहना है कि धरती आत्माकी पीठ है जिसपर वह खड़ी रहती है। यह विश्व क्या है? अगर हम विश्वको भली-भांति देखें तो पता चलेगा कि यह अज्ञेय परमार्थ तत्वका प्रतीक या आभास है। जब वह अज्ञेय परमार्थ तत्व तुम्हारे लिए ज्ञेय बन जाता है तो तुम उसे मनकी भाषामें नहीं रख सकते। कोई भाषा उसे व्यक्त नहीं कर सकती। पहली जरूरत है कि तुम्हारे अंदर सार्वभौम दृष्टि होनी चाहिए, एक संकीर्ण दृष्टि नहीं। अगर तुम एक-एक पेड़को देखो तो जंगलको न देख पाओगे। अगर तुम पूरी चीजको देखो तो तुम्हें लगेगा कि यह अज्ञेय परमार्थ तत्व (रियैलिटी) है।

तो क्या यह अज्ञेय तत्व पूरी तरह अज्ञेय है? नहीं। हमारे कहनेका मतलब यह है कि वह हमारे विचार, हमारी बुद्धि और हमारी वाणीके लिए अज्ञेय है। उसे विचारके क्षेत्रमें नहीं रखा जा सकता। वह विचारके क्षेत्रसे बाहर, शायद विचारको ढके रहता है लेकिन उसे विचार, बुद्धि और वाणीसे व्यक्त नहीं किया जा सकता। अगर चेतना प्रयास करे तो वह

उसे पा सकती है जो इस भांति अज्ञेय है। लेकिन इसके लिए चेतनाको प्रयास करना होगा। चेतना मन, प्राण या शरीर नहीं है। चेतना मन, प्राण, शरीर, स्नायु संस्थान आदिका उपयोग करती है। अगर यह चेतना प्रयास करे तो जो मन, इन्द्रियों या वाणीके लिए अज्ञेय और अप्राप्य है वह ज्ञेय और प्राप्य हो सकता है। कोई कारण नहीं कि वह चेतनाको प्राप्त न हो सके। लेकिन अगर चेतना प्रयास करे और परमार्थ तत्व या परम वास्तविकताको प्राप्त कर ले तो उसकी प्राप्ति का लक्षण क्या होगा। इसका क्या प्रमाण होगा कि उसने प्राप्त कर लिया है। इसका निश्चित प्रमाण क्या है कि चेतनाने एकाग्रता, विकास, वृद्धि, विस्तार आदिके द्वारा उस अप्राप्यको पा लिया है। इसका हमें कैसे पता चल सकता है? खीर का प्रमाण उसके स्वादमें है, उसे चख कर ही कहा जा सकता है कि यह खीर है। परमार्थ तत्वको पा लेनेमें जीवनके मूल्यों का पूरी तरहसे नया मूल्यांकन हो जाता है। उदाहरणके लिए उसे पानेसे पहले आदमी अज्ञानी होता है, उसे पाकर वह ज्ञानी बन जाता है। रामकृष्ण परम हंस जो एक बंगाली ग्रामीण थे, जिन्हें हस्ताक्षर करना तक न आता था उसे पाकर बड़े-बड़े विद्वानोंसे भी आगे बढ़ गये। जो उसे पा लेता है उसके सारे जीवन का ही नया मूल्यांकन होता है। वह उसे पानेसे पहले जगत्को जिस दृष्टिसे देखता था उसमें और पानेके बाद जिस दृष्टिसे देखता है उसमें जमीन-आसमान का फर्क होता है।

आध्यात्मिक और साधारण आदमीमें यह बहुत बड़ा फर्क होता है। उदाहरणके लिए साधारण आदमी किसीके बारेमें कहता है यह आदमी बुरा है। आध्यात्मिक आदमी कहेगा, कोई आदमी बुरा नहीं होता, प्रकृतिमें कुछ बुराई है, वैश्व कृतिमें कुछ निम्नतर तत्व है। बस। ऐसी बहुतेरी चीजें हैं। उसे पा लेनेके बाद मनुष्य भिन्न तरहसे देखता, सोचता और कार्य करता है। श्रीअरविद का कहना है कि वहां भी उसे अपनी बुद्धिको स्पष्ट रखना चाहिए। पुनर्मूल्यांकनके बाद भी व्यक्तिकी बुद्धि स्पष्ट, शुद्ध और नियंत्रित होनी चाहिए। श्रीअरविदने दुनियाको कभी उस दृष्टिसे नहीं देखा जिससे लोग देखते हैं परंतु जो कोई भी उनसे मिला उसने उन्हें बहुत अच्छा, सम्य, सुसंस्कृत आदमी पाया। उन्हें कभी यह आभास न हुआ कि वे किसी ऐसे व्यक्तिसे मिल रहे थे जो सदा भगवान्में, परम यथार्थतामें निवास करता है। वे कभी इसकी बात न करते थे। एक बड़ी मजेदार बात है। १९१८में जब मैं पांडिचेरीमें था तो सरला देवी चौधरी नामक एक महिला उनसे मिलने आयीं जो उनसे काफी छोटी थीं। मैं वहीं कमरेके एक कोनेमें बैठा था। मैंने देखा कि उनके आनेपर श्रीअरविद मान देनेके लिए कुरसीसे उठ खड़े हुए। मुझे आश्चर्य हुआ। वह एक बहुत अच्छी सार्वजनिक कार्यकर्त्री थीं परंतु श्रीअरविद उनसे बड़े और उनके माननीय थे। वह उच्चतर चेतना पा लेनेके बाद तुम्हारे अंदर संतुलन भी रहना चाहिए। तुम जीवनके साधारण मूल्योंको भूल नहीं जाते। तुम्हें यहांके उचित अनुचित का भान रहता है।

भागवत अभिव्यक्ति सामंजस्य है, कोई चाँधियानेवाला, अनिवंचनीय चमत्कार नहीं। वह कोई असाधारण अजीब चीज नहीं है। वह दिव्य जीवनकी व्यवस्थित लय है जिसे सामान्य जीवनमें उतारना है। यह व्यवस्थित लय ऐसी है जिसका प्रतिरोध नहीं किया जा सकता। तुम उसे तभी ला सकते हो जब अपने अंदर दिव्य जीवन जियो और अपने सारे यंत्र-विन्यासको भगवान्को अभिव्यक्त करनेमें लगा सको। यह आवश्यक है। यह बाहरी और भीतरी जीवनकी क्रांति है। श्रीअरविद कहते हैं कि अज्ञेय अप्राप्य नहीं है। मनुष्यके अंदर ऐसी छिपी हुई क्षमताएं हैं जो अज्ञेयके अनुरूप होकर उसे पा सकती हैं। जब हम कहते हैं कि

वह अज्ञेय है तो इसका मतलब यह होता है कि वह हमारी वर्तमान क्षमताओंके लिए अज्ञेय है परंतु हम ऐसी क्षमताएं विकसित कर सकते हैं जिसके लिए वह ज्ञेय और प्राप्य हो।

जैसे यह स्थूल विश्व है इसी प्रकार एक सूक्ष्म विश्व भी है। श्रीअरविदका कहना है कि यह जगत् एक खंड या तलछट है। यह समग्रका खंड और पूर्ण प्रक्रियाका तलछट है। मनुष्य जो इस जगत्का सार या निष्कर्ष है, उसके अंदर समग्रके सभी तत्व हैं इसलिए समग्रकी सभी रेखाएं, सभी उभार भी उसमें हैं। वह तलछट है पर तलछटमें समग्रके सभी तत्व विद्यमान हैं। इस खंडमें, इस तलछटमें समग्रकी वे शक्तियां हैं जो अज्ञेयको ज्ञेय बना सकती हैं। उसे स्वेच्छासे यह चुनाव करना होता है कि उन्हें विकसित करे या न करे। मनुष्य एकदम स्वतंत्र है। कोई उसे बाधित नहीं करता।

एक बार मुझसे कुछ बच्चोंने पूछा था, भगवान् क्या हैं। मैंने उत्तरमें कहा, मैं तुम्हें भगवान्की एक ही परिभाषा बतलाता हूं। भगवान् सबसे बड़ा गणतंत्रवादी है। वह तुम्हारे काममें तभी पड़ता है जब तुम उसे मतदान करो, उसे चुन लो वरना वह तुम्हें अकेला छोड़ देता है। यहां भी वही बात है। अगर तुम चाहो तो इन क्षमताओंको जगाओ वरना पड़ा सोने दो। अगर तुम उन्हें जगाना चाहो तो उसके लिए मेहनत करनी होगी, उसके लिए अपना अनुशासन है। मेहनत करनी होगी, वह भी कड़ी मेहनत लेकिन पुरस्कार भी बहुत बड़ा है।

(‘लाइफ डिवाइन’के आधारपर)

—अम्बालाल पुराणी

निष्कलंक तंत्र

भ्रष्टाचार आजकी जीवन-चर्या है। जीवनके हर क्षेत्रमें, जहां कहीं हमारी गति है, यह दानव खड़ा दिखायी देता है, उससे कतराकर जाना असंभव है। हमें उसके साथ नाता जोड़ना, उसका स्वागत करना और उसे मना लेना पड़ता है। यह यूनानी कहानियोंके दानवों जैसा है। न जाने कहाँसे, पृथ्वीसे या आकाशसे असहाय देशों और जातियोंपर झपट पड़ते हैं और तबतक तंग करते हैं जबतक कोई मुक्तिदाता आकर उनका त्राण न करवा दे।

दुमुंही जैनसकी तरह भ्रष्टाचारके दो चेहरे हैं, हिंसा और मिथ्यात्व। व्यक्तिगत जीवनमें, राजनीतिक क्षेत्रमें, व्यापार तथा सामाजिक क्रियाकलापमें, हर जगह यह प्रतिष्ठित व्यवहार बन गया है। आज यह प्रकृतिका एक नियम-सा बन गया है कि तुम्हें सफलता तभी मिल सकती है जब ये दोनों साथी तुम्हारे दोनों ओर हों। शरीफ, ईमानदार, शांतिप्रिय मनुष्य अनिवार्य रूपसे धक्के खाता या पछाड़ा जाता है, सीधे सच्चे आदमीकी कहीं सुनवाई नहीं होती, उसे रोटी कमाना भी मुश्किल होता है। अंतर्राष्ट्रीय स्तरकी उच्चतर कूटनीतिसे लेकर गांवकी तुच्छ चालबाजियोंतक, अणुबमके विस्फोटसे लेकर खंजर घोंपनेतक, आधुनिक जीवनके तानेबानेसे बुने इन दो सद्गुणोंके अनेकानेक रूप हैं।

पुरानी दुनियामें, बहुत पुरानी नहीं क्योंकि सचमुच जमीन खिसकनी शुरू हुई प्रथम महायुद्धसे, मानव और मानव समाजमें बढ़ी और अशुभकी कमी न थी परंतु उसे दैवी और शुभ न माना जाता था, एक अनिवार्य दोष न माना जाता था। उसे अगर सहा जाता था तो भारी मनके

साथ, उसकी बुराईको स्वीकार करते हुए। सचमुच तबतक हृदय स्वस्थ था, जो कुछ रोग था वह हाड़मांसमें ही था। जीवनमें एक आदर्श था, एक अभीप्सा थी। यद्यपि मनुष्य हमेशा उसके अनुसार न चलता था फिर भी वह उसे दुत्कारता न था। कम-से-कम आंतरिक मन और अपनी चेतनामें आदमी उसकी बात सोचता था और उसके अनुसार चलना चाहता था।

जीवनके वारेमें नाजी सिद्धांतने अशुभको आगे लाकर मानव चेतनामें शुभके स्थानपर प्रतिष्ठित कर दिया, मिथ्यात्वको सत्यका आसन दिया। यह व्यावहारिकताकी अति है। जो भी चीज तुम्हें सफलता यानी सांसारिक सफलताकी ओर ले जाय, धन दौलत, औरों पर शासन करनेकी शक्ति बढ़ाये, उपनिषद्की भाषामें तुम्हें वित्त प्रदान करे वही अच्छी और शुभ है, वही सत्य है, बाकी सब मानसिक कल्पनाएं, धारणाएं, और तुम्हें धोखा देनेवाले दिवा स्वप्न हैं। वे तुम्हें अपनी पूर्णता और उपलब्धिके मार्गसे भटका देते हैं। इस तरह हमने मोफिस्टो-फिलीसकी बातोंमें आकर अपनी आत्मा बेच दी है।

हम जानते हैं कि देशकी सरकार लोहेके तंत्रकी तरह होती है जो लोगोंको इकट्ठा रखती है वह प्राथमिक स्थिरता और सुरक्षा देती है। लोगोंके समस्त क्रिया-कलापके लिये अवसर देती है। भारतमें अंग्रेजी राजको यह गर्व था कि उसने इस प्रकारका एक मजबूत तंत्र बनाया था। कभी-कभी ऐसा लगता था कि यह तंत्र देश और जातिका गला न घोट दे। फिर भी हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि वह एक असाधारण उपलब्धि थी और अंग्रेजोंने जो शांति प्रदान की थी वह सचमुच एक तथ्य थी। लौह तंत्रके पीछे जो शक्ति थी उसके सरक जानेसे सारा तंत्र कमजोर पड़ गया और हिलने लगा। हमारी राष्ट्रीय सरकार उसे फिर से मजबूत बनानेकी, उसके कील कांटे दुरुस्त करने और पेच कसनेकी पूरी कोशिश कर रही है लेकिन दुर्भाग्यवश लोहेमें जंग लग गया है और वह भीतरसे घिस गया है।

खुले शब्दोंमें कहें तो सार्वजनिक नैतिकता और सामूहिक ईमानदारीको ग्रहण लग गया है, व्यक्तिगत चेतनामें ऋजुता, न्याय, सद्ब्यवहारमें भाटा आता जा रहा है। जो लोग इस लौह तंत्रके अंग हैं, उसके कील कांटे, पेंच और पुरजे हैं, जो उसे मजबूत बनाते हैं वे अपनी नैतिकतामें ढीले पड़ गये हैं। बाहरी देख-रेखके साथ भीतरी संयम भी ढीला पड़ गया है और परिणामस्वरूप विघटन हो रहा है, राजनीतिक, सामाजिक और व्यक्तिगत जीवनमें देवालियापन आ गया है।

यह सड़ांध दिनपर दिन बढ़ती जा रही है। इसे कैसे रोका जाय? एक अंतिम और विनाशक विस्फोटकी ओर ले जानेवाली क्रिया-प्रतिक्रियाकी शृंखलाको कैसे तोड़ा जाय? केवल जन साधारण ही नहीं बल्कि जैसा मैंने कहा सारे लौहतंत्रको जो लोग उठाये हुए हैं, जिनके आधारपर वह खड़ा है, वे भी शत्रुदलमें चले गये हैं और यह बात केवल राजनीतिमें नहीं सामाजिक क्षेत्रमें भी सही है, कुलीन कुलीन नहीं रहे। इसका उपचार क्या है? सबसे पहला उपचार जो हमारी आंखोंके सामने आकर खड़ा होता है वह है, कठोर नियम, विधि-विधान और अपराधको रोकनेवाले दंड।

लेकिन आज दंड-विधानका वह रौब या भय नहीं रहा जो पहले था। दंड न तो अपराधीको ठीक करता है न उसका उद्धार करता है। अधिकतर तो यही देखा जाता है कि दंड जिस चीजको रोकनेके लिये दिया जाता है उसे ज्यादा मजबूत बना देता है। दंडका भय हमेशा गलत काम करनेसे रोकता नहीं, कई बार उसे ज्यादा आकर्षक बना देता है। गलत प्रकार के साहसवालोंके लिये अधिक दण्ड अपराधको अधिक आकर्षक बनाता है। कठोर

नियम, पुलिस व्यवस्थासे एक हदतक सुव्यवस्था रहती तो है परंतु बाहरी तौरपर और उसका असर भी बहुत समयतक नहीं रहता।

दूसरा सुझाव दिया जाता है नैतिक पुनर्निर्माणका, लेकिन इसका ठीक रूप क्या है और इसे कैसे लाया जाय? नैतिक नियम बनाकर उनका प्रचार किया जाय, उन्हें इधर-उधर स्तम्भोंपर लिखकर लगाया जाय, पर्चे बांटे जायें, मंचोंसे भाषण दे-देकर गीत, नाटक आदि द्वारा उनका प्रचार किया जाय तो यह सब तो चिरकालसे होता आया है और उसके बावजूद दुनिया अपनी राहपर चलती रहती है। मानसिक और नैतिक नियमोंसे बढ़कर किसी और चीजकी खोज करनी होगी, मनुष्यके ऊपर किसी क्रियाशील, अपरिहार्य चीजको छूना होगा, उसका आह्वान करना होगा, किसी ऐसी चीजको पाना होगा जो सारी दुनियाको चुनौती देते हुए अपने सत्य और उस सत्यके आदेशको अधुण बनाये रखे। वह चीज है आदमीके अंतर-में विराजमान अंतरात्मा, व्यक्तित्वके सभी बाहरी रूपोंके पीछे, उसकी सच्ची सत्ता, उसके अंदर दिव्य तत्व, बल्कि यूं कहें स्वयं भगवान्। बाहरी मानव, सीमावर्ती मानव, अपनी निम्नतर प्रकृतिमें रहनेवाला मानव सामान्य परिस्थितियोंमें जीता और क्रियाशील रहता है। इसके बजाय शाश्वत मानव, अपनी उच्चतर और उच्चतम प्रकृतिमें रहनेवाले मानवको बाहर आना और जगत्में अपना स्थान लेना है।

अंतरात्माओंकी ऐसी सेनाकी आवश्यकता है—पृथक् पृथक् हों या समूह में—जिन्होंने किसी-न-किसी रूपमें अपनी अंतरतम वास्तविकता, अपने देवत्वके साथ संपर्क जोड़ लिया है—ऐसे मनुष्य जिनमें एक नयी चेतना और अभीप्सा हो, एक नया जीवन और चरितार्थता हो। वे व्यापक भ्रष्टता और विघटनके बीच रहेंगे, अपनी पवित्रताके एकांतमें अलग-थलग और उसीमें बंद न रहेंगे बल्कि रोजमर्राके सामान्य क्रिया-कलापोंमें भाग लेंगे, फिर भी वे पवित्र चेतनाके गांभीर्य और उसकी उच्चतासे कार्य करते हुए स्वयं अपने जीवनके उदाहरणको सामने रखकर इस बातको सिद्ध करेंगे कि व्यक्ति संसारमें रहते हुए भी उसमें नहीं होता। जीवनके भरण-पोषण और संवर्धनके लिये जो कुछ आवश्यक है वह करते हुए भी जीवनके उन संदिग्ध तरीकोंके सामने नहीं झुकते जिन्हें आवश्यक और अपरिहार्य माना जाता है। दूसरे शब्दोंमें, वे इस बातको गलत सिद्ध करेंगे कि जीवनमें सुरक्षा, सफलता और समृद्धि केवल तभी आ सकती है जब मनुष्य अशुभके रास्तेका अनुसरण करे, अगर वह अपनी अंतरात्माको बेच दे। इसके विपरीत, अपने भागवत सारमें जीनेसे मनुष्य संसारको जीत सकेगा—इहैव तैर्जितम्। हर क्षण, सभी परिस्थितियोंमें अगर वह अपने अंदरके उच्चतमकी वाणीपर कान दे, अगर वह उच्चतम ही हो और कोई निम्नतर प्रतिध्वनि न हो, तो मनुष्य भयहीन, अमर और सर्वविजेता बन जाता है।

मनुष्योंमें जीती और उनके बीच विचरण करती ऐसी अंतरात्माएं विरोधी और अंधकारमय परिस्थितियोंमें भी उस नये निष्कलंक लौह तंत्रको गढ़ेंगी जिसपर नया समाज सुरक्षित रूपसे आधारित होगा।

—नलिनीकांत गुप्त

भगवती माताके अन्य 'व्यक्तित्व'

“भगवती माताके और भी महान् 'व्यक्तित्व' हैं, लेकिन उन्हें इस धरतीपर उतारना ज्यादा कठिन था और वे धरतीकी चेतनाके विकासमें प्रधान रूपसे आगे नहीं आये। उनमेंसे कुछ ऐसी 'उपस्थितियाँ' भी हैं जो अतिमानसिक सिद्धिके लिये अनिवार्य हैं—विशेषकर, यह गुह्य और बलशाली उल्लास तथा 'आनन्द'का स्वरूप जो भगवान्‌के ऊँचे-से-ऊँचे भागवत 'प्रेम'से प्रवाहित होता है। वह 'आनन्द' ही अतिमानसिक आत्माके सबसे ऊँचे शिखरोंका नाता 'जड़-तत्त्व'की गहरी-से-गहरी खाइयोंके साथ जोड़ सकता है। उसी 'आनन्द'के पास आश्चर्यमय, परम दिव्य 'जीवन'की चाबी है और अब भी वह अपने गुप्त स्थानोंमें रहता हुआ विद्वकी अन्य 'शक्तियों'के कामको सहारा देता है।”

सधुर मां, यह 'व्यक्तित्व' कौन-सा है और वह कब अभिव्यक्त होगा ?

मैंने अपना उत्तर तैयार रखा है। मैं जानती थी कि मुझसे यह प्रश्न पूछा जायगा, क्योंकि इस उद्धरणकी सभी चीजोंमेंसे यही सबसे मजेदार है, इसलिये मैंने अपना उत्तर तैयार रखा है। मैंने इसका और दूसरे प्रश्नका भी उत्तर तैयार कर लिया है। लेकिन पहले मैं यह पढ़ूंगी।

तुमने पूछा है : “यह व्यष्टि कौन-सी है और वह कब आयेगी ?” (मौन) और मैं यह उत्तर देती हूँ :

“वह अपने साथ धरतीके लिये अभीतक अपरिचित शक्ति और प्रेमकी महिमा और भागवत 'आनन्द'की तीव्रताको लिये आ चुकी है।

इससे भौतिक वातावरण विल्कुल बदल गया था, वह नयी और अद्भुत संभावनाओंसे शराबोर था।

लेकिन यहां, इहलोकमें, स्थायी और क्रियाशील होनेके लिये यह जरूरी था कि उसे कुछ थोड़ी-सी ग्रहणशीलता तो मिले, कम-से-कम एक मनुष्य तो मिले जिसके प्राण और शरीरमें अपेक्षित गुण हों, जो एक तरहसे परम पावन हों, जिसमें सहज और सर्वांगीण पवित्रता हो, साथ ही जिसका शरीर बिना टूटे, इसके साथ आनेवाले 'आनन्द'को सह सकनेके लिये काफी ठोस और संतुलित हो।

अभीतक उसे वह चीज नहीं मिली जो आवश्यक थी। मनुष्य दुराग्रहके साथ मनुष्य ही बने रहते हैं। वे अतिमानव नहीं बनना चाहते या नहीं बन पाते। वे केवल अपनी अंजलि-के अनुसार ही मानव प्रेमको ग्रहण और अभिव्यक्त कर सकते हैं ! और दिव्य आनन्दका अद्भुत हर्ष उनके बोधसे बच निकलता है।

कभी-कभी यह देखकर कि जगत् उसे स्वीकारनेके लिये तैयार नहीं है, वह लौट जानेकी सोचती है। यह एक निष्ठुर क्षति होगी। यह सच है कि अभी तो उसकी उपस्थिति सक्रिय न होकर नामके लिये ही है, क्योंकि उसे अभिव्यक्त होनेका अवसर ही नहीं मिला। लेकिन यूं भी, वह कामके लिये एक प्रबल सहायता है। क्योंकि भगवती मांके सभी रूपोंमेंसे इसीमें शारीरिक रूपांतरके लिये सबसे अधिक सामर्थ्य है। वास्तवमें, जो कोषाणु भागवत आनन्दके संपर्कसे स्पंदित हो सकते हैं, जो उसे ग्रहण कर सकते और बनाये रख सकते हैं वे पुनरु-

ज्जीवित कोषाणु हैं जो अमर बननेके मार्गपर हैं। लेकिन भागवत आनंद और भोग-विलासके स्पंदन एक ही प्राणमय और भौतिक शरीरमें नहीं रह सकते। अतः, 'आनंद'को ग्रहण कर सकनेकी अवस्थामें होनेके लिये हर प्रकारके सुख अनुभवको पूरी तरह त्याग देना चाहिये। लेकिन ऐसे लोग विरले ही हैं जो सक्रिय जीवनमें भाग लेना छोड़े बिना, घोर तपश्चर्यामें डूबे बिना सुखको त्याग सकते हैं। और जो लोग यह जानते हैं कि सक्रिय जीवनमें ही रूपांतर सिद्ध होगा उनमेंसे कुछ सुखको 'आनंद'का कम या ज्यादा भ्रष्ट रूप मानते हैं और इस तरह अपनी निजी तुष्टिकी खोजको न्यायसंगत ठहराते और अपने रूपांतरके मार्गमें ऐसी रूकावट खड़ी कर देते हैं जिसे पार करना लगभग असंभव है।"

हम यहां बन्द करें? हम अगली बार पूरा कर लेंगे। मुझे भी डूबनेके लिये समय मिल जायगा।

यह लो, अब अगर तुम कुछ पूछना चाहो...। (लंबी चुप्पी) पूछो!

जो कोई भी कुछ बोलना चाहे बोले... कोई भी जो कुछ बोलना चाहे बोले, केवल विद्यार्थी ही नहीं।

माताजी, अगर हम पहले सफल नहीं हो पाये तो कोशिश कर सकते हैं?

क्या?

अगर हम अबतक सफल नहीं हो पाये तो कोशिश कर सकते हैं?

ओह, हां, तुम हमेशा प्रयास कर सकते हो...। जगत् हर क्षण पुनः-सर्जित होता है। तुम इस क्षण भी एक नये जगत्को पुनः-सर्जित कर सकते हो, अगर तुम उसे सर्जित करना जानो तो, यानी, अगर तुम अपने स्वभावको बदलनेमें समर्थ हो तो!

मैंने यह नहीं कहा कि वह चली गयी है। मैंने कहा है कि वह कभी-कभी, समय-समयपर, चले जानेकी सोचती है।

लेकिन, माताजी, वह इसलिये उतरी क्योंकि उसने कोई संभावना देखी होगी!

क्या?

वह उतरी क्योंकि एक संभावना थी; क्योंकि चीजें अमुक हदतक आ गयी थीं, और उसके अवतरणकी घड़ी आ गयी थी।

वास्तवमें वह उतरी थी क्योंकि मैंने सोचा था कि यह संभव था... कि वह सफल हो सकती है। (मौन) हमेशा संभावनाएं रहती हैं, केवल उन्हें भौतिक रूप लेना चाहिये। है न, मैंने तुमसे जो कहा उसका प्रमाण लो: वह एक निश्चित क्षणपर आयी, और... दो-तीन सप्ताहमें, केवल आश्रमका ही नहीं, बल्कि धरतीका वातावरण इतनी शक्ति, इतने तीव्र भागवत 'आनंद'से भरपूर हो गया, जो इतनी अद्भुत शक्ति पैदा करता है कि पहले जिन चीजोंको पूरा करना इतना कठिन था, वे लगभग तुरंत पूरी हो सकती थीं। संपूर्ण जगत्पर इसका प्रभाव पड़ा। मुझे नहीं लगता कि तुममेंसे एक भी ऐसा है जो इससे अवगत हो। तुम मुझे यह भी नहीं बता सकोगे कि यह हुआ कब, बता सकोगे?

कब हुआ ?

मुझे तारीख नहीं मालूम। मुझे नहीं मालूम। मुझे तारीखें याद नहीं रहतीं। मैं लग-भग बता सकती हूं, इस तरह... (मौन) अगर मैं अपने कागज देखूं, तो हो सकता है कि मुझे तारीखें मिल जायें। लेकिन मैं तारीखें नहीं जानती। यह मेरे लिये ऐसी चीज है जो...। मैं केवल इतना जानती हूं कि यह श्रीअरविंदके शरीर-त्यागसे पहले हुआ था, कि उन्हें पहलेसे ही सूचना मिल गयी थी, उन्होंने इस तथ्यको पहचाना था...

(मौन)

निश्चेतनाके साथ घोर संघर्ष हुआ; क्योंकि जब मैंने देखा कि ग्रहणशीलता वैसी नहीं जैसी होनी चाहिये तो मैंने निश्चेतनाको उत्तरदायी ठहराया और वहीं लड़ाई करनेकी कोशिश की। मैं यह नहीं कहती कि उसके परिणाम नहीं आये, लेकिन प्राप्त परिणाम और अपेक्षित परिणाममें बहुत अंतर था।

मैं तुमसे यह बात कहती हूं, समझे... तुम सब इतने नजदीक हो, तुम वातावरणमें नहाते हो, लेकिन... तुममेंसे किसीको कुछ पता लगा ? तुम अपना छोटा-सा जीवन सामान्य रूपमें बिताते रहे, है न ?

(मौन)

माताजी, मेरा ख्याल है कि यह १९४६में था, क्योंकि तब आपने हमें बहुत-सी बातें बतायी थीं !

बिल्कुल ठीक !

(लंबा मौन)

मधुर मां, अब जब कि वह आ गयी है, हमें क्या करना चाहिये ?

क्या ?

हमें क्या करना चाहिये ?

तुम नहीं जानते ? तुम...। (मौन) अपनी चेतनाको बदलनेका प्रयास करो।

(लंबा मौन)

तो, यह लो ! अब तुम जो प्रश्न पूछना चाहते थे पूछ लो...। (एक बच्चेकी ओर मुड़ते हुए) कुछ नहीं कहना ?

माताजी, क्या एक भी व्यक्ति नहीं है ?

क्या ?

क्या एक भी व्यक्ति नहीं है ?

मुझे नहीं मालूम !

(श्रीमातृवाणी खंड ६से)

केंद्रीय सत्ता और उसकी प्राप्ति

मां, सत्ताकी केंद्रीय इच्छा किसपर निर्भर होती है ?

क्या ? वह किसपर निर्भर होती है ? क्या मतलब ? तुम ठीक-ठीक कहना क्या चाहते हो ? उसकी अभिव्यक्ति किसपर निर्भर होती है, या वह अपने अस्तित्वके लिये किसपर निर्भर है ?

वह अपने-आप किसपर निर्भर है ।

केंद्रीय इच्छा ? वह भागवत 'इच्छा'पर निर्भर होती है ।

वह भागवत इच्छाकी वैयक्तिक अभिव्यक्ति है ; और भागवत 'इच्छा' अपने-आपको अभिव्यक्त करने, अपने-आपको उपलब्ध करनेकी तलाशमें भागवत 'चेतना'पर निर्भर है ।

हमें केंद्रीय इच्छाका भान कैसे हो सकता है ?

आह, यह समस्याका एक और पहलू है । सबसे पहले तुम्हें अपनी चेतनामें उच्चतम, सत्यतम, सबसे बढ़कर सार्वभौम और शाश्वतका भान होना चाहिये ।

यह धीरे-धीरे सीखा जाता है । तुम अपनी सामान्य, बाह्य गतिविधियों और अपनी आंतरिक चेतनाकी गतियोंके विभिन्न स्तरोंको पहचानना शुरू करते हो । और अगर तुम काफी अध्य-वसायके साथ यह करते चले जाओ तो तुम्हें पता लगता है कि कौन-सी चीज इस उच्चतम भागको क्रियाशील बनाती है जो सत्ताके आदर्शका प्रतिनिधि है । और कोई रास्ता नहीं है । यह चीज कभी कुछ पढ़नेसे, कभी किसी बातचीतके द्वारा, कभी न्यूनाधिक नाटकीय रूपसे, तुम्हें जगा देती है, यानी, किसी धक्का देनेवाली, अप्रत्याशित घटनाके द्वारा झकझोर डालती है और तुम्हें अपनी छोटी-सी लीकपरसे हटा देती है । कभी जब तुम बहुत संकटमें होते हो तो अचानक तुम्हें ऐसा लगता है मानों तुम अपने-आपसे ऊपर और अपनी छोटी अभ्यासगत कमजोरियोंसे परे हो, और तुम्हारे अंदर कोई ऐसी उच्चतर चीज है जो परिस्थितियोंका सामना कर सकती है ।

ऐसे अवसरोंपर तुम उसके साथ पहला संपर्क पाते हो । उसके बाद, विधिवत् साधनाके द्वारा तुम उस संपर्कको जारी रख सकते हो, लेकिन सामान्यतः इसमें समय लगता है । लेकिन तुम्हें पहला संपर्क इसी तरह, अचानक, किसी-न-किसी कारणसे मिलता है ।

(लंबा मौन)

यह किसी बहुत प्रबल भावनाके साथ, बहुत बड़े दुःखके साथ, या बहुत अधिक उत्साहके साथ आ सकता है । जब तुम्हें कोई अपवादिक काम करना हो, जब परिस्थितियां काफी अपवादिक हों, तो सहसा ऐसा लगता है मानों अंदर कोई चीज टूट रही है या खुल रही है, मानों तुम अपने ऊपर छा गये हो, मानों तुम अपनेसे ऊपरकी सीढ़ीपर चढ़ गये हो और वहां-से अपनी सत्ताको सामान्य इंद्रियोंसे देख रहे हो । एक बार तुम्हें यह अनुभव हो जाय, तो

तुम उसे नहीं भूलते; चाहे सिर्फ एक ही बार क्यों न हुआ हो, तुम उसे भूल नहीं सकते। और बादमें, तुम इस स्थितिको एकाग्रताके द्वारा अपनी इच्छासे फिरसे पैदा कर सकते हो, उसे पोसनेके लिये यह पहला कदम है।

उसके बाद, जब कभी तुम्हें कोई निर्णय करना हो तो तुम इस स्थितिको बुला सकते हो और तब, फैसला समस्त कारणोंको जानते हुए और जो कुछ होनेवाला है उसकी पूरी जानकारीके साथ होगा। मुझे नहीं लगता कि सारे संसारमें एक भी आदमी ऐसा है—कम-से-कम कोई संस्कृत आदमी—जिसने जीवनमें कम-से-कम एक बार यह अनुभव न किया हो, कोई ऐसी वस्तु जो टूटती और खुलती है... और वह समझता है। लगता है कि तुम्हें इससे बहुत आश्चर्य हो रहा है! ... (एक बालकसे) तुमने कभी इसका अनुभव नहीं किया? क्यों?

मुझे नहीं मालूम।

तुम्हें विश्वास नहीं है! (लंबा मौन)

जब तुम्हें यह अनुभव होता है तो तुम्हें लगता है कि अब तुमने जीना शुरू किया है, उससे पहले तुम्हें पता ही न था कि जीवन होता क्या है। अचानक तुम पूरी तरह जीवनमें प्रवेश करते हो। इसे नहीं भूला जा सकता।

(श्रीमातृवाणी खंड ६से)

शान्तिके बारेमें

आपने कहा है: “शांति तुम्हें कई बार दी गयी थी पर हर बार तुमने उसे खो दिया...”

हां, कितनी बार तुम्हें शांति दी गयी है और कितनी बार तुमने उसे खो दिया है? असंख्य बार, मैंने कहा है। भागवत शांति (केवल सामान्य शांति नहीं, क्योंकि साधारण शांतिके लिये, मैं समझती हूं, तुम कई बार सारे संसारका चक्कर लगा सकते हो और उसे नहीं प्राप्त कर सकते) पर भागवत शांति तुम्हें दी गयी है और प्रत्येक बार तुमने उसे खो दिया है। क्यों? क्योंकि तुम्हारे अंदर कोई चीज अपनी तुच्छ स्वार्थपूर्ण दिनचर्याको छोड़ना अस्वीकार करती है।

परंतु भागवत शांति सर्वदा विद्यमान है, है न? वह “दी नहीं जाती”?

तुम्हें यह कभी न भूलना चाहिये कि जब मैंने यह कहा था, हमारा बारह या सोलह लोगों-का एक छोटा-सा दल था जो नियमित एकत्र होता था, और उन्हीं लोगोंसे मैं बात कर रही थी। मैंने यह कभी नहीं सोचा था कि यह चीज मैं पचाससे अधिक लोगोंके सामने पढ़ूंगी, कभी नहीं। परंतु मैंने यह स्पष्ट रूपमें उन लोगोंसे कहा था जो वहां, उस छोटे-से दलमें, उपस्थित थे, उन लोगोंसे जिन्हें मैंने यह शांति अनगिनत बार दी थी और प्रत्येक बार जिन्होंने इसे खो दिया था। बस, यही मेरा मतलब है, यह एकदम विशेष अवसरपर कही गयी एक बात थी। अब, साधारण तौरपर, जो लोग यहां हैं, उनके विषयमें हम कह सकते हैं, जैसा

कि तुम कहते हो, कि एक विशेष हृदयक, जिस हृदयक मन उसे ग्रहण करनेमें समर्थ है, शांति (जैसे कि चेतना, शक्ति, ज्ञान आदि भी) निरंतर दी जा रही है। अतएव यह नहीं कहा जा सकता कि वह “खो जाती है”; परंतु कोई उसके विषयमें सचेतन हो सकता है, फिर अचेतन, और फिर सचेतन, और फिर अचेतन; बिल्कुल सरल रूपमें ठीक उसी प्रकारके एक कारणसे जिसे मैंने बताया है (क्योंकि यह सदा सत्य है, चाहे मनुष्य सोलह हों, या अठारह, या एक सौ पचास या सात सौ, कारण लगभग एक ही होता है), कि जब तुम सदाशयपूर्ण भी होते हो, तुम्हारी सत्तामें कोई ऐसी वस्तु होती है जो अपने अभ्यासोंसे प्राणपण चिपकी रहती है। लोग समझते हैं कि यदि उनके तुच्छ बाहरी अभ्यासोंमेंसे कोई चीज बदल गयी है तो उन्होंने एक महान् उन्नति कर ली है; वे तुमसे कहते हैं, “पर क्या तुम नहीं देखते? मैं घूमता-फिरता हूं, मैं अपने परिवेशको बदलता हूं, अपनी परिस्थितियोंको बदलता और बहुत अच्छी तरह सामंजस्य बैठा लेता हूं।” इस सबका बिल्कुल ही कोई अर्थ नहीं होता। सच पूछो तो आंतरिक अभ्यास, आंतरिक प्रतिक्रियाएं, देखनेका आंतरिक तरीका, सोचनेका तरीका, अपना कार्य चलानेका तरीका आदि चीजें हैं जो बदलना इंकार करती हैं, जो परिवर्तित होना इतना कठिन अनुभव करती हैं।

जब आप “शांति देने” की बात कहती हैं तब क्या आप किसी विशिष्ट दानकी ओर अथवा किसी सामान्य चीजकी ओर संकेत करती हैं?

यह विशेष चीज है, यह एक ऐसी चीज है जो तुम्हारे ऊपर डाल दी जाती है, जोरके साथ, और तब, कुछ सेकंडों या कुछ मिनटोंतक, या कुछ घंटोंतक भी, तुम उसे अनुभव करते हो। तुम एकाएक शांतिसे, शक्तिसे, ज्योतिसे भरा हुआ अनुभव करते हो—कभी-कभी और भी अधिक मूल्यवान् वस्तुओंसे भी भरा हुआ; जैसे ज्ञान, चेतना, प्रेम। और उसके बाद वह विलीन हो जाता है। तब तुम कहते हो, “ओह! सचमुच, ये दिव्य शक्तियां उदार नहीं होतीं, वे तुम्हें उस चीजको चखाभर देती हैं ताकि तुम यह देखो कि वह कितनी अच्छी है, और फिर तुमसे उसे छीन लेती हैं ताकि तुम और भी अधिक उसकी कामना करो!” यही सामान्य निष्कर्ष होता है।

फिर भी हम उन कारणोंको जानते हैं जो दी हुई शांतिको बनाये रखनेमें हमें बाधा पहुंचाते हैं और हम उन बाधाओंसे मुक्त होनेका प्रयत्न करते हैं।

और इसलिये तुम एक भयानक युद्धमें उतर पड़ते हो और शांतिको और भी अधिक खो देते हो! ... तुम्हारा मतलब यह है कि जब मनुष्य संपर्क खो देता है और कोई प्रयास करता है, तो वह बाधासे मुक्त होनेका इन्तजाम करता है? वह केवल तभी होता है जब तुम वास्तवमें नंबर एक साधक होओ! ऐसा करनेवाले बहुत-से लोग नहीं होते। जो ऐसा करते हैं उन्हें मैं अवश्य बधाई देती हूं, क्योंकि वे बहुत तेजीसे आगे बढ़ जायेंगे। परंतु ऐसे बहुत लोग नहीं होते जो कारण जानते हैं—मैंने यह बात तुमसे कही है—सौम्यसे नित्यानवे बार विचारे भगवान् ही दोषी माने जाते हैं: वही उसे देते हैं और फिर जो कुछ वह देते हैं उसे वापस ले लेते हैं; वह बिल्कुल मनमौजी हैं। वह उस भांति तुम्हें अद्भुत फलका रसास्वादन करा देते हैं, फिर वह तुमसे उसे ले लेते हैं, और फिर जब उनके मनमें आती है तो लौटा देते हैं...। सचमुच, वह एक बिल्कुल सनकी व्यक्ति है!

शांति देनेके बदले, भगवान् एकदम एकबारगी ही अहंको नष्ट क्यों नहीं कर देते ?

आह ! यह बात, यह तो प्रत्येक व्यक्तिका काम है। यही बात मैंने तुमसे उम दिन कही थी, श्रीअरविन्दने जो कुछ लिखा है उसे तुम्हारे सामने पढ़ा था, “इस मंद मिथ्या धारणाका पोषण मत करो कि अभीप्सा तुम्हें दी जायगी और तुम्हारे लिये कार्य कर दिया जायगा।” अभीप्सा तुम्हारी ओरसे आनी चाहिये और अहंका विलोप भी। तुम्हें सहायता दी जाती है, तुम्हें सहारा दिया जाता है; प्रत्येक बार जब तुम पग आगे बढ़ाओ, तुम यह अनुभव करोगे कि कोई ऐसी चीज है जो तुम्हें सभी आवश्यक वस्तुएं प्रदान करती है ताकि तुम पग आगे बढ़ा सको, परंतु सच पूछो तो चलना तुमको होगा, कोई दूसरा तुम्हें अपनी पीठपर लादकर नहीं ढोयेगा...। सबसे पहले अहंको दूर करो, वह एक अद्भुत कार्यक्रम है ! एक बार जब अहं विनष्ट हो जाता है तो फिर और कुछ करनेको बाकी नहीं रहता, समस्त कार्य संपन्न हो जाता है, कारण, ठीक अहंकार ही वह चीज है जो भगवान्‌के संपर्कमें आनेमें तुम्हें बाधा पहुंचाती है। एक बार जब अहं निर्मूल हो जायगा, विलकुल सरल ढंगसे तुम वैसे बन जाओगे, भगवान्‌के साथ एक सुखकर एकत्व पा लोगे, और संपूर्ण कार्य समाप्त हो जायगा। परंतु सामान्यतया लोग अंतसे कार्य नहीं आरंभ करते। पर जो हो, मैंने अभी-अभी जो कुछ तुमसे कहा है वह उपयोगी है : अहंको दूर करना तुम्हारा काम है। तुम्हें सहायता मिलेगी, पर तुम्हें पैरोंसे चलना होगा। यह विलकुल आशा मत करो कि कोई दूसरा व्यक्ति तुम्हें अपनी पीठपर ढोयेगा और तुम्हें अपने-आपको ढोये जानेके सिवा और कुछ नहीं करना होगा।

(श्रीमातृवाणी, खंड ४ से)

उपनिषदोंके ब्रह्म

हम एक क्षणके लिये भी यह कल्पना नहीं कर सकते कि उपनिषदोंका ब्रह्म कोई बाहरी भगवान् है जो अपनेसे अलग किसी सृष्टिमें प्रवेश करता है या द्वैत भाव वाली बुद्धिका आखिरी सहारा एक अंतर्व्यापी देव है। जब यह कहा जाता है कि सृजन-शक्तिको धारण करनेवाला ब्रह्म प्राण, मन और जड़ पदार्थ सबमें मौजूद है तो वह उसी अर्थमें होता है जिस अर्थमें कवि अपनी काव्य कृतिमें उपस्थित रहता है जैसे मनुष्य अपने मनमें चिंतन करता है या नदी अपने-आपको धाराओं और भंवरोमें उंडेलती हुई आगे बढ़ती है। इधर-उधरसे उद्धारण निकालकर उपनिषदोंपर किसी भी वादका चिप्पा चिपकाया जा सकता है क्योंकि उपनिषदोंके ऋषियोंने ब्रह्मको अनेक रूपों और अनेक दृष्टिबिंदुओंसे देखा है और सर्व और शाश्वतके साथ मिलनमें जितने प्रकारकी अनभूतियां हुई हैं उन सबको लिख लिया है। उन्होंने इसमें पूरी छूटसे काम लिया है क्योंकि वे जानते थे कि सर्व और शाश्वतकी मौलिक अनुभूतिमें अत्यधिक भिन्न और परस्परविरोधी अनुभूतियोंका सामंजस्य होता है, उन्हें अपना सापेक्ष सत्य मिल जाता है और वे अपनी पारस्परिक आवश्यकताको जान पाते हैं।

उपनिषद् सर्वेश्वरवादी हैं क्योंकि ये सारे संसारको ब्रह्म मानते हैं, वे सर्वेश्वरवादी नहीं भी हैं क्योंकि वे ब्रह्मको परात्पर मानते हैं जो विश्वका अतिक्रमण करता है और अपने परम सत्यमें

इस प्रपंचसे अलग है। वे आस्तिक हैं क्योंकि वे ब्रह्मको भगवान् और अपने जगत्का स्वामी मानते हैं जो उसमें व्यापक भी है और उसे धारण भी करता है, उसपर शासन करता और उसकी व्यवस्था करता है। वे आस्तिक नहीं भी हैं क्योंकि वे जगत्को भी भगवान् मानते हैं जो अपने-आपको धारण करता और अपने ही अंदर व्याप्त है। वे बहुदेववादी हैं क्योंकि वे सूर्य, अग्नि, इन्द्र तथा और बहुत-से देवताओंकी सत्ता और शक्तिको मानते और उन्हें पूजाके योग्य भी समझते हैं, वे बहु देववादी-नहीं भी हैं क्योंकि वे उन सबको एक ही परम देवके विभिन्न नाम, रूप और व्यक्तित्व मानते हैं। इसलिये ईशोपनिषद् शुरूमें ही कहता है: 'ईशावास्यम् जगत्' भगवान् जगत्में निवास करते हैं, फिर धारण करनेवाले ब्रह्मकी बात आती है, 'तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति' और साथ ही साथ जगत्को भी ब्रह्म कहा है 'तदेजति, सपर्यगात्। विचारोंकी यह उदारता विचारोंकी विशृंखलाके कारण नहीं है। ये विचार गीता और उपनिषद् दोनोंमें मिलते रहते हैं। गीता इस बातपर जोर देती है कि भगवान् सब चीजोंमें हैं फिर भी भगवान् आग्रहपूर्वक कहते हैं मैं उनमें नहीं हूँ। वे मेरे अंदर हैं। 'नाऽहं तेषु ते मयि', फिर गीता कहती है कि भगवान् जीवोंको अपने अंदर धारण करते हैं, वे अपने-आप उनमें नहीं रहते वे उनके अंदर निवास करते हैं और नहीं भी करते। यही उनका दिव्य योग है। 'न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमेश्वरम्।' इसी प्रकार उपनिषद् भी ब्रह्मके अंदर परस्पर विरोधी गुणोंके होनेकी बात कहते हैं, 'निर्गुणो गुणी,' 'अनेजदेको मनसो जवीयः, तदेजति तन्नैजति।' अगर हम उपनिषद्के इस मूल विचारको न भूलें कि ब्रह्म कोई निश्चित गुणोंवाला व्यक्ति न होकर सब गुणोंसे परे परम सत्ता है, परम होनेके कारण सर्वसमर्थ और सर्वगुण सम्पन्न है और प्रज्ञावान् सत्तामें जगत् गुणोंकी ऐसी राशि है जिसमें गुण तार्किक रूपसे एक दूसरेको हटाकर नहीं बल्कि पारस्परिक संतुलन और समन्वयकी दृष्टिसे व्यवस्थित हैं। भगवान्की सर्वव्यापकता और निर्व्यापकता, भगवान्का वस्तुओंके साथ तादात्म्य और वस्तुओंसे परात्परता, भगवान्की वैयक्तिकता और निर्वैयक्तिकता, भगवान्की दया और उनकी क्रूरता आदि सभी संभव गुणोंके विरोधी जोड़े, उनके सभी संभव विविध रूप परस्पर विरोधी नहीं, एक ही दृश्यको देखनेके दो तरीके, एक ही सिक्केके चित और पट हैं। ये हमारी दृष्टिको भले बेमेल लगे पर यह स्थिति तभीतक रहेगी जबतक हम पूर्ण सत्ताकी समग्र दृष्टि नहीं पा लेते।

(दिसंबर १९८०के आर्काइव्जमें प्रकाशित श्रीअरविंदके लेख 'एवोल्यूशन इन वेदांतिक व्यू'के एक अनुच्छेदके आधारपर)

अनन्त और शाश्वतकी शक्ति

अनंत और शाश्वतकी शक्ति हमारे अंदर उतरती, काम करती, हमारे मनोवैज्ञानिक रूपायनोंको तोड़ती, हर दीवारको ढाती, हमें विस्तृत करती, युक्त करती अंतर्दर्शनकी नित नयी अधिकाधिक बड़ी शक्तियां प्रदान करती, विचार, प्रत्यक्ष दर्शन, और नये-नये जीवन-प्रयोजन, नये-नये नमूने सामने रखती और उन्हें बड़ा करती, अंतरात्माको नये यंत्र देती, हर त्रुटिको पकड़ती और समाप्त करती, अधिक पूर्णताओंके द्वार खोलती और थोड़ेसे समयमें कई जीवनों या युगोंका काम पूरा करती है और हमारे भीतर सदा नये जीवन और नये संदर्भ रखती है। वह अपने कार्यमें विस्तार पसंद करती है और चेतनाको शरीरकी कारासे मुक्त करती है।

वह समाधि, सुषुप्ति और जाग्रत् अवस्थामें भी अन्य लोकों और इसी जगत्के अन्य क्षेत्रोंमें प्रवेश कर सकती है और वहांकी अनुभूतियां अपने साथ लेकर आ सकती है। वह अपना विस्तार कर सकती है, उसे लगता है कि यह शरीर उसका एक अंश भर है और उसे धारण करने लगती है जो पहले उसे धारण करता था, वह वैश्व चेतना प्राप्त कर लेती है और अपने-आपको सारे विश्वके समान परिमाण दे देती है। वह केवल बाहरी अवलोकनद्वारा नहीं अपितु जगत्में लीला करनेवाली शक्तियोंके संपर्कद्वारा भीतरसे प्रत्यक्ष रूपमें जानना शुरू करती है, उनकी गतिविधिका अनुभव करती, उनके कार्योंमें भेद करती, उनके ऊपर तुरंत क्रिया कर सकती है जैसे वैज्ञानिक भौतिक शक्तियोंपर क्रिया करता है, हमारे मन, प्राण, शरीरमें उनकी क्रिया तथा परिणामोंको स्वीकार या अस्वीकार करती है, उन्हें बदलती, नया रूप देती, प्रकृति-की पुरानी, छोटी-मोटी क्रियाओंकी जगह नयी महान् शक्तियां और गतिविधियां पैदा करती है। हम वैश्व मनकी शक्तियोंकी क्रियाको देखना और यह जानना शुरू करते हैं कि उस क्रियाद्वारा हमारे विचार कैसे उत्पन्न होते हैं, भीतरसे अपने ज्ञानके सत्य और असत्यको अलग कर सकते, उनके क्षेत्रको विस्तृत कर सकते, उनके अर्थको ज्योतिर्मय बनाकर बढ़ा सकते, अपने मन और अपनी क्रियाओंके स्वामी होकर अपने चारों ओरके जगत्के मनकी क्रियाओं और गतिविधियोंको रूप दे सकते हैं। हम वैश्व प्राण-शक्तियोंके प्रवाह और उफानको देखना, अपनी भावनाओंके मूल और उनकी चमक अपनी अनुभूतियों, आवेगों, संवेदनों, आवेगोंको पहचान पाते हैं। हम उन्हें स्वीकार या अस्वीकार करने, नये रूपमें गढ़ने, प्राणशक्तिको ज्यादा ऊंचे स्तरतक चढ़ाना शुरू करते हैं। हम जड़ भौतिककी पहेलीकी चाबीका भी बोध पाना शुरू करते हैं। उसपर मन, प्राण और चेतनाकी पारस्परिकताको समझते, उसकी यंत्रीय और परिणाम-सूचक क्रियाओंको पहचानते और अंततः जड़त्वके अंतिम रहस्यको पहचान लेते हैं जिसमें वह केवल ऊर्जाका ही एक रूप नहीं है बल्कि चेतनाका अंतर्निहित, काराग्रस्त या अस्थिर रूपसे प्रतिष्ठित और सीमित रूप है और साथ ही उसके उद्धार और उच्चतर शक्तियोंको दिये गये प्रत्युत्तरकी नमनीयताको भी देखना शुरू करते हैं, साथ ही देखते हैं आधेसे अधिक अवचेतनाके अवतरणको और आत्माकी अभिव्यक्तिके स्थानपर चेतनाकी संभावनाको। जैसे-जैसे हमारे अंदर दिव्य शक्ति बढ़ती है, यह सब और इससे भी बहुत अधिक बहुत कुछ संभव हो जाता है।

(श्रीअरविदकृत 'योग समन्वय'के एक अंशके आधारपर)

गोर्वाणी :

प्रकाशदूतः

नन्दनकाननसदृशी सा उपत्यका मन्ये देवैः कामतः तस्मिन् गुप्तस्थाने रचिता यत्र नरः प्रविश्य तामादर्शनगरीं न दूषयेत्। प्रतिभाति स्म यत् मनुष्यस्य प्रवेशस्तत्र निषिद्धः। यतो हि न कदापि तत्र विकसितानि पुष्पाणि कस्याः अपि बालायाः केशप्रसाधनमभवन्। पशूनामर्थे अभयवनमासीत्, खगानां सततकूजनं न कदापि नालास्त्रस्य (बन्दूककी) ध्वनिना आर्तनादे परिवर्तितम्। मलयानिलः सर्वेषां हृदि चन्दनचर्चितशीतलामलिम्पत्। दिवाकरः तेषु पवित्र-प्रेम्णः ऊष्माणं निरन्तरमदीपयत्, प्रतिरात्रि सुधाकरः तान् सहस्रकरैः आलिंग्य स्वप्ननदीतटेषु व्यचारयत्। संक्षेपे, धरायां स्वर्गस्यादर्शः अवर्तत सा मन्त्रमोहिका उपत्यका।

किन्तु... आम्, स्वर्गतुल्ये तस्मिन् स्थले अपि अविद्यत 'किन्तु'। तत्रागतः कृष्णकायः, असुन्दरः कश्चित् कीटः। हठात् कथं कुतश्चागतः एषः? आं, आं तत्रत्यं प्रत्येकं पुष्पं, खगः मृगश्च— सर्वे स्मरन्ति तत् दिनं यदा प्रभाते सम्पूर्णवातावरणे तैः विचित्रव्याकुलता अनुभूता। न कोऽपि अबोधत् तस्याः कारणम्। अन्ते सर्वे एव तस्य असामंजस्यस्य कारणं ज्ञातुं निर्गताः। अहो, किं पश्यन्ति ते... पाटलस्य क्रोडे उपविशति कोऽपि, पाटलं च तं सान्त्वयति। समीपमागत्याधिकाधिकं चकिताः ते परस्परं मूकप्रश्नं कुर्वन्ति, कः एषः कीटः, किं च करोति?’

तान् तथा किं कर्तव्यविमूढान् दृष्ट्वा पाटलमकथयत्, 'भो मित्राणि, सद्योजातमिमं कीटम् ईश्वरः धरामप्रेषयत्। अत्रागत्य स्वस्य कुरूपमवलोक्य अस्माकं च सौन्दर्यं वीक्ष्य भग्नहृदयः एषः क्रन्दति। एतानि अस्य अश्रूणि।'

'अश्रूणि...' कश्चित् चरमपुच्छः उक्तवान्। 'अहो, अहमपि इच्छामि एतानि मुक्ता-सदृशानि, पारदर्शकानि अश्रूणि।'

पाटलमीषद् विहस्यावदत्—'रे चरमपुच्छ, एताः मुक्ताः दुःखसूचिकाः, यदा कोऽपि दुःखितः तदा एताः स्रवन्ति।'

'दुःखितः!' कोणात् कश्चित् शशकः लम्फित्वा अग्रे आगत्याकथयत्, 'किन्तु, कुतः दुःखितः एषः कीटः? अत्र न कदापि कोऽपि विषण्णः भवति।'

हठात् कीटः मुखरोऽभवत्, 'किमर्थं यूयं दुःखिताः भविष्यथ? युष्माकं सकाशे रूपमस्ति, लावण्यमस्ति, तस्मात् हृत्सन्तोषधनं वर्तते। मादृशः कुरूपः अस्ति अत्र कोऽपि? अत्रत्या धूलिः अपि मां दृष्ट्वा उपहसेत्। क्रूरः सः ईश्वरः यः एतादृशेन शरीरेण मां धरामवतारयत्, मनुष्याणामर्थे कश्चित् सन्देशोऽपि दत्तः तेन किन्तु, गहनदुःखे सोऽपि मया विस्मृतः। बाढम्, नैव स्मर्तुमपि इच्छामि, तादृशेन रूपेण कुत्र कथं च गच्छेयम् नैव जीवितुमपि इच्छामि...' इति कथयन्नेव सः पुनः क्रन्दनमारभत।

उपत्यकायाः प्रत्येकपशुः तं नानाविधं प्रसादयितुं चेष्टितवान्। चरमपुच्छः स्वस्य बहुमूल्यम् अक्षोटं (अखरोट) तस्य अर्थे आनयत्, शुकः नेत्रप्रियं हरितं भ्राजमानं मरिचमानयत्, भल्लूकः उत्तमं मधु आनीय, मुहुर्मुहुः तस्य चषणाय तम् अन्वयनत्, कोकिलः मधुरकूजनेन तस्य हृदये आनन्दलहरीमुत्पादयितुमचेष्टत, आश्चर्यकरमासीत् तदा यदा जगद्विख्यातः कृपणः काकः अपि स्वसंचितादाहाराद् उत्तमं वस्तु आनीय कीटाय अददात्। किन्तु सर्वेषां प्रयासः निष्फलः जातः। सः कीटः कथमपि निजदुःखं विस्मर्तुं नाशक्नोत्।

पिपीलिकानामेकः दलः निर्गच्छति। उपत्यकायाः सर्वान् खगमृगान् एकत्र वीक्ष्य एका उत्सुका पिपीलिका स्वबन्धून् पुनर्दर्शनाय इति कथयित्वा सम्मर्दम् आगता। लघुप्राणी! कोऽपि तां द्रष्टुमपि नाशक्नोत्। 'क्षमतां, क्षम्यताम्' इति कथयित्वा कथमपि प्राप्ता अग्रे। सम्पूर्णकथामाकर्ण्य सा पाटलमारुह्य क्रन्दनपरं तं कीटमकथयत्, 'अहो कीट, त्वं क्रन्दसि! मां पश्य तावत्, ईश्वरः मह्यं न सिंहस्य गर्जनमददात् न कोकिलायाः स्वरं, नास्ति मम सकाशे हरिणस्य गतिः न च खगस्य उड्डयनम्। किन्तु, सः मयि परिश्रमस्य बीजमवपत्। पश्य, निरन्तरं कार्यलीना अहं लघुः अपि अन्येषां दृष्टौ महती।'

तस्याः वचनं श्रुत्वा क्रन्दनात् विरतः कीटोऽकथयत्, 'किन्तु मयि सः स्वस्य एकमपि गुणं निधातुं व्यस्मरत्। सर्वथा गुणसारहीनः क्षुद्रः कीटोऽहम्' सः बलेन क्रन्दनपरोऽभवत्।

यथाशक्यं पुनः सर्वे तमासान्त्वयन् किन्तु वृथा । अन्ततः ते स्वगृहं प्रत्यगच्छन् । प्रथमः अवसरः यदा तत्रत्याः पशुपक्षिणः दुःखमन्वभवन् ।

दिनानि व्यतीतानि । प्रतिदिनं ते तमुत्साहवर्धककथाः अश्वावयन् किन्तु...

हठात्...

तस्मिन् सुप्रभाते वातावरणमापूर्वानन्देन परिप्लावितम् । केन कारणेन ?

अहो, नूतनः कश्चिदतिथिः प्रविष्टः अद्य । सुवर्णः एषः हरिणः कुतः किमर्थं चागतः ?

पुनरेकदा सम्पूर्णं वनं समागतम् ।

खगमृगैः कदापि तावद् लावण्यं रूपं च न दृष्टमासीत् । अद्भुते नेत्रे, चित्रिता काया, अपरि-
कल्पनीया गतिः अश्रुता च वाणी !!

महाग्रीवस्य गभीरवाणी कानने गुंजिता, 'भो मित्र, कस्य प्रदेशस्य हरिणस्त्वं, कुतश्चागतः अत्र, कृपया कथय ।'

हरिणोऽवदत्, 'बन्धो, बहुदूरादायाम्यहम् । न पृथिवीवासी अहम् । नन्दनकाननं मे गृहं किन्तु अत्र कारणविशेषादवतीर्णः । मन्ये यूयं मम साहाय्यं करिष्यथ ।'

आम्, आम्, अवश्यम् । यथाशक्यं करिष्यामः' सर्वैः एकस्वरेण सोत्साहम् उत्तरितम् ।

'तदा शृणोतु', हरिणोऽभ्रणत्, "मम प्रभुणा कश्चित् लघुकीटः सन्देशविशेषाय धरां प्रेषितः आसीत् किन्तु प्रभुणा ज्ञातं यत् सः तं सन्देशं विस्मृत्य, स्वदुःखेन सन्तप्तः अस्यामुपत्यकायां निवसति ।'

अचिरमेव हरिणः लघुकीटस्य सकाशे आनीतः । चिरम् अनुनयात् परं सः नारिकेलवृक्षस्य छिद्रात् बहिरागतः ।

हरिणं दृष्ट्वाश्चर्यचकितः सः तमपृच्छत्, 'अहो सुभग, त्वमत्र ! नय मां नन्दनकाननम् । अत्र मे जीवितमसह्यम् ।'

सुभगोऽभ्रणत्, 'रे मूर्ख, अहर्निशमत्रान्वकारे उपविश्य किं करोषि ? न स्मरसि प्रभुः त्वां किमर्थं धरामप्रेषयत् इति ?'

'न स्मर्तुमपि इच्छामि ।' पुनः रुष्टः सः ।

'महामूर्खस्त्वम् । स्वबाह्यरूपमवलोक्य तथा क्रन्दसि ? अन्तरि पश्य तावत् । त्वया स्वोड्डयन-
मपि विस्मृतं किम् ?'

सर्वे चकिताः । किमेषः कीटः उड्डयितुमपि शक्नोति !!

सुभगः पुनरपि उक्तवान्, 'प्रकाशस्य दूत ! अन्धकारे कुतः निवससि ? सम्प्रति गच्छ, मनुष्याणां मध्ये विचर । तान् निजप्रभोः सन्देशं श्रावय—'अचिरमेव प्रभोः प्रकाशोऽवतीर्य धरायाः इममन्ध-
कारं नाशयिष्यति । आगतं दिनम्, आगतं तद् युगम् । ते स्वहृदयानि प्रकाशाय उद्घाटयन्तु ।'

हठात् लघुकीटस्य सर्वदुःखं वाष्पीभूतम् । आनन्देन उड्डयनमारभत सः ।

किमेतत् ! खे उड्डयमानः सः द्योतते, प्रकाशपुंजः जयते ।

सर्वैः अहोभावेन एकस्वरेणोक्तम्, 'अहो खद्योतस्त्वम् !'

वियोगवेला आगता । सर्वेषां नेत्रेभ्यः अश्रूणि स्रवन्ति किन्तु नैतानि दुःखसूचकानि अश्रूणि ।
तानि खलु कृपायाः उत्तरेण तस्य चरणकमलयोः समर्पिता परमानन्दस्य मुक्तावलिः ।

—वन्दना



तिरछी किरणें

(श्रीअरविंदके विचारोंपर उनके लेखों और वाताओंसे संकलित)

नास्तिकता

नास्तिकता भगवान्‌के उच्चतम प्रत्यक्ष दर्शनका अंधेरा पक्ष है।

भगवान्‌के बारेमें हम जो भी सूत्र बनाते हैं, वह यद्यपि प्रतीक रूपमें हमेशा ठीक होता है परंतु जैसे ही हम उसे पर्याप्त सूत्र मान लेते हैं उसी क्षण मिथ्या हो जाता है। नास्तिक और अज्ञेयवादी हमारी इस भूलकी याद दिलाने आते हैं।

नास्तिकता धार्मिक संस्थाओंकी दुष्टता और संप्रदायोंकी संकुचितताके विरुद्ध आवश्यक विरोध है। भगवान्‌ उन बिगड़े हुए गत्तोंके मकानोंको नष्ट करनेके लिये पत्थरके रूपमें इनका उपयोग करते हैं।

नास्तिक स्वयं भगवान्‌ है जो अपने साथ लुका-छिपी खेल रहा है। तो आस्तिक कुछ और है क्या? हां, शायद, क्योंकि उसने भगवान्‌की छाया देख ली है और उसे जोरसे पकड़े हुए है।

शरीर

शरीरमें कोई कामनाएं नहीं होतीं। उसमें आवश्यकताएं होती हैं और वह जानता है कि उसे किस चीजकी आवश्यकता है।

शुभ कामनाओंके साथ :

बालासिनोर पेपर मार्ट

(B. P. MART)

(प्राचीन बहीखाता, रजिस्टर, फाइल बेचनेवाले)

१३३, कॉटन स्ट्रीट (तुलापट्टी)

शाखा : २० मल्लिक स्ट्रीट, कलकत्ता-७००००७

(नोट : शाखा शनिवार को पूरा दिन खुली रहती है)

दूरभाष : ३३-४२३३, ३३-२३१२

है
क

ध
प-

छ
डे

कि

17/3700

Completed
1999-2000

